यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।

वाल्मीकि रामायण में रस-विमर्श

हावीर अग्रवाल

मायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।

वाल्मीकि-रामायण में रस-विमर्श

डा० महावीर अग्रवाल
एम० ए० (संस्कृत, वेद, हिन्दी) व्याकरणाचार्य
पी-एच० डी०, लब्धस्वर्णपदक
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

भारतीय विद्या प्रकाशन
दिल्ली वाराणसी
(भारत)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रकाशन-अनुदान के अन्तर्गत गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, की आज्ञा के अनुसार प्रकाशित ।

प्रकाशक :

भारतीय विद्या प्रकाशन

१. १ यू० बी० बैंग्लोरोड़, जवाहनगर, दिल्ली-११०००७,
२. पो०बा० नं० ११०८, कचौड़ी गली, वाराणसी-२२१००१ (उ०प्र०)

प्रथम संस्करण : १९९२

मूल्य : २५०.००

मुद्रक : जैन अमर प्रिंटिंग प्रैस
द्वारा एशियन प्रिंटर्स ४७७/८ मूंगानगर दिल्ली ११००५३.

VALMIKI RAMAYANA ME RASA-VIMARSH

दो-शब्द

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जीवन न केवल भारतवर्ष के लिए अपितु सम्पूर्ण मानव-जाति के लिए अक्षय प्रेरणा स्रोत है और आदि-कवि वाल्मीकि विरचित रामायण महाकाव्य समस्त काव्यगुणों का आकर, विश्व साहित्य का अमर-कोष, संस्कृति का उज्ज्वल दीपक तथा कोटि-कोटि भारतीयों का प्राण है। आदि-कवि ने इस आर्ष महाकाव्य में एक ओर वैदिक संस्कृति के उत्तमोत्तम चित्र अंकित किये हैं तो दूसरी ओर रसों की ऐसी मन्दाकिनी प्रवाहित की है कि सहृदय पाठक रस-सरिता में अवगाहन कर आनन्द-विभोर हो जाता है। 'रस' रामायण का प्राण है इसी रस को काव्यशास्त्रियों ने काव्य की आत्मा कहा है। सचमुच रामायण सदृश महाकाव्य से भारत और भारती दोनों धन्य हो गये हैं। भारत का धर्म प्राण जनमानस स्वाभाविक रूप से श्रीराम एवं रामायण के प्रति प्रगाढ़ आस्था और श्रद्धा रखता है। मेरी जननी भी मेरे अबोध शैशव काल में राम-कथा का श्रवण बड़ी श्रद्धा से किया करती थी, संभवतः उसी समय के संस्कार मेरे बाल हृदय पर अंकित हो गये थे, जो समय के साथ श्रद्धा-रूप में परिणत हो गए।

सौभाग्य से पूज्य पितृ-चरणों के गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली, संस्कृत एवं संस्कृति के प्रति अनन्य अनुराग से मुझे गुरुकुल की पुण्य-भूमि में तपः पूत आचार्य चरणों में बैठकर वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य के अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ। इसी परम्परा में वैदिक और लौकिक संस्कृत काव्य के मध्य सेतु का कार्य करने वाले रामायण महाकाव्य का अध्ययन करते समय हृदय भावाप्लावित हो जाता था। जब शोध कार्य हेतु विषय-चयन का प्रश्न उपस्थित हुआ तब मैंने रामायण पर ही शोध करने का संकल्प किया। क्योंकि इस शोध-कार्य में जहां आत्मिक-सुख प्राप्ति की सुखद आशा थी वहां ऋषि-तर्पण का सौभाग्य भी प्राप्त हो रहा था। बस, मैंने मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ में इस विषय पर शोध-कार्य प्रारम्भ किया और प्रभु कृपा तथा विद्वज्जनों के आशीर्वाद से १९८२ में मेरी यह शोध-यात्रा पूर्ण हुई। प्रस्तुत ग्रन्थ मेरी पी-एच०डी० शोधोपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध का ही अविकल प्रकाशित रूप है।

रामायण एक अथाह सागर है और मेरी शक्ति एक तुम्बी के समान है, इसलिए मेरा यह प्रयास कितना सार्थक हो सका है, इसका निर्णय तो नीर-क्षीर विवेकी सहृदय-समीक्षक ही कर सकेंगे। मैंने तो केवल अपनी शक्ति और बुद्धि के

साथ विषय को प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया है। इसमें जो सुन्दर है वह गुरुजनों का प्रसाद है और जो त्रुटियां हैं वे मेरी हैं।

आज जब यह ग्रन्थ प्रकाशित होकर मनीषियों के कर-कमलों में पहुंचने को तैयार है यह मस्तक श्रद्धा से उन गुरुचरणों में नत हो रहा है, जिनके पवित्र चरणों में बैठकर दो शब्द सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। परम पूज्य स्वामी ओमानन्द जी, नैष्ठिक ब्रह्मचारी बलदेव जी, स्वामी इन्द्रवेश जी, वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य प्रियव्रत जी विद्या वाचस्पति, वेदमूर्ति डॉ० रामनाथ जी वेदालंकार, स्नेह सौजन्य की प्रतिमूर्त्ति प्रो० रामप्रसाद जी वेदालंकार सदृश गुरुजनों के स्नेह-आशीष का ही यह सुफल है कि रामायण जैसे अमर महाकाव्य पर शोध-कार्य करने का सुख प्राप्त हो सका। इस शोध-कार्य में मेरठ कॉलेज के संस्कृतविभागाध्यक्ष आदरणीय डॉ० कर्णसिंह जी का निर्देशन मेरा शोध-मार्ग प्रशस्त करता रहा है, उनकी इस कृपा के लिए सदैव कृतज्ञ रहूंगा। ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तैयार करने में प्रिय शिष्या आयुष्मती प्रतिभा शुक्ल तथा कु० सुनीता शर्मा ने बहुत परिश्रम किया। इन दोनों के उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना करता हूं।

बालक के जीवन निर्माण में माता-पिता से बढ़कर और बड़ा स्थान किसका हो सकता है। अपने पुत्रों की उन्नति देखकर वे आनन्द-विभोर हो जाया करते हैं। प्रसन्नता के इन क्षणों में अपने धर्मप्राण पूज्य पिता श्री ताराचन्द जी आर्य तथा ममता की साक्षाद् देवी पूज्या मां त्रिवेणी देवी के पावन चरणों में शत-शत प्रणाम है। इस पुस्तक के प्रकाशन पर जिनको सर्वाधिक प्रसन्नता होगी उन पूज्य अग्रज श्री गोविन्दरामजी का हार्दिक स्नेह और आशीर्वाद ही मेरी अमूल्य धरोहर है। इस पुस्तक के लेखन के लिए प्रिय अनुज वेद प्रकाश, चि० संजय मुझे सदैव प्रेरित करते रहे हैं। इनके सर्वविध मांगल्य हेतु प्रभु चरणों में विनम्र अभ्यर्थना है। यह लेखन कार्य पूर्ण न हो पाता यदि सहधर्मिणी सौ० वीना गृहस्थ के दायित्त्वों से मुक्त कर एकाग्रता से लिखने का अवसर प्रदान न करती। इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने पर जो प्रसन्नता इन्हें हो रही होगी उसका अनुमान ही किया जा सकता है। शोध-कार्य करते समय क्लान्त मन की क्लान्ति दूर कर अपनी ललित बाल-चेष्टाओं से मुझे प्रसन्न कर देने वाले प्रिय रजत, प्रतीक और लाड़ली पुत्री प्रज्ञा को किन शब्दों में हृदय का प्यार दूं। ये सदा प्रसन्न और सुखी रहें, यही मंगल कामना है।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष, डॉ० विष्णुदत्त राकेश जोकि राष्ट्रभाषा हिन्दी के गौरव हैं और जिनकी अहैतु की स्नेहिल दृष्टि से मैं सदा आह्लादित रहता हूं, ने भूमिका लिखकर इस ग्रन्थ की गरिमा वृद्धि की है, उनके स्नेह को श्रद्धापूर्वक स्मरण करता हूं।

आदरणीय डॉ० कृष्णकुमार जी, प्रो० वेद प्रकाश जी, डॉ० जयदेव जी वेदालंकार डॉ० भारतभूषण विद्यालंकार के मार्गदर्शन, और स्नेह को पाकर मैं स्वयं को

गौरवान्वित समझता हूं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय प्रो० सुभाषजी विद्यालंकार ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा विश्वविद्यालय में प्रकाशनार्थ प्रदत्त राशि में से सहायता प्रदान की इस अनुकम्पा के लिये मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूं। विश्वविद्यालय के उपकुलपति प्रो० रामप्रसाद जी वेदालंकार कुलसचिव डॉ० वीरेन्द्र अरोड़ा एवं वित्ताधिकारी श्री राजेन्द्र जी सहगल को उनके हार्दिक सहयोग के लिये धन्यवाद देना अपना पावन कर्त्तव्य समझता हूं।

श्री किशोर चन्द्र जी जैन (भारतीय विद्या प्रकाशन, देहली, वाराणसी) का आभार प्रकट किये बिना रहा नहीं जाता, जिन्होंने प्रकाशन का दायित्त्व स्वीकार कर बड़ी सजगता एवं तत्परता से मुद्रण कार्य सम्पन्न कराकर सुधी पाठकों के स्नेहिल कर-कमलों में पुस्तक उपलब्ध कराने में अपना अमूल्य सहयोग दिया।

अन्त में करुणा के सागर परमपिता परमात्मा के चरणों में कोटि-कोटि नमन जिनकी कृपा बिना मादृश अल्पज्ञ के द्वारा यह कार्य असम्भव था।

शरद पूर्णिमा, संवत् २०४८
गुरुकुल कांगड़ी वि० वि० हरिद्वार

विदुषां चरण चञ्चरीक :
महावीर अग्रवाल

प्रस्तावना

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण उत्कृष्ट आर्षकाव्य है । इसीलिए भगवान् राम जब अपनी सभा में लव-कुश द्वारा गाई जाने वाली 'रामायण' सुनने लगे तो इतने तन्मय हो गए कि सिंहासन छोड़कर साधारण श्रोताओं में जा बैठे । तन्मयी भवन का इससे अच्छा प्रमाण क्या होगा ?

स चापि रामः परिषद्गतः
शनैर्बुभूषयासक्तमनो बभूव ।

भारतीय साहित्य शास्त्रियों ने 'वाल्मीकि रामायण' को काव्यग्रन्थ ही माना है । आचार्य आनन्दवर्धन ने अत्यन्त तिरस्कृत वाक्य ध्वनि का उदाहरण 'रवि संक्रान्त सौभाग्यस्तुषारावृत मण्डलः' आदिकवि वाल्मीकि का ही रखा है । आचार्य कुन्तक ने बक्रोक्तिजीवित के प्रथमोन्मेष तथा तृतीयोन्मेष में उनका 'एकां कामपि काल विप्रुषमयी, शौर्योष्मकण्डूव्यय' श्लोक उद्धृत कर उपचार वक्रता तथा वाक्य वक्रता का विवेचन किया है । रामायण के अंगीरसत्व पर भी आनन्दवर्धन ने विचार किया है । कुन्तक ने ध्वन्यालोक के संदर्भ से वक्रोक्ति जीवितम् में कहा है कि रामायण तथा महाभारत का प्रधान रस शांत है—'रामायणमहाभारितयोश्च शान्तांगित्वं पूर्वसूरिभिरेव निरूपितम् ।' किन्तु आनन्दवर्धन ने 'रामायणे हि करुणो रसः स्वयमादि कविना सूत्रितः शोकः श्लोकत्वमागतः' कहकर रामायण का अंगित्व करुण रस सूचित किया है । इसका आधार यह है कि वाल्मीकि ने सीता वियोग पर्यन्त काव्य की रचना की । वैदेही हरण से वैदेही विसर्जन तक की यात्रा में कवि स्वयं विगलित होता हुआ चला है । काव्यात्मा के प्रतीयमान अर्थ या रस की व्यंजना के संदर्भ में भी ध्वन्यालोककार वाल्मीकि कृत 'मा निषाद प्रतिष्ठां' श्लोक को ही उद्धृत करते हैं । 'क्रौंच द्वन्द्व वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः' कहकर मानों वाल्मीकि काव्य का मुख्य रस करुण ही ध्वनित करते हैं । इसका इतना ही तात्पर्य है कि रामायण में अंग रूप से अन्य रसों की योजना भी है फिर भी मुख्य रस करुण ही है । काव्य का श्रवण, पठन तथा वाचन करते हुए कभी शृंगार, कभी वीर, कभी अद्भुत तथा कभी रौद्र आदि सभी रस आते रहते हैं और सहृदय उनका आस्वादन करता रहता है पर सीता-राम

का चरित्र ही इस काव्य का उद्देश्य है, आस्वाद्य है, अत: मुझे कुन्तक का यही कथन उपयुक्त जान पड़ता है कि रामायण का अंगीरस भी शांत है। युद्ध के बाद शोक संतप्त सीता श्री राम का दर्शन कर पूर्ण विश्रान्ति का अनुभव करती हैं। उनकी इच्छा को हनुमान जी श्री राम के सामने प्रस्तुत करते हैं—

तां देवीं शोक सन्तप्तां द्रष्टुमर्हसि मैथिलीम् ।

श्री राम का दर्शन-सुख अमोघ है, इसकी पुष्टि देवताओं द्वारा करवाकर आदिकवि ने शांत को ही प्रकारान्तर से व्यंजित कराने की चेष्टा की है। युद्धकाण्ड का श्लोक देखिए—

अमोघं दर्शनं राम, अमोघस्तव संस्तवः
अमोघास्ते भविष्यन्ति, भक्तिमन्तो नरा भुवि ।

स्वयं श्रीराम महाकाल से एकांत गोष्ठी करते हुए लक्ष्मण का परित्यागकर, भरत को सिंहासन देने की इच्छा व्यक्त करते हैं तव भरत का यह कथन भी पूर्ण वैराग्ययुक्त होने के कारण शांत की ही निष्पत्ति कराता है—

सत्येनाहं शपे राजन्, स्वर्ग भोगेन चैव हि
न कामये यथा राज्यं, त्वां बिना रघुनन्दन ।

वाल्मीकि रामायण की एक विशेषता यह है कि वह वेदवेद्य श्री राम की कथा होने के कारण कई अर्थों का द्योतन कराने वाली है। इसलिए यदि वह शोक प्रधान भंगिमा से देखी-पढ़ी जा सकती है तो माधुर्योपासकों ने उसे श्रृंगार या उज्ज्वल रस की परिधि में भी व्याख्यायित किया है। टीकाकारों ने कहना चाहिए, रामायण के श्लोकों का अपनी भावनानुसार दोहन भी किया है। रामायण का बीज श्लोक ही लीजिए—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।

श्री गोविन्दराज प्रभृति टीकाकरों ने इस श्लोक को शाप परक न मानकर मंगलाचरण परक माना है। 'मा' का अर्थ है लक्ष्मी अर्थात् श्री सीता। निषाद का अर्थ है निवास। वाल्मीकि कहते हैं कि हे मानिषाद ! अर्थात् श्री निवास। आप चिरकाल तक प्रतिष्ठा प्राप्त करें क्योंकि आपने रावण-मन्दोदरी रूप युगल में से काममोहित रावण का वध कर देवताओं को सुख प्रदान किया है। 'क्रुञ्चगति कौटिल्याल्पी भावयोः' इस धातु से निष्पन्न क्रौंच शब्द का कुटिल स्वभाव वाले रावण के लिए प्रयोग हो सकता है। यह श्लोक मूल काव्य बीज है क्योंकि इसने सातों काण्डों की कथा ध्वनित होती है। 'मा निषाद' पद से सीता राम विवाह कथा 'प्रतिष्ठां त्वमगमः' से दशरथ की आज्ञा पालन रूप प्रतिष्ठा व्यंजक अयोध्याकाण्ड की कथा, 'शाश्वती समाः' से राक्षसवध प्रतिज्ञा रूप अरण्य काण्ड की कथा, तारा बालि के जोड़े में से क्रौंच रूप बालि वध

की किष्किधा काण्ड की कथा क्योंकि बाली भी काम मोहित है, ध्वनित है। क्रौंच का एक अर्थ कृश भी है क्योंकि सीता राम एक-दूसरे के विरह से कृश है अतः कृशता और विरह व्यंजना के कारण सुन्दरकाण्ड की कथा की ध्वनि है। कुटिल रावण का वध श्री राम ने किया, अतः युद्धकाण्ड की कथा ध्वनित है। उत्तरकाण्ड में लोकापवाद रूपी वधिक या रजक रूपी व्याध के कारण पुनः श्री राम और सीता का वियोग हुआ, अतः असाधारण पीड़ा की व्यंजना से उत्तरकाण्ड की कथा भी इस श्लोक से ध्वनित होती है। कहना यह कि शृंगार, वीर, अद्भुत, रौद्र तथा करुण रस व्यंजक सात काण्डों की कथा वस्तु भी टीकाकारों ने इसी बीज श्लोक में ध्वनित मानी है। वाल्मीकि रामायण के सुप्रसिद्ध विद्वान् आचार्य स्वामी सीताराम शरण लक्ष्मण किलाधीश अयोध्या ने इस श्लोक में सप्त काण्डात्मक व्यंग्य अर्थ का अनुशीलन ही अभिप्रेत माना है। तात्पर्य यह कि चाहे यह 'रामस्य अयनं रामायणम्' हो और चाहे 'रमाया इदं चरितम् रामम्, तस्यायनम् रामायणम्' हो, महान् काव्य है। रस दृष्टि से ही रामायण का अध्ययन होना चाहिए।

'वाल्मीकि रामायण में रस विमर्श, डा० महावीर अग्रवाल का मेरठ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध इसी दिशा में एक सुनियोजित अनुशीलन है। लेखक ने वाल्मीकि रामायण में अंगीरस का अच्छा विचार किया है। करुण-रस के विविध प्रसंगों के विस्तृत अनुशीलन द्वारा दशरथ शोक से लेकर रावण वध तक की शोकाकुल स्थितियों का शास्त्रीय विश्लेषण लेखक की मर्मज्ञता का सूचक है। पंचम अध्याय में शृंगार तथा वीर एवं षष्ठ अध्याय में हास्य, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शांत तथा वात्सल्य का विवेचन किया गया है। सप्तम अध्याय में प्रकृति चित्रण एवं रस निष्पत्ति में उसकी सहकारिता पर प्रकाश डाला गया है। आनन्दवर्धन और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वाल्मीकि के प्रकृति चित्रण को रसात्मक बोध की दृष्टि से उदात्त एवं भव्य माना है, डा० अग्रवाल ने इस अल्प विवेचित पक्ष का जैसा विशद् उद्घाटन किया है, उसे देखकर उनकी अनुसन्धान प्रवृत्ति का स्पष्ट परिचय मिलता है। तत्त्वात्मक शोध की दृष्टि से यह प्रबन्ध पठनीय है। विवेचन-विश्लेषण में लेखक की सूक्ष्मेक्षिका, विद्वत्ता तथा अध्यवसायिता का पद-पद पर परिचय मिलता जाता है। आशा है, रामायण प्रेमी इस अनुशीलन से लाभान्वित होंगे तथा भावी शोधार्थी अन्य काव्य तत्त्वों के परिप्रेक्ष्य में इसी तरह का अध्ययन करने में प्रवृत्त होंगे।

मेरी स्थिति तो राम के राज्याभिषेक के समाचार से प्रसन्न अयोध्यावासी उन बालकों की तरह है जो प्रौढ़ राम भक्त नागरिकों की अपेक्षा अपने-अपने घर द्वार पर ही कल्पना मात्र से उस झांकी का आनन्द लेने में लगे रहे—

बाला अपि क्रीडमाना गृहद्वारेषु संघशः
रामाभिषेक संयुक्ताश्चक्रुरेवं मिथः कथाः।

इस 'रसमालय' के सम्बन्ध में यत्किञ्चित् चर्चा को मैं इससे अधिक कुछ नहीं मानता ।

एक बार पुनः डा० अग्रवाल को इस उत्तम काव्य शास्त्रीय अध्ययन के लिए बधाई ।

श्रद्धानन्द बलिदान दिवस
२३·१२·९१

डा० विष्णु दत्त शर्मा राकेश (डी० लिट०)
आचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
तथा निदेशक
स्वामी श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

संकेताक्षर-सूची

ऋक्०	—ऋग्वेद
का० प्र०	—काव्प्रकाश
का० सू०	—काम-सूत्र
द० रु०	—दश-रूपक
द० रू० सं० वृ०	—दश-रूपक संस्कृत-वृत्ति
ध्व०	—ध्वन्यालोक
ना० शा०	—नाट्य-शास्त्र
ना० शा० अभि०	—नाट्यशास्त्र अभिनवभारती-व्याख्या
रं० गं०	—रस गंगाधर
सा० द०	—साहित्यदर्पण
र० तं०	—रस तरंगिणी
उ० रा० च०	—उत्तररामचरितम्
शृ० प्र०	—शृंगारप्रकाश
स० कं० भ०	—सरस्वतीकण्ठाभरण
बा० का०	—बालकाण्ड
अयो० का०	—अयोध्याकाण्ड
अर० का०	—अरण्य-काण्ड
कि० का०	—किष्किन्धा-काण्ड
सु० का०	—सुन्दर-काण्ड
यु० का०	—युद्ध-काण्ड
उ० का०	—उत्तर-काण्ड

विषय-सूची

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

प्रथम अध्याय

वाल्मीकि-रामायण का आदिकाव्यत्व एवं उसकी व्यापक महत्ता

वाल्मीकि-रामायण का आदिकाव्यत्व

संस्कृत वाङ्मय के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों ने महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण को आदिकाव्य माना है। इस तथ्य की समीक्षा के लिए विचारणीय है कि—

(अ) वह काव्य एवं कवित्व क्या है, जिसको धारण करने से महर्षि वाल्मीकि कवि और उनकी कृति को काव्य कहा गया।

(ब) काव्य-सम्प्रदायों का प्रणयन अथवा प्रचलन रामायण-रचना से पूर्व हो चुका था अथवा काव्य शास्त्रीय तथ्यों का अनुसन्धान रामायण की रचना के पश्चात् किया गया।

(स) क्या रामायण की रचना से पूर्व किसी ऐसे ग्रन्थ का प्रणयन नहीं हुआ था, जिसमें काव्यत्व विद्यमान हो? यदि हुआ था तो उसके विद्यमान होते हुए भी रामायण को आदिकाव्य क्यों कहा जाता है?

उपर्युक्त प्रश्नों पर विचार करते हुए हम देखते हैं कि—

(अ) काव्य शास्त्र की व्युत्पत्ति 'कवि' शब्द से होती है और कवि शब्द के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ पर विचार करने से विदित होता है कि 'कु' वर्णने धातु से कवि शब्द निष्पन्न होता है। 'कु' गुंजने धातु से 'कवतेः कोति इति वा कविः' माना जाता है। कवि अपने वैशिष्ट्य एवं महत्व के लिए प्रागैतिहासिक काल से समादृत होता रहा है। कवि शब्द का प्रयोग विश्वसाहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ 'ऋग्वेद' में दृष्टि-गोचर होता है। वहां इस शब्द का प्रयोग आतमद्रष्टा या क्रान्तद्रष्टा के अर्थ में किया गया है। यथा—

> 'कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्य्यास्वायोः
> अतस्त्वं दृश्यां अग्न एतान् पड्भिः पश्येरद्भुतां अर्य एवैः[1]।'

बृहदारण्यकोपनिषद् में वाङ्मय का एकातमभाव पुरुष से व्यक्त किया गया है। यथा—

---

१. ऋक् ४/२/१२

'अयं पुरुषः वाङ्मयः[१]'।

कवित्व के महत्त्व एवं वैशिष्ट्य को लौकिक साहित्यकारों ने भी स्वीकृत एवं समादृत किया है।

'अग्निपुराण' कवि की प्रशस्ति में कहता है—

'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते[२]॥'

आचार्य मम्मट कवि की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि—

'नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरस रुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति[३]॥'

महान् नाट्ककार भवभूति ने भी कवियों की वन्दना करते हुए कहा है—

'इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यः नमोवाकं प्रशास्महे।
विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्[४]॥'

उक्त प्रकार से प्रशंसित कवि के कर्म को काव्य कहा जाता है। 'गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च[५]', सूत्र से 'ष्यञ्' प्रत्यय होकर काव्य शब्द निष्पन्न होता है।

काव्य शब्द की विभिन्न परिभाषाओं का विवरण काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होता है—यथा—

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृतीपुनः क्वापि[६]।'

'शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि,
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाल्हादकारिणि[७]॥'

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्[८]'

'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्[९]।'

---

१. बृहदारणयकोपनिषद् १/५/३
२. अग्निपुराण ३३९/१०
३. का० प्र० १/१
४. उ० रा० च० १/१
५. पाणिनि, अष्टाध्यायी ५/१/१२४
६. का० प्र० १/४
७. वक्रोक्तिजीवितम् १/७
८. सा० द० १/३
९. र० ग० पृ० १०

(ब) ऐतिहासिकता के दृष्टिकोण से विचार करने पर विदित होता है कि प्रायः समस्त काव्यशास्त्रीय तथ्यों का अनुसन्धान रामायण की रचना के पश्चात् किया गया । यहां भारतीय परम्परा का अनुसरण करते हुए कहा जा सकता है कि नाट्यशास्त्र का उपदेश ब्रह्मा द्वारा दिया गया और भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' तथा तत्सम्बन्धी नाट्यकला का प्रादुर्भाव रामायण से पूर्व हो चुका था । परन्तु 'नाट्य-शास्त्र' में काव्य के गुण, छन्द, अलंकार आदि तत्वों की विस्तृत विवेचना नहीं की गई है । केवल रस-निष्पत्ति की ओर ध्यान दिया गया है । अतः रसात्मकता ही रामायण का आतमत्वाधायक तत्त्व है क्योंकि वाल्मीकि के समय तक रस-सिद्धान्त प्रतिष्ठित हो चुका था । किसी कथन में रमणीयता का आधान एवं अनुभव कराने वाले तत्त्वों, गुण, अलंकार रीति, शैली आदि का निरूपण एवं नामकरण रामायण तथा उससे परवर्ती वाङ्मय के अध्ययन और मनन के उपरान्त किया गया, और उन तत्त्वों, विशेषकर रसात्मकता की विद्यमानता के आधार पर रामायण को काव्य कहा गया ।

(स) 'ऋग्वेद' न केवल संस्कृत साहित्य का अपितु विश्वसाहित्य का प्राचीनतम लिखित ग्रन्थ है, इस तथ्य को विश्व के समस्त भाषा-वैज्ञानिकों ने एकमत से स्वीकार किया है ।

यह निर्विवाद सत्य है कि रामायण से बहुत पूर्वकाल में ऋग्वेद का पठन-पाठन प्रचलित हो चुका था । जहां तक उसमें काव्यत्व के विद्यमान होने का प्रश्न है, ऋग्वेद में अभूतपूर्व काव्यसौष्ठव विद्यमान है । प्रसंगवश यहां कुछ उद्धरण प्रस्तुत करना सम्यक् होगा—

सूर्य को नायक तथा उषा को नायिका के रूप में चित्रित करते हुए कहा गया है कि—

'सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्य्यो न योषामभ्यैति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रतिभद्राय भद्रम्[१] ॥'

ईश्वर, जीव और प्रकृति के रूप को रूपक अलंकार द्वारा कितनी सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है—

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति[२] ॥'

ऋग्वेद की भाषा शैली, अलंकार योजना आदि काव्यगुणों की प्रशंसा प्रायः सभी विद्वानों ने की है ।

---

१. ऋक् १/११५/२
२. ऋक् १/१६४/२०

अस्तु, ऐसी परिस्थिति में जबकि ऋग्वेदादि वाङ्मय रामायण से पूर्व विद्यमान था और उसमें काव्यगत वैशिष्ट्य भी प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होता है। तब रामायण के आदिकाव्यत्व के पक्ष विपक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं—

(१) ऋग्वेदादि वाङ्मय अनादि एवं अपौरुषेय हैं। आदिकाव्य उसी को कहा जा सकता है, जिसके उद्भव-काल की गणना की जा सके। अतः वैदिक वाङ्मय को आदिकाव्य न कहकर तदुत्तरवर्ती रामायण को ही आदिकाव्य कहा जाना उचित है।

(२) वैदिक वाङ्मय काव्यत्व की अपेक्षा अत्यधिक उच्चस्तरीय वस्तु है। उसे काव्य अथवा आदिकाव्य-मात्र से अभिहित करना, उसके महत्त्व एवं गौरव को निन्दित करना है :

महाकवि 'माघ' ने देवर्षि नारद के माध्यम से इस विचार को व्यक्त करते हुए लिखा है—

'करोति कंसादिमहीभृतां वधाज्जनो मृगाणामिव यत्तवस्तवम् हरे।
हिरण्याक्षपुरःसरद्विपद्विषः प्रत्युत सा तिरस्क्रिया[१] ॥'

जो सिंह उन्मत्त महाबली हाथी का संहार करें, उसे मृगों का संहारक कहकर प्रशंसा की जाये, तो यह प्रशंसा नहीं अपितु उसकी निन्दा है, उसके महत्त्व का तिरस्कार है। अतः वैदिक वाङ्मय को काव्य या आदिकाव्य मानना उक्त विचार से भी असंगत ही है।

परिणामतः कहा जा सकता है कि महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण ही आदिकाव्य है।

वाल्मीकि-रामायण की व्यापक महत्ता

'कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविता-शाखां वन्दे वाल्मीकि-कोकिलम् ॥'

काव्यतरु पर आरूढ़ होकर जिस प्राचेतस् ब्रह्मविद् आदि कवि महर्षि वाल्मीकि-रूप कोकिल ने 'राम-राम' इन मधुराक्षरों के रटन से साहित्य-जगत् को अनुगुंजित किया, उसकी महिमा अपरिमेय है। वाल्मीकि शब्द स्वयं ही विवृत करता है कि महर्षि ने इतनी कठोर साधना की कि उनके ऊपर वाल्मीक विनिर्मित हो गया। महर्षि वाल्मीकि को ब्रह्मा ने 'आद्यः कविरसि[२]' कहकर सम्बोधित किया था। और आज भी विद्वद् वर्ग में वही परम्परा बद्धमूल है। तमसा तट पर विचरण करते

---

१. शिशुपाल वध, १/३९

२. उ० रा० च०, अं० २, वाक्य सं० २४, संस्करण कपिलदेव द्विवेदी, १९६८

वाले तपः पूत महर्षि ने व्याध द्वारा कामासक्त क्रौंचमिथुन में पुरुष का निर्मम वध होते देखा तो उनका शोक-संविग्न हृदय ही मानो श्लोक रूप में फूट पड़ा—

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्[1] ॥'

ध्वनिवादी आचार्य 'आनन्दवर्धन' ने भी यही कहा है—

'क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः[2] ।'

कविकुलगुरु कालिदास ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है—

'निषाद विद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः[3] ।'

महर्षि वाल्मीकि से पूर्व वैदिक साहित्य की सृष्टि हो गई थी, किन्तु जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि अपौरुषेय एवं अनादि होने से वह छन्द, अलंकार आदि से युक्त होते हुए भी आदिकाव्य के गौरव से विभूषित नहीं हो सका । वाल्मीकि से पूर्व पद्यात्मक रचनाएं भी हुई थीं, किन्तु उनका उद्देश्य देवस्तुति, धर्मभावना, देवार्चन अथवा उपासना मात्र था । वाल्मीकि ही सर्वप्रथम ऐसे क्रान्तदर्शी कवि थे जिन्होंने कविता का सम्बन्ध साक्षात्-जीवन से स्थापित किया ।

रामायण में सर्वप्रथम लौकिक अथवा पौरुषेय छन्द का अभिराम अवतरण हुआ—

'आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतारः[4]'

अतः रामायण भारतीय साहित्य की प्रथम सृष्टि है जिसके लिए प्रयुक्त आदिकाव्य शब्द सर्वथा सार्थक है । महाकवि 'क्षेमेन्द्र' ने भी 'वाल्मीकि' को कवियों में उसी प्रकार आदिकवि माना है, जिस प्रकार वर्णों में ओंकार का स्थान सर्वप्रथम होता है—

'स वः पुनातु वाल्मीकेः सूक्तामृतमहोदधिः ।
ओंकार इव वर्णानां कवीनां प्रथमो मुनिः[5] ॥'

कविवर 'भोज' ने वाल्मीकि मुनि को मधुरतम उक्तियों का मार्गदर्शी बताया है—

'मधुमयभणितीनां मार्गदर्शीमहर्षिः[6] ।

---

१. वा० रा० बाल का० २/१५
२. ध्व० १/१५
३. रघुवंश १४/७०
४. उ० रा० च०, अंक २, वाक्य सं० २३, पृ० ११०
५. क्षेमेन्द्र—रामायणमंजरी
६. भोज— रामायण चम्पू १/८

सन्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपने अमर महाकाव्य 'रामचरितमानस' में वाल्मीकि की प्रशंसा करते हुए कहा है—

'मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई ।
तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई ।।'
'अति अपार जे सरित वर, जौं नृप सेतु कराहिं ।
चढ़ि पिपीलिकउ परमलघु, बिनु श्रम पारहिं जाहिं[1] ।।'

वाल्मीकि और व्यास भारतीय साहित्यकाल के दो उज्ज्वल नक्षत्र, साहित्य साधना के अनन्त राजमार्ग के दो अविश्रान्त पथिक, विभिन्न युगों की दो प्रकाशमान प्रतिमाएं और सृष्टि के साथ सदाशय-रूप में रात तथा दिन की तरह चलने वाली दो अक्षय विभूतियाँ हैं ।[2]

रामायण और महाभारत दोनों यद्यपि भारतीय साहित्य की अभ्रंलिह अट्टालिकाएं हैं । पुनरपि अनेक दृष्टियों से रामायण को महाभारत की अपेक्षा भारतीय जन-जीवन में अधिक गौरव प्राप्त हुआ है ।

वाल्मीकि भारतीय साहित्य के ऐसे महान् कवि हैं जिनका इस देश के साहित्य और संस्कृति की परम्परा पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा है । साथ ही उनका महत्व सार्वदेशिक और सार्वकालिक है । दूसरी ओर रामकथा इस देश की ऐसी साहित्यिक और सांस्कृतिक निधि है जो युगों से यहां की जनता को प्रकाश देती आयी है और युगों तक देती रहेगी ।

'रामकथा का इस देश के वाङ्मय में सबसे महत्वपूर्ण स्थान रहा है । उसने भारतवर्ष के धार्मिक और ललित दोनों ही प्रकार के साहित्य को अत्यन्त गहराई के साथ और अत्यन्त व्यापक रूप में प्रभावित किया है । राम और कृष्ण इस देश के सर्वाधिक प्रिय और प्रभावशाली नायक सिद्ध हुए हैं तथा रामायण, महाभारत सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रभावशाली महाकाव्य । विगत ढाई हजार वर्षों में और उससे भी पूर्व, जितने धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक आन्दोलन हुए हैं, उन पर इन दो लोकनायकों और इन दो महाकाव्यों का अत्यन्त गहरा और आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा है । ब्राह्मण, बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सम्प्रदायों ने अपनी-अपनी दृष्टि से इन दो चरित्रों और काव्यों को देखा और परखा है और धर्माचार्यों तथा कवियों ने अपने-अपने ढंग से उनकी व्याख्या, प्रचार और काव्य-रचना की है[3] ।'

---

१. तुलसी—रामचरितमानस, बा० दो० १३
२. गैरोला—संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २६६
३. डा० राम प्रकाश अग्रवाल—वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन, पृ० २२

रामायण को यदि समस्त भारतीयों की अक्षय निधि कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी । विण्टरनिट्ज ने ठीक ही कहा है––

'यह समस्त भारतीय लोगों की सम्पत्ति बन गई है और कदाचित् समस्त विश्व-साहित्य में किसी अन्य काव्य ने शताब्दियों तक राष्ट्र के काव्य और विचारों को इससे अधिक प्रभावित नहीं किया है[1] ।'

काव्य की सर्वप्रथम सच्ची अवधारणा महर्षि वाल्मीकि को प्राप्त हुई और उन्होंने इस सत्य को प्रतिपादित किया कि सच्चा काव्य विश्व के दुःख और करुणा के द्वारा द्रवीभूत कवि हृदय से भावनाओं का होने वाला स्वतः प्रभाव है[2] ।

रामायण का भारतीय साहित्य एवं जीवन में महत्व

किसी युग का साहित्य तत्कालीन समाज का दर्पण होता है । उसमें राष्ट्र की आशाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति होती है । प्रत्येक कवि के अपने विशिष्ट भाव और विचार होते हैं, वह जन-जीवन को अपने दृष्टिकोण से देखता है और विशिष्ट प्रणाली से उन अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है । अतः ये भाव अथवा विचार परम्परागत होते हुए भी नवीनता लिए होते हैं ।

रामायण में वैदिक विचारों की ही विस्तृत व्याख्या की गई है, किन्तु एक अपूर्व शैली में । प्राचीन आर्यों के साहसिक एवं गौरवशाली जीवन को एक अनूठी संगीतमय, छन्दोबद्ध एवं संवेदनशील शैली में चित्रित कर वाल्मीकि ने साहित्य को कला का भव्य स्वरूप प्रदान कर दिया । सजीव घटनाओं और भावनाओं के अंकन से तथा कवि के मानवीय दृष्टिकोण एवं विवेचन से यह साहित्य सामान्य जन के लिए भी रस और आनन्द का स्रोत बन गया । विद्वान् समीक्षकों का रामायण महाकाव्य के विषय में यह विचार उचित है कि––'मानव जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं, जिसकी झांकी रामायण में न मिलती हो, अथवा ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं,

---

1. "It has become the property of the whole Indian people, and scarely any other poem in the entire literature of the world, has influenced the thought and poetry of the nation for centuries—"Winternitz : History of Indian Literature, Vol. I, p. 476.
2. "It was he who discovered the great truth that true poetry is spontaneous of the poet's heart in response to the pain and anguished cry of the universe."
   —Some Aspects of Literary Criticism in Sanskrit, p. 6-7.

जिसका आभास उसमें न दिया गया हो[1] ।'

वाल्मीकि ने मूलतः लौकिक दृष्टिकोण से ही अपने महाकाव्य में कला और जीवन का, सुन्दरता और नैतिकता का अनुपम समन्वय करके 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' को साकार रूप प्रदान किया है। यदि जीवन की अभिव्यक्ति, जीवन का विश्लेषण और जीवन की महत्ता को सुन्दर रूप में प्रस्तुत करना उत्तम साहित्य का मानदण्ड मान लिया जाए तो निश्चय ही रामायण श्रेष्ठ साहित्य सिद्ध होता है। कोई भी कवि एवं कलाकार तब श्रेष्ठ कवि अथवा कलाकार कहा जाता है, जब वह जीवन को एक अभिव्यक्ति और एक समन्वय के रूप मे देखता है, और अपने इस दर्शन को जन-जन के समक्ष दर्पण की तरह प्रस्तुत करता है। चूंकि आदिकवि ने अपने अनुभवों को दर्पण के समान अन्य सहृदयों तक सफलतापूर्वक पहुंचाया है, अतः यह उच्च कोटि का साहित्य बन गया है।

जिसे आज हम साहित्यिक कला कहते हैं, उसका प्रारम्भ इस देश में रामायण की रचना से ही हुआ है। इस सर्वथा नवीन किन्तु पूर्णतः सफल सत्प्रयास का लोगों ने अत्यन्त उत्साहपूर्वक स्वागत किया होगा। साहित्य भी इतना स्वस्थ, इतना कमनीय और इतना उत्प्रेरक बन सकता है, यह उस समय के समाज के लिए एक रोमांचकारी अनुभूति रही होगी। रामकथा के लिए पद्यात्मक शैली अपनाकर वाल्मीकि ने साहित्यिक अभिव्यक्ति के क्षेत्र में एक सर्वथा नवीन क्रान्तिकारी तथा अत्यन्त रुचिकर मार्ग का सूत्रपात किया।

'रामायण एक कवि कलाकार की मनोहर रचना है। काव्य और नैतिकता का ऐसा मनमोहक समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है। विषय की उत्कृष्टता, घटनाओं का वैचित्र्यपूर्ण विन्यास, भाषा का सौष्ठव, छन्दों का संगीतमय प्रवाह, सर्गों का सुसम्बद्ध गठन, प्रकृति का अत्यन्त सजीव रूप में उपस्थापन, पात्रों का मर्यादित विकास और मानवीय मनोभावों का उदात्तीकरण जिस भी दृष्टि से देखिए रामायण एक निपुण कवि की रचना है[2] ।'

रस-पेशल वर्णन रामायण का हृदय है। जहां अन्य परवर्ती कवियों की कविता अलंकारों के बोझ से लदी हुई है, वहां आदिकवि का काव्य सहज स्वाभाविकता, भावप्रवणता एवं सौन्दर्य चेतना से ओत-प्रोत है। वर्ण्य-विषय के सभी पक्ष कवि के हृदय-पटल पर स्पष्ट रूप से अंकित हैं। वह मानव मन का सच्चा पारखी है। वह यह अच्छी तरह जानता है कि मानव के अन्तःकरण को किन दृश्यों के अंकन से भावाभिभूत किया जा सकता है। रस तो इस महाकाव्य की आत्मा है। गुण, अलंकार,

---

१. सी० एन० जुत्शी—'एस्पेक्टस आफ आर्यन सिविलाइजेशन एज डेपिक्टेड इन द रामायण' (चतुर्थ ओरिएंटल कान्फ्रेंस का विवरण)

२. शांतिकुमार नानूराम व्यास—रामायण कालीन संस्कृति, पृ० १७२

ध्वनि आदि के सभी भेद-उपभेद इस काव्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। यदि यह कहा जाए कि महाकाव्य का सर्वप्रथम एवं सर्वगुण परिपूर्ण निदर्शन वाल्मीकि रामायण ही है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। यही कारण है कि भारतीय साहित्य एवं समाज पर जो प्रभाव रामायण का अंकित हुआ है, वह आज तक किसी अन्य काव्य का नहीं हो सका।

अधिकांश भारतीय साहित्य भावपक्ष एवं कलापक्ष के लिए रामायण का ऋणी है। रामायण पर आधारित नाटकों, महाकाव्यों, गीतिकाव्यों, चम्पूकाव्यों आदि की संख्या बहुत बड़ी है।

कालिदास और भवभूति जैसे महाकवियों ने अपनी-अपनी कृतियों में आदि-कवि के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित की है। न केवल संस्कृत में रामायण के आधार पर अनेक काव्यों की रचना हुई अपितु हिन्दी एवं अन्य सभी भारतीय भाषाओं में भी इस महाकाव्य को आधार बनाकर साहित्य सर्जना हुई। प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ वाल्मीकि के कथानक को लेकर रामायणों का निर्माण हुआ। विदेशी भाषाओं में भी रामायण का अनुवाद किया गया। रामायण भारतीय साहित्य-गगन का भास्कर है, जो समस्त साहित्य को प्रकाशित कर रहा है।

भारतीय जन-जीवन पर भी इसकी अमिट छाप है, क्योंकि इस देश की मनीषा ने त्याग को सर्वोच्च मानवीय गुण के रूप में स्वीकार किया है और रामायण में भारत के महोच्च परिवार की त्याग-कथा वर्णित है। पिता दशरथ का पुत्र-स्नेह के लिये शरीर-त्याग, पुत्र राम का पिता दशरथ एवं माता कैकेयी की इच्छापूर्ति के लिए गृहत्याग, भार्या सीता एवं अनुज लक्ष्मण का राम के लिए ऐश्वर्य एवं सुख-त्याग तथा भाई भरत का अग्रज राम के लिए राज्य-त्याग स्नेह के कारण ही सम्पन्न हो पाया है।

वाल्मीकि ने पुरुष को पुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित कर एक महान् आदर्श प्रस्तुत किया है कि मानव अपने सुकर्मों द्वारा देवत्व को प्राप्त कर सकता है।

राम इस महाकाव्य के एक ऐसे पात्र हैं, जिनमें एक से एक दुर्लभ गुण हैं। उनका जीवन भारतीयों के लिए प्रकाश-स्तम्भ है, जो सहस्राब्दियों से जीवन-पथ को आलोकित कर रहा है।

विभिन्न विजातीय संस्कृतियों के भीषण आक्रमणों में भी भारतीय जो अब तक चरित्र-भ्रष्ट न हो सके, उसका एकमात्र कारण वाल्मीकि के दिव्य प्रोज्ज्वल चरित्रों की हीरक-आभा है।

वाल्मीकि को यदि हम साहित्य का उत्कर्ष, संस्कृति के रक्षक, चरित्र-निर्माण के विश्वकर्मा, नीति के मनु तथा आनन्द के अक्षय स्रोत मानें तो ठीक ही है।

रामायण का अध्ययन न केवल साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक दृष्टि से अपितु व्यावहारिक दृष्टि से भी परम उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह भारतीय जीवन-मूल्यों की आधारशिला है। यह उन समस्त दार्शनिक तथ्यों एवं नैतिक आदर्शों का जाज्वल्यमान कोष है, जिन पर विविधता से युक्त भारतीयों का जीवन अवलम्बित है। जीवन के अरण्य में धंसे हुए व्यक्ति के लिए रामायण के श्लोक वेदवाक्य बनकर उसका मार्गदर्शन करते हैं। जहां कहीं भी विवाद और अस्पष्टता की स्थिति मानव के आचरण को झंझावात की भांति अपने कर्तव्य से पृथक् करने लगती है, रामायण में वर्णित आदर्श एक सफल भित्ति की भांति उस व्यक्ति को आचार-संहिता से च्युत नहीं होने देते। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ व्यक्ति रामायण के अंशों को उद्धरण के रूप में लाकर अपने आचरण की पुष्टि कर लेता है।

समाज के उच्च से लेकर निम्नतम वर्गों पर रामायण का इतना व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ा है कि इसकी तुलना में किसी भी अन्य साहित्यिक या धार्मिक कृति को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। रामायण भारतीयों के मस्तिष्क में रम चुकी है, उनकी आकांक्षाओं, भावनाओं एवं आचार-व्यवहार में आत्मसात् हो चुकी है। इस काव्य ने ही भारतीयों के हृदयों में 'राम-राज्य' की स्वर्णिम कल्पना को अंकित किया है।

यह पति-पत्नी के सम्बन्ध, पिता-पुत्र के कर्त्तव्य, गुरु-शिष्य के पारस्परिक व्यवहार, भाई का भाई के प्रति कर्त्तव्य, व्यक्ति का समाज के प्रति उत्तरदायित्व, आदर्श पिता, माता, पुत्र, भाई, पति एवं पत्नी का चित्रण तथा आदर्श गृहस्थ-जीवन को अभिव्यक्त करता है।

रामायण का सांस्कृतिक महत्त्व

रामायण भारतीय संस्कृति का आकाशदीप है, उज्ज्वल गौरव-शिखर है तथा भारतीय गार्हस्थ्य व्याख्या की मनुस्मृति है। विश्व के रंगमंच पर अनेक संस्कृतियां प्रादुर्भूत हुईं और कुछ समय तक अपना वैभव प्रदर्शित कर काल के कराल गाल में सदा-सर्वदा के लिए समा गयीं, किन्तु भारतीय संस्कृति आज भी अक्षुण्ण है, इसका मुख्य कारण जहां भारतीय संस्कृति के सार्वभौम सत्य, विश्व-बन्धुत्व एवं प्राणिमात्र के कल्याण की भावना से युक्त अत्युज्ज्वल सिद्धांत हैं, वहां भारतीय संस्कृति की महनीयता को प्रभावशाली एवं हृदयग्राही रूप में देश की कोटि-कोटि जनता के समक्ष उपस्थापित करने वाले प्रातः वन्दनीय वाल्मीकि मुनि सदृश महाकवियों द्वारा विरचित रामायणादि महाकाव्य हैं।

'रामायण न केवल, काव्य, महाकाव्य या वीर काव्य ही है, इसका इससे बहुत अधिक महत्व है। यह आर्यों का आचार शास्त्र एवं धर्मशास्त्र है। यह मानव-

जीवन का सर्वांगीण आदर्श प्रस्तुत करता है[१]।'

कोई भी साहित्यिक कृति तभी स्थायी एवं महत्त्वशाली मानी जाती है, जब वह पूर्ण रूप से प्रभावित करती है उन लोगों को, जिनकी संस्कृति का उसमें चित्रण किया गया है। इस दृष्टि से देखने पर यह निर्विवाद रूप ये कहा जा सकता है कि वाल्मीकि-रामायण की संस्कृति रोम और यूनान के महाकाव्यों की संस्कृति की भांति पुरातत्व अथवा इतिहास का एक खण्डहर मात्र बनकर नहीं रह गयीं, अपितु वह शताब्दियों से राष्ट्र की अविच्छिन्न संस्कृति के ताने-बाने में गुंथी हुई है।

वाल्मीकि ने आर्य संस्कृति के एक अतिशय प्राचीन एवं उत्कृष्ट रूप को मानो साकार रूप में रंगमंच पर उपस्थित कर दिया है और उसके सांस्कृतिक तथ्य 'मिश्र या वेबीलोन की तरह किसी मृत संस्कृति के निर्जीव उपलक्षण नहीं हैं, अपितु एक आत्मनिष्ठ और सुसंस्कृत जाति के जागरित अस्तित्व और सजीव चेतना के पुरातन प्रतीक हैं[२]।'

रामायण में हमें सभ्य मानव-समाज के रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, मनोरंजन, धर्म और दर्शन आदि का विशद वर्णन प्राप्त होता है। समाज की अनेक सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक संस्थाओं के विषय में प्रामाणिक जानकारी भी इस महाकाव्य में उपलब्ध होती है। स्वयं रामायण के प्रणेता महर्षि वाल्मीकि ने अपने काव्य को 'पुरातन इतिहास' कहा है—

'इममार्षं स्तवं दिव्यमितिहासं पुरातनम्।
ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः[३]॥'

वस्तुतः राजनीतिक इतिवृत्त की दृष्टि से यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। रामायण का समय आर्यजाति के इतिहास का अविस्मरणीय स्वर्णयुग है। इस काव्य में सर्वप्रथम विन्ध्य-पर्वतमाला के दक्षिण में आर्यों के प्रसार की प्रामाणिक बात कही गयी है। आर्यों ने किस प्रकार अनार्य जातियों को जीतकर उन्हें अपनी सभ्यता में परिणत करने का प्रयत्न किया था, यह तथ्य रामायण में वर्णित राम और राक्षसों के युद्ध से स्पष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त राजतंत्र का आदर्श, प्रशासनिक संस्थाओं के संयोजन, केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन, सैन्य संचालन और तत्कालीन लोकतंत्र की भावना आदि तथ्य भी प्रकाश में आते हैं। रामायण के चौबीस हजार श्लोकों में तथ्यों को कवि की कल्पना से पृथक् देखने पर एक स्पष्ट ऐतिहासिक वृत्तान्त हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है।

---

१. डा० कपिलदेव द्विवेदी—संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ० ११४

२. सुबोधचन्द्र मुकर्जी—द कल्चरल हिस्ट्री आफ इण्डिया—एन एपालाजी (इण्डियन कल्चर' जिल्द ६, पृ० २१८)

३. युद्धकाण्ड ११७/३२

भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्व, आध्यात्मिकता, धर्म परायणता, कर्मफल, पुनर्जन्म, यम-नियमों का पालन, पंचमहायज्ञ, वर्ण-आश्रम-व्यवस्था, विश्वबन्धुत्व की भावना, समन्वयवादिता, पुरुषार्थ चतुष्टय आदि सभी कुछ इस महाकाव्य में कूट-कूट कर भरे हुए हैं। रामायण की आदर्श भरी उक्तियां हमारे देश के सभी लोगों की जिह्वा पर सदैव फल-फूल रही हैं। रामायण की लोकप्रियता के कारण ही वैदिक संस्कृति इस देश के कोने-कोने में व्याप्त हो गयी। न केवल विद्वान् लोगों को अपितु सामान्य ग्रामीण जनों को रिझाने की, उनके मनोरंजन एवं ज्ञानवर्धन की परम्परा का सुन्दर स्वरूप रामायण के प्रचार में दृष्टिगोचर होता है। किस प्रकार विभिन्न वर्गों एवं जातियों में विभक्त समाज को प्रभावशाली ढंग से संगठित कर, उसमें प्रतीत होने वाले आन्तरिक एवं बाह्य विरोधों में समन्वय स्थापित किया तथा उसमें सत्य, सदाचार एवं सत्परम्पराओं को प्रतिष्ठित किया, इसका आभास रामायण के अध्ययन से हो जाता है। आर्यों का मस्तिष्क इतना जागरूक और उर्वर रहा होगा कि उन्होंने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की महत्वपूर्ण उपलब्धियों एवं अपने सांस्कृतिक प्रकाश को भाषा, संगीत, और कला के माध्यम से व्यक्त किया और उनका वह वर्णन इतना हृदयग्राही बन पड़ा है कि वह अमर हो गया। श्री नगेन्द्रनाथ घोष का इस विषय में यह कथन अत्यन्त उचित प्रतीत होता है—

"भारत के इतिहास पुराणों में, रामायण और महाभारत में, जीवन के जो सतत् स्पन्दनशील कण बिखरे पड़े हैं, उन्हें एक सूत्र में पिरोकर उनका पुनरुद्धार करने के लिए एक बड़े विद्वान् की और उससे भी बड़े एक कलाकार की आवश्यकता है[1]।"

जिस प्रकार महाभारत के विषय में यह श्लाधा प्रसिद्ध है कि ''यदिहास्ति-तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्' यह उक्ति आदिकाव्य रामायण के विषय में भी सत्य सिद्ध होती है।

"रामायण में सर्ग प्रतिसर्ग और राजवंशावलियों, लौकिक और अलौकिक प्राणी, असुर और दानव, यक्ष और गन्धर्व, सिद्ध और चारण, लोकोक्तियां और आख्यान, अर्द्ध पौराणिक और ऐतिहासिक कथायें, ट्राय और मेंफिस से पहले विद्यमान नगरों का वर्णन, प्रिअम और बूसिरिस से भी पूर्ववर्ती राजाओं का इतिवृत तथा अन्य अगणित घटनाएं और तथ्य वाल्मीकि की सशक्त और कलात्मक अभिव्यक्ति

---

१. नगेन्द्रनाथ घोष—'द रामायण एण्ड महाभारत ए सोसियोलाजिकल स्टडी' (सर आशुतोष मुकर्जी सिल्वर जुबिली वाल्यूम, ओरिएंटैलिया, भाग २, पृ० ३६१)

पाकर मुखरित हो उठे हैं।[1]"

रामायण का परवर्ती साहित्य पर प्रभाव

वाल्मीकि भारतीय साहित्य के ऐसे महान् कवि हैं जिसका इस देश के साहित्य पर अत्यन्त व्यापक प्रभाव पड़ा है। दूसरी ओर राम-कथा इस देश की ऐसी साहित्यिक निधि है जो युगों से यहां के कवियों एवं जनता को प्रकाश देती आयी है। और भविष्य में भी देती रहेगी। स्वयं वाल्मीकि ने अपने काव्य की प्रस्तावना में कहा है—

'यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति[2]॥'

रामायण एवं राम-कथा ने भारतीय जन-जीवन को इतना प्रभावित किया है कि कवित्व में गौरव के लिए मुख्य राम-कथा अथवा उससे सम्बद्ध कथानक का आश्रय लेना आवश्यक सा हो गया। रामायण् सदा से असंख्य कवियों की प्रेरणा का अनन्त स्रोत एवं चिरन्तन आदर्श रही है—

'परं कवीनामाधारं समाप्तं च यथाक्रमम्[3]।'

स्फूर्तियुक्त वर्णन, सरल छन्द तथा संगीतमय विविधता से परिप्लावित यह महाकाव्य भारतीय काव्य-गगन पर छा गया। प्राचीन एवं मध्यकालीन युग का कोई ऐसा भारतीय कवि नहीं था, जिसने वाल्मीकि के काव्य से प्रेरणा न ली हो तथा उसके विषय पर अपनी प्रतिभा तथा कल्पना की छाप न बैठा दी हो। संस्कृत साहित्य में महाकाव्य का सर्वप्रथम एवं भव्य निदर्शन वाल्मीकि रामायण में ही उपलब्ध होता है। दण्डी ने अपना महाकाव्य विषयक लक्षण रामायण को ही आदर्श मानकर लिखा होगा—

'अलंकृतं सक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्। सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः। सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरंजनं काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायेत सदलंकृतिः[4]।'

जिस प्रकार पश्चिम का साहित्य 'ईलियड' से प्रभावित माना जाता है, उसी प्रकार भारतीय महाकाव्यों की परम्परा का स्रोत वाल्मीकि-रामायण तथा महाभारत

---

१. श्री मन्मथनाथ दत्त कृत--- रामायण के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका से उद्धृत
२. बालकाण्ड, २/३६
३. बालकाण्ड, ४/२७
४. दण्डी-काव्यादर्श, १/१८-१९

हैं। महाभारत अपनी विशालता और जटिलता के कारण यदि प्रेरणा स्रोत है, तो रामायण एक ही नायक को केन्द्रविन्दु मानकर रचित होने से जटिलता तथा विषयान्तरता आदि दोषों से मुक्त है, संक्षिप्त, सुगठित एवं कवित्वमय है। अतएव परवर्ती कवियों के लिए न केवल प्रेरणा-स्रोत अपितु स्पर्धा एवं अनुकरण का आदर्श बन गई है। यदि यह कहा जाए कि यह भारतीय साहित्य का मेरुदण्ड है तो अतिशयोक्ति न होगी।

परवर्ती कवियों, नाटककारों और चम्पूकारों में से अनेक ने रामायण को अपना उपजीव्य काव्य माना है।

संस्कृत साहित्य पर प्रभाव

महाकवि कालिदास ने रघुवंश में वाल्मीकि को 'आद्यः कविः[1]' कहकर सम्बोधित किया है। कालिदास के काव्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने आदिकवि के भावों और शब्दों से अपनी कल्पना और भाव प्रकाशन क्षमता को समृद्ध एवं सशक्त बनाया है। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए कालिदास की कृतियों से अनेक प्रसंग उद्धृत किये जा सकते हैं। विस्तार भय से एक दो उदाहरण देना ही उचित होगा।

मेघदूत में मेघ को दौत्यकर्म में नियोजित करने की प्रेरणा कालिदास को हनुमान के दूतत्व से प्राप्त हुई थी। कालिदास काव्य के मर्मोद्घाटक विद्वान् टीकाकार 'मल्लिनाथ' ने 'मेघदूत' के प्रथम श्लोक की टीका करते हुए लिखा है—

'सीतां प्रति रामस्य हनुमत्संदेशं मनसि निधाय मेघसन्देशं कविः कृतवानित्याहुः'।

अतः मल्लिनाथ का मत है कि मेघ को दिया गया संदेश हनुमान को दिये गये संदेश से अनुप्रेरित है। 'उत्तरमेघ' में सीता और हनुमान का स्पष्ट उल्लेख भी उपलब्ध है—

'इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा।
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैवम्[2]॥'

रामायण के सुन्दरकाण्ड की कतिपय पंक्तियों तथा मेघदूत की पंक्तियों में भाव-साम्य भी दृष्टिगोचर होता है।

रामायण में हनुमान ने राम से मार्ग में कहीं विश्राम न करने की प्रतिज्ञा की है—

---

१. 'स पृष्टः सर्वतो वार्तमाख्यद्राज्ञे न संततिम्।
प्रत्यर्पयिष्यतः काले कवेराद्यस्य शासनात्॥—रघुवंश १५/४१

२. उत्तरमेघ ४२

'प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा[1] ।'

मेघदूत में यक्ष ने मेघ से कहा है कि मित्र का अभीष्ट करने वाले कहीं विश्राम नहीं करते—

'मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः[2] ।'

रामायण के 'बालकाण्ड' के छठे सर्ग के राजवर्णन प्रसंग में दशरथ तथा उनके राज्य का और युद्धकाण्ड के १३१ वें सर्ग में रामराज्य का जो वर्णन किया है, उसका प्रतिबिम्ब 'रघुवंश' के राजाओं के शीलवर्णन में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । अयोध्याकाण्ड के ९४ वें सर्ग में चित्रकूट का जो वर्णन उपलब्ध है, उसको 'कुमार-संभवम्' के हिमालय वर्णन के बीजरूप में देखा जा सकता है । अयोध्याकाण्ड के ११७ वें सर्ग में सीता के पतिव्रत की जो प्रशंसा की गयी है उसका परिस्फुट स्वरूप 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थ अंक में शकुन्तला को दिये गये उपदेश तथा आशीर्वाद में दिखाई देता है । गोदावरी, मन्दाकिनी इत्यादि नदियों का रामायण में प्राप्त वर्णन कालिदास के सरिता वर्णनों का बीजभूत है ।

वाल्मीकि के हेमन्त, वर्षा, शरद, वसन्त प्रभृति ॠतुओं के वर्णनों में यथार्थ की प्रचुरता के साथ-साथ कल्पना के लालित्य की छीटें भी बिखरी हुई हैं, इन्हीं, विकीर्ण वर्णनों से प्रेरणा ग्रहण कर, कालिदास ने 'ॠतुसंहारम्' का ललित मुक्तक-काव्य प्रणीत किया है ।

कालिदास का रूप सौन्दर्य वर्णन वाल्मीकि का ही परिवर्तित रूपान्तर है । वियोग-वर्णन का मार्ग-दर्शन भी कालिदास को आदिकवि से मिला है । यद्यपि कालिदास की उपमाएं संस्कृत साहित्य में अपूर्व विश्रुति प्राप्त कर चुकी हैं पुनरपि वे उपमाओं के प्रयोग में आदिकवि के ॠणी माने जायेंगे ।

इस प्रकार काव्य रसिकों के कण्ठाहार कवि कुलगुरु कालिदास भी वाल्मीकि के बहुत ॠणी हैं और सर्वत्र वाल्मीकि से प्रेरणा लेते हुए दिखाई देते हैं ।

महान् नाटककार 'भवभूति' ने तो अपने नाटकों में वाल्मीकि के पूरे-पूरे श्लोक उद्धृत किए हैं, और अपनी प्रेरणा के स्रोत इस आदिकवि के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा है कि ऐसे आदिकवियों की वाणी का अनुसरण स्वयं अर्थ करता है—

'ॠषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति[3] ।'

अश्वघोष ने बौद्ध होते हुए भी 'बुद्धचरित' में सिद्धार्थ का चित्रण रामायण के राम के आधार पर किया है । भट्टि, भारवि, एवं बाण आदि की कृतियों में भी

---

१. सुन्दरकाण्ड १/१३१

२. पूर्वमेघ ४१

३. उ० रा० च० १/१०

वाल्मीकि का प्रभाव परिलक्षित होता है। जब ऐसे श्रेष्ठ महाकवि, आदिकवि एवं उनके अमर महाकाव्य के प्रति कृतज्ञ होने में गौरव अनुभव करते हैं। तब उसकी महिमा का वर्णन सरल कार्य नहीं है।

संस्कृतेतर साहित्य पर प्रभाव

भारत के प्रादेशिक साहित्य पर भी रामायण का प्रभाव इतना व्यापक है कि उसका पूर्ण अध्ययन एक पृथक् शोध प्रवन्ध का विषय है। राम-कथा को लेकर भारतीय भाषाओं में भी अनेक रामायणों का प्रणयन हुआ। हिन्दी-रामचरितमानस, तमिल—कंबन- रामायण, तेलगु—द्विपाद-रामायण, मलयालम्—रामचरित, कन्नड—तोखे-रामायण, वंगाली—कृत्तिवासीय-रामायण, उड़िया—वलरामदास-रामायण, असमिया—रामायण मराठी—भावार्थ-रामायण, गुजराती—रामबालचरित तथा राजस्थानी—रघुनाथ रूपक गीतों से, वाल्मीकि की दिग्विजय के प्रमाण हैं। बौद्ध और जैन भी रामायण के व्यापक प्रभाव से अछूते नहीं रहे हैं। 'दशरथ-जातक' और 'अनामक-जातक' में रामकथा का बौद्ध रूप देखने को मिलता है तो विमलसूरि के 'पउम-चरिय' और हेमचन्द्राचार्य की 'जैन-रामायण' में भी जैन परम्परानुसार राम-कथा ही वर्णित है। सन् १५८५ में अकबर के आदेश से रामायण का फारसी में अनुवाद किया गया। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में इसके अंग्रेजी, जर्मन, फ्रांसीसी, इतालवी आदि यूरोपीय भाषाओं में भी अनुवाद हो चुके हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'वन्दौ मुनिपद कंज रामायण जेहि निरमयेउ' कहकर वाल्मीकि को ही अपना आदर्श बताया है।

इस प्रकार रामायण महाकाव्य ने प्रत्येक दृष्टि से संस्कृत, हिन्दी एवं अन्य भारतीय तथा पाश्चात्य जगत् की भाषाओं के साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया है।

रामायण का ऐतिहासिक महत्त्व

भारतीय परम्परा में रामायण को एक इतिहास भी माना जाता है। शैली की दृष्टि से अत्युत्तम काव्य होते हुए भी विषय वस्तु और घटनाओं की दृष्टि से वह एक इतिहास है। प्राचीन भारत की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का बहुत कुछ यथार्थ वर्णन इसमें प्राप्त होता है। कुछ पश्चिमी विद्वान् प्राचीन भारतवासियों के ऐतिहासिक ज्ञान पर आक्षेप करते हैं। पार्जीटर नामक विद्वान् का मत है कि प्राचीन भारतीयों ने कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं लिखा है।[1]

मैक्डोनल ने कहा है कि 'इतिहास भारतीय साहित्य की एक कमजोरी है। ऐतिहासिक बोध का अभाव एक ऐसी विशेषता है जिसके कारण संस्कृत साहित्य के

---

१. पार्जीटर—एन्सिएन्ट इन्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन, पृ० २

इतिहास में ठीक कालक्रम नहीं मिलता[1]।'

पश्चिमी विद्वानों की मुख्य आपत्ति इतिहास के कालक्रम को लेकर है। कालक्रम और घटनाएं ही इतिहास के दो मुख्य तत्त्व हैं। प्राचीन भारत के इतिहास में कालक्रम के सम्बन्ध में कुछ कठिनाई अवश्य है, इसका एक कारण भारतीय इतिहास और साहित्य की प्राचीनता है। विक्रम संवत् से पूर्व का कोई संवत् संसार में नहीं है। दूसरे कालक्रम की अपेक्षा प्राचीन भारतीयों का ध्यान घटनाओं तथा उनसे लक्षित होने वाले जीवन के सत्यों की ओर अधिक रहा है। घटनाओं में कुछ कल्पना की अतिरंजना तथा कुछ अलौकिकता का पुट अवश्य रहता है। फिर भी प्राचीन इतिहास में विशेषत: रामायण में प्राचीन घटनाओं का बहुत कुछ यथार्थ रूप मिलता है। घटनाओं के इस रूप को इतिहास ही कहा जायेगा। इसी आधार पर रामायण को इतिहास मानना सम्यक् ही है। सामान्य भारतीय रामायण-काल को अपने इतिहास का स्वर्णयुग मानता है। वाल्मीकि के राम इक्ष्वाकुवंश के प्रतिनिधि के रूप में साम्राज्य विस्तार के लिए अथवा सीता के उद्धार के लिए अथवा दक्षिण में आर्य संस्कृति का प्रसार करने के लिए युद्ध करते हैं। लासेन और वेबर का मत है कि रामकथा आर्य संस्कृति के दक्षिण में विस्तार किए जाने का ऐतिहासिक रूप है[2]।

रामायण में प्राचीन घटनाओं का वर्णन पूर्ण यथार्थता के साथ किया गया है। पिता की आज्ञा से राम का वनगमन, वन में राम द्वारा राक्षसों का संहार, रावण द्वारा सीता का अपहरण, हनुमान द्वारा सीता की खोज एवं लंका के महायुद्ध में राम-पक्ष द्वारा रावण-पक्ष की पराजय के रूप में असत्य पर सत्य की, अधर्म पर धर्म की विजय, ये इतनी यथार्थ घटनाएं हैं कि इनका वर्णन करने वाला काव्य निश्चय ही एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ की कोटि में आ जाता है।

वैज्ञानिक अर्थ में इतिहास को केवल प्राचीन घटनाओं का याथातथ्य वर्णन माना जाता है, किन्तु इतिहास की घटनाओं से मनुष्य को शिक्षा भी मिलती है, और वस्तुत: इतिहास को पढ़कर मिलने वाली शिक्षा ही उसका मुख्य तत्व होता है। इस दृष्टि से भी रामायण का महत्व अन्य इतिहासों से कम नहीं है।

इस प्रकार वाल्मीकि-रामायण वह अजर-अमर आदि-काव्य है, जिसका महत्त्व साहित्यिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक सभी दृष्टियों से सर्वोपरि है।

---

१. मैक्डोनल--ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, पृ० १०

२. मैक्डोनल-हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, पृ० ३११

द्वितीय अध्याय

काव्य में रस का स्थान, महत्ता एवं स्वरूप
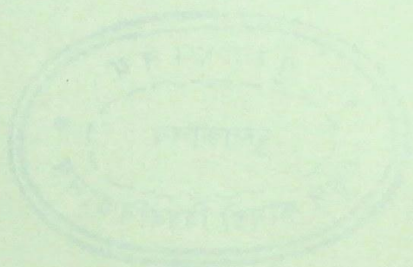
काव्य में रस का स्थान एवं महत्व

रस, संस्कृत वाङ्मय का अत्यन्त प्राचीन शब्द है, जिसका प्रयोग वेदों में हुआ है। भारतीय साहित्य शास्त्र में 'रस-सिद्धांत' का विशेष महत्व है, यह सिद्धांत भारतीय काव्य शास्त्र का मेरुदण्ड ही नहीं, उसकी महत्तम उपलब्धि भी है। रस-सिद्धांत एक ओर जहां भारतीय मेधा के उत्कर्ष और भारतीय चिन्तकों के मानव-मन सम्बन्धी गहन अनुशीलन का परिचायक है, वहाँ दूसरी ओर, भारतीय आचार्यों की सौन्दर्य शास्त्र विषयक धारणाओं का भी परिचय इस सिद्धांत से सम्बद्ध ग्रन्थों में प्राप्त होता है[1]।

काव्य-शास्त्रियों ने रस को काव्य की आत्मा माना है, अन्य समस्त काव्यांग रीति, गुण, अलंकार, ध्वनि आदि अंग रूप होकर रस का उत्कर्ष बढ़ाने वाले माने गए हैं। यद्यपि विभिन्न आचार्यों ने अलंकार, ध्वनि आदि तत्त्वों की महत्ता प्रतिपादित की है, तथापि किसी भी आचार्य ने रस की उपेक्षा नहीं की है।

भरत-मुनि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक लगभग अठारह सौ वर्षों की सुदीर्घ साहित्य-शास्त्र परम्परा संस्कृत आचार्यों की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति और काव्य मर्मज्ञता की परिचायक है।

ध्वनिवादी भी रस-ध्वनि को मुख्य मानकर प्रधानता देते हैं। आचार्य मम्मट ने काव्य की परिभाषा में यद्यपि दोष रहित और गुणयुक्त शब्द और अर्थ को प्रधानता प्रदान की है। तथापि उन्होंने जो गुणों और दोषों का विवेचन किया है, वह रसों के ही संबंध में है—

> 'मुख्यार्थ-हतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद् वाच्यः।
> उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि सः[2]॥

गुणों को उन्होंने रस के 'उत्कर्षाधायक तत्त्व' ही कहा है—

---

१. एo केo डे--हिस्ट्री आफ संस्कृत पोयटिक्स, जिल्द २, पृo १८

२. काo प्रo ७/४९

'ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः[1] ।।

रस का सिद्धांत भारतीय अध्यात्मवाद के भी अनुकूल पड़ता है। आत्मा को आनन्दस्वरूप ही माना गया है—

'रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽनन्दी भवति[2]।'

यद्यपि वैदिक साहित्य में रस का शास्त्रीय विवेचन प्राप्त नहीं होता, फिर भी वैदिक ऋषियों को वाणी के माधुर्य एवं चमत्कार का ज्ञान नहीं था, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

डा० शंकरन् ने अनेक सूक्तों को उद्धृत कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है, कि ऋग्वेद में रस का प्रयोग वाणी के रस के रूप में किया गया है, किन्तु यह प्रयोग शास्त्रीय रूप धारण नहीं कर सका था। ऐसे प्रयोग व्यावहारिक रूप मात्र थे[3]।

डा० नगेन्द्र का मत है कि वैदिक ऋषि वाणी के चमत्कार से पूर्णतः परिचित थे। इसका प्रमाण वैदिक मंत्रों में प्राप्त होता है। वाणी के वैभव से मुग्ध होकर ऋषियों ने अपने आन्तरिक भावों की जो व्यंजना की है, उसमें मन को आकृष्ट करने की पर्याप्त शक्ति है[4]।

वाणी के चमत्कार से वैदिक ऋषि पूर्णतः परिचित था—उसकी विभूतियों का उसने अनेक स्थलों पर भाव-विभोर होकर उद्गीथ किया है। ऋग्वेद में ऐसे बहुत से मन्त्र पाये जाते हैं, जिनमें पृथ्वी से वाणी के रस को प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है—

'वाचो मधु पृथिवी। देहि मह्यम्[5]।'

वैदिक साहित्य के पश्चात् 'रामायण' एवं 'महाभारत का काल आता है। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में नवों रसों का उल्लेख मिलता है—

'पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम् ।
जातिभिः सप्तभिर्बद्धम तन्त्रीलय समन्वितम् ।।

---

१. का० प्र० ८/८७
२. तैत्तिरीय उपनिषद् ११/७/१
३. डा० शंकरन्—'थ्योरि आफ रस एण्ड ध्वनि', पृ० ३
४. डा० नगेन्द्र—रस शब्द का अर्थ विकास—हिन्दी अनुशीलन (धीरेन्द्र वर्मा अंक) पृ० ४२५
५. ऋक्० १ १/१६

रसैः शृंगार-करुण-हास्यरौद्रभयानकैः ।
वीरादिभिश्च संयुक्तं काव्यमेतदगायताम्[1] ।।

रामायण में स्थान-स्थान पर शृंगारादि समस्त रसों की इतनी सुन्दर योजना महर्षि वाल्मीकि ने कि है कि पाठक भाव-विभोर हो जाता है और रसार्णव में आकण्ठ निमग्न हो जाता है[2] ।

महाभारत में भी स्थूल रूप में 'रस' शब्द के अर्थ में कोई विकास नहीं हुआ किन्तु वीर, शान्त आदि रसों का अत्यन्त मुग्ध कर देने वाला स्वरूप हमें मिलता है ।

सूत्रकाल में भारतीय दर्शन के मूल ग्रन्थों की सूत्रबद्ध रचना हुई तथा जैन एवं बौद्ध दर्शन का प्रारम्भ हुआ । इसी युग में वैयाकरण पाणिनि की अष्टाध्यायी और पतंजलि के महाभाष्य आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त अर्थशास्त्र एवं वात्स्यायन के कामसूत्र का प्रणयन हुआ । इस युग में भी 'रस' शब्द का विशेष अर्थ-विकास नहीं हुआ । दर्शन-ग्रन्थों में तन्मात्रा के रूप में एवं अर्थशास्त्र में द्रव्य के रूप में रस का प्रयोग हुआ है—

वात्स्यायन के कामसूत्र में 'रस' शब्द का प्रयोग रति एवं कामशक्ति के रूप में हुआ है—

'रसो रतिः प्रीतिर्भावो रागो वेगः समाप्तिरिति रतिपर्यायाः[3] ।'

इसी ग्रन्थ में एक स्थान पर इसका प्रयोग शास्त्रीय अर्थ में भी दिखाई पड़ता है ।

'तदिष्टभावलीलानुवर्तनम्[4] ।

यहां पर रस का अर्थ भाव से है, जो शृंगारादि रस एवं संचारी भावों का बोधक है ।

भरत का 'नाट्यशास्त्र' रस-सिद्धांत का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है । हां, नाट्य-शास्त्र के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि भरत से पूर्व रस का विवेचन प्रौढ़ता को प्राप्त हो गया था, और उन्होंने पूर्वाचार्यों की समस्त उपलब्धियों का प्रयोग कर अपने विवेचन को पूर्ण बनाया ।

रस-स्वरूप

रस के स्वरूप तथा अनुभूति का सबसे प्रथम विवेचन आचार्य भरत ने किया था । उत्तरवर्ती युग में रस के सम्बन्ध में जो भी विचार तथा आलोचन प्रस्तुत

---

१. बालकाण्ड ४/८, ९
२. देखिए, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अध्याय ४, ५, ६, ७
३. का सू० २/१/६५
४. का० सू० ६/२/३५

किए गए थे, वे भरत के रससूत्र को आधार बनाकर किए गए थे। भरत का रससूत्र निम्न है--

'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः'[१]।

विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। परवर्ती आचार्यों ने रस की निष्पन्नता में भरत के इसी रससूत्र को आधार बनाया। मम्मट ने रस का स्वरूप इस प्रकार बताया है—

'कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च,
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।
विभावा अनुभावास्तत कथ्यन्ते व्याभिचारिणः,
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायिभावो रसः स्मृतः[२]॥'

अर्थात् लोक में रति आदि भावों के कारण कार्य तथा सहकारी हैं, जैसे नायक नायिका आदि आलम्बन कारण हैं, चन्द्रोदय, वसन्त, उद्यान आदि उद्दीपन कारण हैं, कटाक्ष, रोमांच आदि कार्य हैं, और चिन्ता हर्ष आदि सहकारी हैं, इनका जब काव्य या नाटक में निबन्ध न किया जाता है, तब वे विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। इन विभावों, अनुभावों और व्यभिचारी भावों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता हुआ स्थायी भाव ही रस कहलाता है।

आचार्य विश्वनाथ ने भी 'साहित्य दर्पण' में रस की निष्पन्नता इसी प्रकार प्रतिपादित की है—

'विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम्[३]॥

विभाव अनुभाव और संचारी भावों दारा अभिव्यक्त किया जाता हुआ रति आदि स्थायी भाव सहृदयों के लिए रसत्व को प्राप्त करता है।

भरत का रससूत्र यद्यपि बहुत सरल प्रतीत होता है, तथापि व्याख्याकारों की विभिन्न व्याख्याओं के कारण यह बहुत जटिल हो गया है। इस रससूत्र के 'संयोगात्' और 'निष्पत्तिः' पदों की व्याख्या करने में विभिन्न आचार्यों ने पृथक्-पृथक् मत प्रतिपादित किए हैं, किन्तु विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव इन शब्दों की व्याख्या में कोई मतभेद नहीं है। इस सूत्र के व्याख्याता चार प्रसिद्ध आचार्य हैं--भट्टलोल्लट, श्रीशंकुक, भट्टनायक और अभिनवगुप्त। इनके सिद्धांतों को क्रमशः उत्पत्तिवाद,

---

१. ना० शा० ६/३२
२. का० प्र० ४/२७-२८
३. ना० शा० ३/१

अनुमितिवाद, भुक्तिवाद एवं अभिव्यक्तिवाद कहा जाता है। इनमें से अभिनवगुप्त की व्याख्या अधिक प्रामाणिक एवं बहुसम्मत मानी जाती है।

भरत के रससूत्र में प्रत्यक्ष रूप से केवल तीन रस-तत्वों का निर्देश किया गया है। परन्तु विभिन्न रसों के लक्षणों का निर्देश करते हुए उन्होंने स्थायीभावों, सात्विक भावों तथा विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों का भी अनेक रसों के लक्षणों में उल्लेख किया है। वस्तुतः भाव की आधार शिला पर ही रस का भव्य राजप्रासाद अधिष्ठित है, भावों के द्वारा ही रस की निष्पत्ति होती है।

भावों के सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र का मत है कि—'जो रस का भावन करें वे भाव हैं[1]—अर्थात् भाव से उनका तात्पर्य रसव्यंजक सामग्री का ही है जिसके अन्तर्गत स्थायी और संचारी के साथ विभाव और अनुभाव भी आ जाते हैं।

भरत के अनुसार रस के चार अंग होते हैं—विभाव, अनुभाव, स्थायी भाव और संचारी या व्यभिचारी भाव। रस के इन चारों अवयवों को दो भागों में विभाजित किया जाता है—भाव और विभाव। विभाव के अन्तर्गत समस्त संसार आ जाता है—मानव और मानवेतर प्रकृति भी। विभाव के अन्तर्गत वे मनुष्य और वस्तुएं आ जाती हैं—जिनके प्रति किसी की कोई मानसिक स्थिति होती है। साथ ही वे चेष्टाएं एवं परिस्थितियाँ भी आ जाती हैं जिनसे मानसिक स्थिति उद्दीप्त या व्यक्त होती है।

भाव दो प्रकार के होते हैं—स्थायी भाव और अस्थायी। स्थायी भाव रस में आदि से अन्त तक विद्यमान रहते हैं, वे रस के मूल कहे जाते हैं। अस्थायी भाव के अन्तर्गत संचारी या व्यभिचारी भाव आते हैं जिनकी स्थिति क्षणिक होती है। वे लहर की भांति उठकर, अल्पकाल में ही अपना कार्य सम्पन्न कर विलीन हो जाते हैं। इनका उद्देश्य स्थायी भाव को गति देना है। अतः ये उसके सहायक होते हैं। आन्तरिक भावों की बाह्य स्थिति या अभिव्यक्ति को अनुभाव कहा जाता है। इनके द्वारा रस का बोध या प्रतीति होती है।

विभाव

भरत का कथन है कि जिनके द्वारा कायिक वाचिक एवं सात्विक अभिनयों का विभावन होता है, अर्थात् ज्ञान होता है, उनको विभाव कहते हैं—

'विभाव्यन्तेऽनेन वागङ्गसत्वाभिनया इत्यतो विभावः।
यथा विभावितं विज्ञातमिति अर्थान्तरम्[2]।'

---

१. डा० नगेन्द्र—रस सिद्धांत, पृ० २१८

२. ना० शा० ६/१०

विश्वनाथ ने कहा कि लोक में जो पदार्थ रति आदि को उद्बोधित करते हैं, उनको काव्य या नाटक में विभाव कहा जाता है—

'रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः[१] ।'

रसज्ञापन के कारण विभावों को आलम्बन तथा उद्दीपन नामक दो भेदों में विभक्त किया जाता है—आलम्बन तथा उद्दीपन ।

आलम्बन विभाव

जगन्नाथ ने चितवृत्ति विशेष के विषय को आलम्बन कहा है—

'यस्याः चित्तवृत्तेः यो विषयःस तस्या आलम्वनम्[२] ।'

विश्वनाथ के अनुसार नायक नायिका आदि पात्र आलम्बन विभाव कहलाते हैं क्योंकि उनके आलम्बन से ही रस का उद्गम होता है ।

'आलम्बनो नायकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात्[३] ।'

काव्याचार्यों ने आलम्बन विभाव स्वरूप नायक नायिकाओं आदि के अनेक भेदोपभेदों का उल्लेख किया है, किन्तु यहां उन समस्त भेदोपभेदों की चर्चा करना प्रासंगिक न होगा ।

उद्दीपन विभाव

रस को उद्दीप्त या तीव्र करने वाले विभाव को उद्दीपन कहते हैं । विश्वनाथ के अनुसार नायक-नायिकादि की विविध चेष्टाएं, आभूषण, वस्त्र, एवं देशकाल आदि उद्दीपन के अन्तर्गत आते हैं—

'उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये ।
आलम्वनस्य चेष्टाद्या देशकालादयस्तथा[४] ।'

शृंगारतिलक में उद्दीपन के चार भेद बताए गए हैं—आलम्बन के गुण, उसकी चेष्टाएं, उसका अलंकरण, एवं तटस्थ । गुण के अन्तर्गत रूप एवं यौवन, चेष्टा में हाव भावादि, अलंकरण में आभूषण एवं अंगराग का धारण करना, तथा तटस्थ में चन्द्रमा मलयानिल आदि आते हैं ।

अनुभाव

जिस प्रकार कारण के पीछे कार्य होता है, उसी प्रकार विभाव के पीछे अनुभाव होते हैं । 'अनु पश्चात् भवन्तीति अनुभावाः ।' भरत ने कहा है कि अनुभावों

---

१. सा० द० ३/२९
२. र० गं० पृ० ३३
३. सा० द० ३/२९
४. सा० द० ३/१३१

द्वारा वाचिक, आंगिक तथा सात्विक अभिनय अनुभावित होते हैं, अतः उनको अनुभाव कहते हैं—

'अनुभाव्यतेऽनेन वागङ्ग सत्वकृतोऽभिनय इति ।
वागङ्गाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभाव्यते ।
शाखाङ्गोपाङ्ग संयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृतः [१] ।।'

धनंजय ने अनुभावों को भावों की सूचना देने वाला या भावों का भावन करने वाला विकार कहा है—

'अनुभावों विकारस्तु भावससंसूचनात्मकः [२] ।'

विश्वनाथ के अनुसार हृदय में उद्‌बुद्ध रत्यादि भावों को बाहर प्रदर्शित करने वाले अंगादि व्यापार अनुभाव हैं । लौकिक अंगादि व्यापार जो कार्य समझे जाते हैं काव्य में अनुभाव की अलौकिक संज्ञा से विभूषित होते हैं—

'उद्‌बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन् ।
लोके यः काव्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः [३] ।'

अनुभाव मनोगत भावों के साक्षात् अभिव्यंजक उपादान हैं । ये सामाजिकों को रत्यादि भावों का अनुभव कराते हैं । अनुभावों के द्वारा सामाजिक यह अनुभव करता है कि किस पात्र में कौन से स्थायी भाव की उदबुद्धि हो रही है ।

व्यभिचारी भाव

व्यभिचारी भाव स्थिर न रहने वाली चितवृत्तियां हैं । ये विविध प्रकार से रसों की ओर उन्मुख होकर संचरणशील होते हैं अतः इन्हें संचारी भाव भी कहते हैं । एक रस में अनेक व्यभिचारी भावों की तथा एक व्यभिचारी भाव की अनेक रसों में स्थिति हो सकती है । रसों के प्रति विविध प्रकार से संचारित होने वाले इन विकारों को व्यभिचारी भाव कहा जाता है—

'विविधमाभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः [४] ।'

दशरूपककार ने समुद्र में लहरों की भांति उठते और डूबते भावों को व्यभिचारी भाव कहा है । ये स्थायी भाव में उसी प्रकार उन्मग्न एवं निमग्न होते हैं, जिस प्रकार लहरें समुद्र में उठती एवं गिरती रहती हैं । इनका अविर्भाव एवं तिरोभाव स्थायी के ही अनुकूल होता रहता है—

---

१. ना० शा० ७/५
२. द० रू० ४/३
३. सा० द० ३/१३२
४. ना० शा० ७/२७

'विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्न निर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ[1] ॥'

व्यभिचारी भावों की संख्या ३३ कही गयी है—निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, लज्जा, चंचलता, हर्ष, आवेग, जडता, गर्व, विषाद, उत्सुकता, निद्रा, अपस्तार, स्वप्न, जागरण, अमर्ष, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास, और वितर्क[2]।

स्थायी भाव

मनुष्य अपने दैनिक जीवन में जो कुछ देखता है, सुनता है और अनुभव करता है, उसका संस्कार मन पर स्थिर हो जाता है। इस संस्कार को वासना भी कहते हैं। हृदय में वासना रूष में स्थित रहने वाले भाव को ही स्थायी भाव कहते है। जिसे अनुकूल अथवा प्रतिकूल भाव न तो अपने में छिपा सकते हैं और न दबा सकते हैं तथा जो रस में प्रारम्भ से अन्त तक विराजमान रहता है—

'अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः।
आस्वादाङ्कुरकन्दोऽसौ भावः स्थायीति संमतः[3] ॥'

काव्यशास्त्र में स्थायीभावों का निरूपण वैज्ञानिक आधार पर किया गया है। वे स्थायीभाव आधुनिक मनोविज्ञान में वर्णित वेगों के समान हैं। सभी प्राणियों में प्रेम आदि की प्रवृत्तियां विद्यमान रहती हैं। किसी में किसी विशेष प्रवृति की उत्कटता होती है और किसी में किसी अन्य प्रवृत्ति की।

स्थायी के प्राधान्य को सिद्ध करते हुए भरत ने कहा है—

'यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः।
एवं हि सर्वभावानां भावः स्थायी महानिह[4] ॥'

दशरूपककार का कथन है कि जो विरुद्ध या अविरुद्ध भावों से विच्छिन्न नहीं होता, अपितु अन्य भावों को आत्मसात् कर लेता है, वह स्थायीभाव है—

'विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः।
आत्मभावं नयत्याशु स स्थायी लवणाकरः[5] ॥'

---

१. द० रू० ४/८
२. का० प्र० ४/३१-३४
३. सा० द० ३/१७४
४. ना० शा० ७/८
५. द० रू० ४/३४

नाट्यशास्त्र में भरत ने स्थायी भावों की संख्या आठ बतायी है। रति, हास, शोक, क्रोध, वीभत्स, भय, जुगुप्सा तथा विस्मय।

'रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायीभावाः प्रकीर्तिताः[1] ॥'

कालान्तर में शान्त रस की कल्पना करने के कारण निर्वेद या शम स्थायी भाव को भी स्वीकृति प्राप्त हुई। आगे चलकर वत्सल एवं भक्तिरस की प्रतिष्ठा के बाद वात्सल्य एवं देव विषयक रति को स्थायी भाव का पद प्राप्त हुआ।

रस भेद

विभाव, अनुभाव तथा संचारीभावों के संयोग से अभिव्यक्त स्थायी भाव ही रस कहलाता है। अतः स्थायी भावों की जो संख्या होगी, वही रसों की संख्या होगी। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में आठ रसों का उल्लेख किया है— श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत।

'श्रृंगार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः।
वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः[2] ॥'

भरत ने रसों की संख्या का निर्धारण नाट्य की दृष्टि से ही किया है। नाट्य के अतिरिक्त अन्य काव्यों में अन्य रस भी हो सकते हैं। आचार्य मम्मट ने निर्वेद को स्थायी भाव मानकर शान्त रस को नवम रस कहा है। धनंजय और धनिक ने शम को शान्त रस का स्थायीभाव प्रतिपादित किया। विश्वनाथ ने वत्सल की गणना भी रसों में की। रूप गोस्वामी ने 'भक्तिरसामृसिन्धु' और 'उज्ज्वलनीलमणि' में भक्ति रस का प्रतिपादन किया है—

'आलम्बन विभावो भगवान्, उद्दीपनविभावस्तुलसी चन्दनादिः, अनुभावो नेत्रविक्रियादिः व्यभिचारिणो निर्वेदादयः व्यक्तीभवद्, भगवदाकाररुपो रत्याख्यः स्थायिभावः परमानन्दसाक्षात्कारात्मकः प्रादुर्भवति[3] ॥

इस प्रकार रसों की संख्या ११ हो जाती है। परन्तु अधिकांश आचार्य रसों की संख्या ९ ही मानते हैं। वत्सल तथा भक्ति को रस न मानकर भाव ही कहा गया है।

रसों की संख्या के विषय में भोज का पक्ष पृथक् ही है। उन्होंने प्रथम श्रृंगार आदि आठ रसों को तथा उनके आठ स्थायी भावों को बताया है[4]।

---

१. का० प्र० ४/३०
२. ना० शा० ६/१५
३. भक्तिरसामृतसिन्धु, पृ० १३
४. स० कं० भ० ५/१४

परन्तु आगे चलकर उन्होंने चार रसों का और प्रतिपादन किया तथा रसों की संख्या १२ निर्धारित की—

'श्रृंगार वीर करुण रौद्राद्भुत भयानकाः ।
वीभत्सहास्य प्रेयांसः शान्तोदात्तोद्धताः रसाः[1] ।।'

रसों की सुखदुःखात्मकता

रसों की अनुभूति या आस्वाद का विषय, प्राचीन काल से ही काव्यशास्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण किन्तु विवादास्पद प्रश्न रहा है । रसानुभूति आनन्दमयी होती है, यह निर्विवाद है, किन्तु अनिवार्यतः आनन्दमयी होती है, इस विषय से मतभेद हैं। श्रृंगार, वीर, हास्य, अद्भुत और शान्त का आस्वाद तो स्पष्टतः आनन्दमय होता है पर करुण भयानक बीभत्स आदि का आस्वाद भी आनन्दमय होता है, यह विवाद का विषय है ।

रसों की केवल सुखरूपता

आचार्य मम्मट, धनंजय, धनिक विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि आचार्य रस की अनुभूति को आनन्दमय सिद्ध करते हैं । विश्वनाथ ने रस की अनुभूति का स्वरूप बताया है कि सत्वगुण के उद्रेक से सहृदयों द्वारा अखण्ड स्वप्रकाशानन्द, चिन्मय, वेद्यान्तरस्पर्शशून्य, ब्रह्मास्वादसहोदर, लोकोत्तर चमत्कारप्राण यह रस अपने से अभिन्न रूप में आस्वादन किया जाता है—

सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः ।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः ।
'लोकोतर चमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः ।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः[2] ।।'

करुण रस की सुखात्मकता पर विचार करते हुए विश्वनाथ ने कहा है कि आचार्यों द्वारा करुण रस को आनन्दात्मक न मानना अनुचित है ! संसार में शोक से दुःख होता है, किन्तु काव्य अथवा नाटक में शोक से भी आनन्दानुभूति होती है । इसके प्रमाणस्वरूप रामायण एवं महाभारतादि ग्रन्थों एवं सहृदयों के हृदय को रखा जा सकता है । यदि करुण रस से सुखानुभूति होती है तो कोई भी करुण रस प्रधान नाटक को न तो देखने का साहस करता और न दुःखप्रधान काव्य को सुनता । कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति करुण कथा को देखकर अथवा सुनकर दुःख में प्रवृत होना नहीं चाहता किन्तु करुणरस प्रधान काव्य में भी लोग आग्रहपूर्वक भाग लेते हैं। अतः करुणरस भी सुख का कारण है । करुण रस को दुःख का कारण मानने पर

---

१. स० कं० भ० ५/१६४

२. सा० द० ३/२, ३

रामायण आदि अमरकाव्य भी दुःख के कारण हो जायेंगे। बनवास, पिता-पुत्रादि के वियोग, राज्य का त्याग आदि घटनाएं लोक में दुःख का कारण है, किन्तु काव्य में इनका वर्णन करने से अलौकिक सुख की प्राप्ति होती है। नाटकादि को देखते समय करुण कथा के कारण जो अश्रुपात होता है, वह भी सुख के ही कारण होता है। उससे चित्त में द्रुति होती है। इसलिए करुण रस भी सुखात्मक एवं अलौकिक आनन्द देने वाला है।

करुणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम्।
सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम्॥
किंच तेषु यदा दुःखं न कोऽपि स्यात्तदुन्मुखः।
तथा रामायणादीनां भविता दुःखहेतुता।
अश्रुपातादयस्तद्वद् द्रुतत्वाच्चेतसो मताः[1]।

आचार्य मम्मट ने रस को सकल प्रयोजन मौलिभूत एवं रसास्वाद को आनन्द-रूप माना है—

'सकलप्रयोजनमौलिभूतं समनतरमेव रसास्वादनसमुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानन्दम्[2]।'

रसों की सुखदुःखात्मकता का प्रश्न दशरूपक के टीकाकार धनिक ने भी उठाया है। प्रश्न यह है कि सुखात्मक श्रृंगार, वीर, हास्य आदि रसों में तो आनन्द की अनुभूति हो सकती है, परन्तु दुःखात्मक करुण आदि रसों में यह कैसे होगी? करुणरस से युक्त काव्य के देखने सुनने से दुःख का आविर्भाव होता है और अश्रुपात आदि होते हैं। यदि ये रस भी आनन्दात्मक होते तो ऐसा क्यों होता? इस प्रश्न का उत्तर धनिक ने इस प्रकार दिया—

"यह ठीक है कि करुण रस के काव्य के श्रवण से रसिकों को दुःख होता है तथा वे रोते हैं। परन्तु लौकिक करुणा आदि से काव्यगत करुणादि रस भिन्न होते हैं। काव्यगत करुण आदि रस दुःखपरक होते हुए भी आनन्दात्मक होते हैं। उनसे सुख-दुःख मिश्रित आनन्द प्राप्त होता है। यह इसी प्रकार का है, जैसे सुरत के समय स्त्रियों के दन्तक्षत, नखक्षत-प्रहार आदि से भी आनन्द की अनुभूति होती है। काव्यगत करुण रस के लौकिक करुण से भिन्न होने से उसके प्रति रसिकों की प्रवृति होती है। यदि काव्यगत करुण रस लौकिक करुण के समान ही दुःखात्मक होता, तो उसके प्रति कोई भी प्रवृत्त नहीं होता। इस अवस्था में करुण रस प्रधान रामायण आदि महाकाव्यों का उच्छेद ही हो जाता। ऐसे वर्णनों को पढ़कर सामाजिकों का अश्रुपात करना आनन्द की अनुभूति का विरोध नहीं है[3]।"

---

१. सा० द० ३/४, ५
२. का० प्र० १/२ वृत्ति
३. द० रू० ४/४४, ४५ पर धनिक की टीका

पण्डितराज जगन्नाथ भी रस की अनुभूति को आनन्दरूप मानते हैं। यह अनुभूति स्वरूपाकार होती है। और उसी प्रकार की होती है, जिस प्रकार सविकल्पक समाधि में योगियों की चित्तवृत्ति होती है। यह आनन्द लौकिक सुखों से विलक्षण है, क्योंकि यह अन्तःकरण की वृत्तियों से युक्त न होकर स्वतः चैतन्यरूप है—

'तत्तत्स्थान्युपहितस्वस्वरूपानन्दाकारा समाधाविव योगिनश्चितवृत्तिरूप-जायते, तन्मयीभवनमिति यावत्। आनन्दो ह्ययं न लौकिकसुखान्तरसाधारणः अनन्तकरणवृत्तिरूपत्वात्[1]।'

जो व्यक्ति करुण को रस नहीं मानता, उसको आह्लादक, विलक्षण एवं चमत्कारी नहीं मानता, उसको काव्य एवं अनेक क्षेत्र में प्रवेश करने का अधिकार नहीं है।

पण्डितराज जगन्नाथ ने करुण आदि रसों की आह्लादकता का प्रतिपादन सबल शब्दों में किया है। उनका कथन है कि करुण को रस स्वीकार करना ही यह सिद्ध करता है कि काव्य में निष्पन्न यह रस आह्लाद का हेतु है। सहृदयों के हृदय ही इस वात के प्रमाण हैं कि जिस प्रकार शृंगार रस प्रधान काव्य आह्लाद के हेतु होते हैं, उसी प्रकार करुण रस प्रधान काव्य भी आह्लाद के हेतु होते हैं। वस्तुतः लोकोत्तर काव्य-व्यापार आह्लाद का ही हेतु होता है। यदि करुण आदि रसों से दुःख का अनुभव होता तो, उसकी ओर सहृदयों की प्रवृति ही क्यों होती ?

करुण आदि रसों की अनुभूति में जो अश्रुपात आदि होते हैं, वे दुःख के कारण नहीं हैं, अपितु आनन्दानुभव के कारण ही होते हैं। यह इसी प्रकार का है, जैसे कि भगवान के भक्त भगवान् के वर्णन को सुनकर अश्रुपात करते हैं, उसमें दुःख का अनुभव किसी अवस्था में नहीं है। यह लोकोत्तर काव्य-व्यापार की ही महिमा है कि उसमें प्रयोग किये जाते हुए अरमणीय भी शोक आदि पदार्थ अलौकिक रमणीयता को उत्पन्न करते हैं। काव्य व्यापारों द्वारा उत्पन्न होने वाली यह रमणीयता या आह्लाद रूप से कमनीय होता है।

काव्यगत करुण आदि रसों से आनन्द की ही अनुभूति क्यों होती है ? इसका मुख्य हेतु साधरणीकरण व्यापार है। साधरणीकरण द्वारा विभाव आदि के विशेष अंश का परित्याग होने से उसका लौकिक व व्यक्तिगत सम्बंध नष्ट हो जाता है। व्यक्ति से आवद्ध भाव में अल्पता होने से दुःख की अनुभूति हो सकती है, किन्तु व्यक्तिगत सम्बन्ध से मुक्त होने पर उदात्तता के समावेश से आनन्दमात्र ही अवशिष्ट रहता है। इस सम्बन्ध में मधुसूदन दत्त ने यह युक्ति दी है कि 'रत्यादि भाव जब बोध्यनिष्ठ अर्थात् दुष्यंत आदि पात्रगत होते हैं, तो सुख दुःख के कारण बनते हैं। किन्तु जब वे बोध्यनिष्ठ अर्थात्

---

१. र० गं०, पृ० ६४-६५

सहृदयगत होते हैं तो केवल सुख के ही हेतु होते हैं। अतःकरुण आदि रसों के आनन्दस्वरूपत्व का व्याघात नहीं होता है[१]।'

इस प्रकार अधिकांश भारतीय आचार्यों ने सब रसों को अलौकिक आनन्दमय सिद्ध किया है।

पाश्चात्य काव्य-शास्त्र के रचयिता भी रसों को आनन्दरूप प्रतिपादित करते हैं। इस सम्बन्ध में अरस्तु का-– 'विरेचनसिद्धांत' प्रसिद्ध है। त्रासदी में अतिशय उत्तेजना द्वारा मनोवेगों का शमन हो जाता है अर्थात् विरेचन हो जाता। इस बिरेचन से करुण और त्रास के भावों का कटुत्व दूर होकर मन विशद होता है और उसको शान्ति प्राप्त होती है। इससे सहृदय प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

शोक आदि भावों की कटुता उसी समय तक होती है, जब तक कि वे वैयक्तिक भौतिक सीमा में बंधे रहते हैं। स्व की सीमा के नष्ट हो जाने पर उनकी कटुता भी नष्ट हो जाती है और वे खद हो जाते हैं।

प्रसिद्ध काव्यशास्त्री और दार्शनिक 'अभिनवगुप्त' ने सामान्य रूप से रसों को आनन्दरूप माना है, परन्तु वे इनको उभयात्मक भी मानते हैं। उन्होंने इस प्रकार का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है कि सभी रसों में उभयात्मक अनुभूति होती है। उनमें सुख और दुःख दोनों का समावेश रहता है। किन्तु किसी रस की अनुभूति में सुख एवं किसी की अनुभूति में दुःख की प्रधानता रहती हैं। श्रृंगार, हास्य, वीर तथा अद्‍भुत रसों में सुख की प्रधानता के साथ दुःख का अनुवेध रहता है। इसके विपरीत रौद्र, भयानक, करुण तथा वीभत्स रसों में दुःख की प्रधानता के साथ सुख का आंशिक अनुवेध रहता है। केवल शांत रस ही सर्वथा सुखात्मक है[२]।

आधुनिक भारतीय समीक्षकों में डा० नगेन्द्र ने रसों की सुखदुःखात्मकता पर विशेष विचार किया है। वे सभी रसों में आनन्दात्मक अनुभूति की निष्पन्नता को प्रतिपादिक करते हैं। उनका कथन है कि 'आनन्दात्मक अनुभूति दो प्रकार की होती है— भौतिक और आध्यात्मिक। भौतिक अनुभूति ऐन्द्रियिक, रागात्मक तथा बौद्धिक तीन प्रकार की है। काव्यात्मक आस्वाद इन्हीं तीनों ऐन्द्रियिक, रागात्मक तथा बौद्धिक अनुभूतियों का मिश्रण है और काव्यात्मक अनुभूति इन्हीं तीनों के मध्य की वस्तु है। काव्यात्मक अनुभूतियों में एक ओर तो ऐन्द्रियिक अनुभूतियों की स्थूलता तथा कटुता नहीं होती एवं दूसरी और बौद्धिक अनुभूतियों की अल्पता भो नहीं होती। अतः ये अत्यधिक

---

१. भक्ति रसामृतसिन्धु ३/५, ६

२. का० प्र०—विश्वेश्वर कृत टीका, पृ० १२१

परिष्कृत, सरस तथा आनन्दात्मक होती हैं[1] ।'

इस प्रकार यद्यपि संस्कृत के अधिकांश आचार्यों ने रसों को केवल सुख-रूप माना है, किन्तु कुछ आचार्य ऐसे भी हुए, जिन्होंने सभी रसों की अनुभूति को केवल आनन्दमय नहीं माना । इनमें जैन आचार्यद्वय रामचन्द्र-गुणचन्द्र का स्वर सबसे ऊंचा और स्पष्ट है । इन्होंने रसों को सुखदुःखात्मक बताया है ।----

'सुखदुःखात्मको रसः[2] ।,

उनका मन्तव्य है कि कुछ रस सुखात्मक और कुछ दुःखात्मक हैं । उनमें से इष्ट विभावादि के द्वारा स्वरूप-सम्पत्ति को प्रकाशित करने वाले श्रृंगार हास्य, वीर, अद्भुत और शांत (ये पाँच) सुखप्रधान रस हैं और अनिष्ट विभावादि के द्वारा स्वरूप लाभ करने वाले करुण, रौद्र, बीभत्स और भयानक ये चार दुःखात्मक रस हैं[3] ।

सब रसों की सुखात्मकता का खण्डन करते हुए नाट्यदर्पणकार ने कहा कि सभी रसों को सुखात्मक मानना प्रतीति के विरुद्ध है । मुख्य अर्थात् वास्तविक लौकिक जगत् के सिंह, व्याघ्र आदि विभावों की दुःखात्मकता को तो रहने ही दें, काव्य में अभिनय से प्राप्त कृत्रिम विभावों से उत्पन्न भयानक, बीभत्स, करुण अथवा रौद्र रस भी रसों का आस्वादन करने वाले सहृदयों में कुछ अवर्णनीय क्लेश दशा को उत्पन्न कर देते हैं । इसीलिए सामाजिक भयानक आदि रसों से उद्विग्न होते हैं । परन्तु सुख के आस्वादन से तो उद्विग्नता उत्पन्न नहीं होती । अतः रसों को एकमात्र सुखरूप न मानकर सुखदुःखात्मक मानना चाहिए[4] ।

आचार्य रुद्र भट्ट ने भी अपनी 'रसकलिका' में एक स्थान पर रस की उभयात्मक प्रकृति का निरूपण किया है—

'करुणाभयानामप्युपादेयत्वं सामाजिकानाम्, रसस्य सुखदुःखात्मकतया तदुभयलक्षणेन उपपद्यते, अतएव तदुभयजनकत्वम्[5] ।।'

अर्थात् सामाजिक के लिए करुणा प्रधान प्रसंगों या भावों की भी उपादेयता है—रस की सुखदुखात्मकता के कारण उसका उभयात्मक स्वरूप सिद्ध होता है ।

---

१. डा० नगेन्द्र—रससिद्धांत, पृ०
२. हिन्दी नाट्यदर्पण, पृ० २६०
३. हिन्दी नाट्यदर्पण, पृ० २६१
४. हिन्दी-नाट्यदर्पण, पृ० २६१
५. द नम्बर आफ रसाज' के पृ० १५५ पर 'रसकलिका' मद्रास पान्डुलिपि, ५१-५२ से उद्धृत

वामन का कथन है कि करुण रस के नाटकों में सहृदय को सुख तथा दुःख से मिश्रित अनुभूति होती है--

'करुण प्रेक्षणीयेषु सम्प्लवः सुखदुःखयोः ।
यथाऽनुभवतः सिद्धस्तथैवौजः प्रसादयोः[1] ।।'

प्रसिद्ध अद्वैतवादी आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने भी सभी रसों को एक समान आनन्दात्मक नहीं माना । उनके अनुसार क्रोध प्रधान रौद्र रस में एवं शोक-मूलक करुण रस में रज एवं तम का मिश्रण बना रहने से विशुद्ध आनन्द की सत्ता नहीं रहती । अतः सभी रसों में समान रूप से सुख का अनुभव नहीं होता ।

'द्रवीभावस्य च सत्वधर्मत्वात्, तं विना च स्थायिभावासम्भवात् सत्वगुणस्य सुखरूपत्वात् सर्वेषां भावानां सुखमयत्वेऽपि रजस्तमोंऽशमिश्रणात् तारतम्यमवगन्तव्यम् । अतो न सर्वेषु रसेषु तुल्यसुखानुभवः[2] ।।'

इस पक्ष में कुछ अन्य आचार्यों का भी नाम लिया जा सकता है । जैसे लोल्लट या अभिनवभारती में उल्लिखित सांख्यवादी आचार्य आदि जो निश्चय ही रस को स्थायी भाव का उपचित रूप मानने के कारण, सुखदुःखात्मक रूप में स्वीकार करते थे, किन्तु इन्होंने हमारे शास्त्रीय चिन्तन को विशेष रूप से प्रभावित नहीं किया है । आधुनिक भारतीय समीक्षकों में भी कुछ समीक्षक ऐसे हुए—जिन्होंने कुछ रसों को दुःखप्रधान प्रतिपादित किया । इनमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सबसे प्रसिद्ध हैं । वे रसवाद के अत्यन्त समर्थक पोषक होते हुए भी, रस की आनन्दरूपता का स्पष्ट विरोध करते हैं—

यदि श्रोता के हृदय में भी प्रदर्शित भाव का उदय न हुआ, उस भाव की स्वानुभूति से भिन्न प्रकार का आनन्दरूप अनुभव हुआ तो साधरणीकरण कैसा ? क्रोध, शोक, जुगुप्सा आदि के वर्णन यदि श्रोता के हृदय में आनन्द का संचार करें तो या तो श्रोता सहृदय नहीं या कवि ने बिना इन भावों का स्वयं अनुभव किये उनका रूप प्रदर्शित किया है[3] ।'

मराठी के आलोचक भी काव्यशास्त्र के प्रति अत्यन्त प्रबुद्ध रहे हैं । उनका बहुमत रस की आनन्दरूपता के ही पक्ष में हैं । द० के० केलकर ने रसध्वनिवादी आचार्यों के अनुसार रस के आनन्द रूप का प्रतिपादन किया है—

'काव्य से सहृदय का हृदय-सागर उमड़ आता है । इस उमड़ते हृदय-सागर

---

१. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति ३/१/६
२. भक्ति रसायनम्, पृ० २२
३. रसमीमांसा, पृ० ९९

में जब सहृदय तन्मय हो जाता है, तो उसकी तदाकार कृति में जो निहित आनन्द है, उसे ही संस्कृत ग्रन्थकारों ने रस कहा है[1]।'

डा० वाटवे ने अपने 'रसविमर्श' नामक ग्रन्थ में रस को सहृदयनिष्ठ एवं आह्लादमय ही माना है—

'कल्पना की सहायता से प्राप्त आह्लाददायक अनुभव को ही रस कहा जाता हैं। इस रस को उत्पन्न करने वाली मूल-सामग्री काव्य में ही होती है अर्थात् एक अर्थ में रस कारण रूप से, काव्य में भी होता है[2]।'

श्री ग० त्र्यं० देशपाण्डे का मत भी अभिनवादि प्रतिपादित आनन्द रूप के पक्ष में ही है—

जहां तक हमारी सम्मति का प्रश्न है, हमें अभिनव गुप्त का मत ही अनेक कारणों से स्वीकार्य प्रतीत होता है, क्योंकि इस सिद्धांत से ही सम्पूर्ण काव्यांगों की उपयुक्त उपपत्ति हो पाती है। फलतः इससे अपरिहार्य रूप से सम्बद्ध आनन्दवाद ही हमें ग्राह्य प्रतीत होता है[3]।'

इस प्रकार सभी रसों को सुखात्मक प्रतिपादित करने के पक्ष में जितनी प्रबल युक्तियां हैं, उतनी उनको सुखदुःखात्मक प्रतिपादित करने के पक्ष में नहीं है। वस्तुतः इसमें सहृदयों के हृदय ही प्रमाण हैं। यदि करुण आदि रस सर्वथा दुःखात्मक होते तो सहृदयों की करुण रस प्रधान काव्यों की ओर प्रवृत्ति नहीं होती। उनमें सहृदयों को आकर्षित करने के गुण अवश्य है, जिनसे कि वे इन काव्यों की ओर प्रवृत्त होते हैं।

शृंगार-रस

समस्त भारतीय साहित्य में रस-रूप में शृंगार का महत्व सर्वविदित है। आचार्यों ने इसे मानव की मूलभूत प्रवृत्ति 'काम' से सम्बद्ध करते हुए भी उसे पवित्र मेध्य और उज्ज्वल माना है। समस्त भाषाओं के साहित्य की सुदीर्घ परम्परा में, आर्ष काव्यों में जीवन के विशाल और व्यापक परिप्रेक्ष्य में शृंगार को सर्वोपरि स्थान मिला है। आचार्य आनन्दवर्धन का कथन है कि—शृंगार रस समस्त संसारी प्राणियों के अनुभव का विषय होने के कारण कमनीयता की दृष्टि से प्रमुख हैं, अतः इसके वर्णन में कवि को अत्यन्त सावधान एवं प्रयत्नवान होना चाहिए—'शृंगाररसो हि संसारिणां नियमेनानुभवविषयत्वात् सर्वरसेभ्यः कमनीयतया प्रधानभूतः[4]।'

---

१. काव्यालोचन, पृ० १२७-१२८
२. रसविमर्श, पृ० ७३
३. भारतीय साहित्य शास्त्र, पृ० २९१
४. ध्व० ३/३०

वैदिक-साहित्य में काम को मानव-मन का प्रथम विकार कहा गया है —

'कामदस्तदग्रे समवर्त्ताधि मनसो रेतः प्रथमं तदासीत्'[1]।

शृंगार रस का स्थायी भाव प्रेम है, जो जन्म से ही जड़ चेतन सबमें विद्यमान रहता है। मनुष्य ही नहीं सभी प्राणी प्रेम से प्रभावित होते हैं।

शृंगार शब्द शृंग एवं आर इन दो शब्दों के योग से निष्पन्न हुआ है। (शृंगं ऋच्छति इति शृंगारः) शृंग का अर्थ है-—कामोद्रेक या काम की वृद्धि एवं आर का अर्थ है गति या प्राप्ति। 'कामीजनों के हृदय में रति स्थायी भाव रस अवस्था को प्राप्त होकर काम की वृद्धि करता है। इसी से इसका नाम शृंगार है'[2]।

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में शृंगार रस का वर्णन करते हुए कहा है—

'सुख प्रायेष्टसम्पन्न ऋतु माल्यादि सेवकः।
पुरुषः प्रमदः युक्तः शृंगार इति संज्ञितः॥
ऋतु माल्यालंकारैः प्रियजन गान्धर्वकाव्यसेवाभिः।
उपवनगमन विहारैः शृंगाररसः समुद्भवति[3]॥

इस प्रकार भरतमुनि ने शृंगार-रस का सांगोपांग विवेचन किया है तथा इसके उदात्त एवं पवित्र रूप की कल्पना प्रस्तुत कर इसे वासना के पंक से सर्वथा मुक्त रखने का सफल प्रयास किया है।

भरत से ही मिलता-जुलता मत विश्वनाथ का है। शृंगार के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने कहा—कामदेव के उद्भेद या अंकुरित होने को शृंग कहते हैं। उसकी उत्पत्ति का कारण अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस शृंगार कहलाता है।

'शृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुकः।
उत्तम प्रकृति प्रायो रसः शृंगार इष्यते[4]॥'

धनंजय के अनुसार परस्पर अनुरक्त युवा नायक-नायिका के हृदय में रम्य, देश, कला, काल, वेश, भोग इत्यादि के सेवन से आत्मा का प्रमुदित होना रति है। जब यही रति स्थायी भाव नायक-नायिका के अंगों की मधुर चेष्टाओं के द्वारा पुष्ट होता है, तो शृंगार रस की पुष्टि होती है—

---

१. ऋक्० १०/१२९/४
२. ना० शा० अभि० पृ० ३००-१
३. ना० शा० ६/४६-४७
४. सा० द० ३/१८९

'रम्यदेश कलाकालवेष भोगादि सेवनैः ।
प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः ।
प्रहृष्यमाणा श्रृंगारो मधुराङ्गविचेष्टितैः[1] ॥'

श्रृंगाररस का स्थायी भाव-रति

श्रृंगाररस का स्थायीभाव रति होता है । यह रति अर्थात् रिरंसा वासना रूप में सभी प्राणियों में विद्यमान रहती है ।

भरत के अनुसार रति की उत्पत्ति अभीष्ट विषय की प्राप्ति से होती है । इसका प्रदर्शन (अभिनय के रूप में) मधुर वाणी एवं आंगिक चेष्टाओं द्वारा होना चाहिए—

'इष्टार्थ-विषयप्राप्त्या रतिरित्युपजायते ।
सौम्यत्वादभिनेया सा वाङ्माधुर्याङ्ग चेष्टितैः[2] ।'

हेमचन्द्र के अनुसार नायक-नायिका का परस्पर आस्थाबन्ध होना रति है—

'तत्र परस्परास्थाबन्धात्मिका रतिः[3] ।

विश्वनाथ, प्रिय वस्तु के प्रति मन की अत्यन्त उत्कट उन्मुखता को रति कहते हैं—

'रतिमनोनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्[4] ।'

विश्वनाथ ने स्त्री पुरुष के संभोग की इच्छा विशेष को रति कहा है—

'तत्र संभोगविषय इच्छाविशेषो रतिः[5] ।'

श्रृंगाररस के विभाव

श्रृंगार रस के आलम्बन विभाव सिद्धान्ततः नायक नायिका है, परन्तु व्यवहारिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नायिका ही आलम्बन ठहरती है ।

उद्दीपन-विभाव

मानुषी एवं प्राकृत दोनों ही प्रकार के उपकरण श्रृंगार रस के उद्दीपन विभाव होते हैं । यथा—सखा, सखी एवं दूती और संगीत, मानुषी उद्दीपन विभाव हैं तथा ऋतु वन, उपवन, केलि कुंज-तड़ाग एकान्त स्थान, पवन, चन्द्र, चांदनी, भ्रमर, कोकिल आदि प्राकृत उद्दीपन विभाव हैं ।

---

१. द० रू० ४/४८
२. ना० शा० ७/६
३. काव्यानुशासन, पृ० १२६
४. सा० द० ३/१७६
५. प्रतापरुद्रीय, पृ० १६३

विश्वनाथ ने आलम्बन की चेष्टाओं तथा उसके रूप व वेशविन्यासादि की भी उद्दीपन विभावता का प्रतिपादन किया है—

'उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये ।
आलम्बनस्य चेष्टाद्या देशकालादयस्तथा[१] ।।'

श्रृंगार रस के अनुभाव

भरत ने सम्भोग तथा विप्रलम्भ श्रृंगार के अनुभावों का पृथक्-पृथक् निर्देश किया है । उनके अनुसार सम्भोग श्रृंगार के अनुभाव निम्नलिखित होते हैं—

'तस्य नयनचातुर्य भ्रूक्षेपकटाक्षसंचारललितमधुरांगहारवाक्यादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः[२] ।'

अभिनव ने भरत के आदि पद के आधार पर सात्विक भावों, मुखराग तथा पुलकादिकों को भी सम्भोग श्रृंगार का अनुभाव स्वीकार कर लिया है—

'आदिग्रहणात्सात्विको मुखरागपुलकादिगृह्यते[३] ।'

धनंजय ने सम्भोग श्रृंगार के किसी नवीन अनुभाव का निर्देश नहीं किया है । विश्वनाथ के अनुसार नायिकाओं के सात्विक अलंकार भी अनुभाव स्वरूप होते हैं—

'उक्ताः स्त्रीणामलंकारा अंगजाश्च स्वभावजाः ।
तद्रूपाः सात्विका भावास्तथा चेष्टाः परा अपि[४] ।।'

श्रृंगार रस में सात्विक, कायिक, मानसिक तथा आहार्य प्रायः सभी प्रकार के अनुभावों का समावेश पाया जाता है ।

श्रृंगार रस के व्यभिचारी भाव

भरत के अनुसार आलस्य, औग्र्य तथा जुगुप्सा के अतिरिक्त शेष २९ व्यभिचारी भाव श्रृंगार रस के सहायक होते हैं ।

'व्यभिचारिणश्चालस्यौग्र्यजुगुप्सवर्ज्याः[५] ।'

धनंजय के अनुसार यदि आलस्य, उग्रता तथा जुगुप्सा की भी युक्तिपूर्वक योजना की जाय तो वे भी श्रृंगार रस का परिपोष कर सकते हैं ।

---

१. सा० द० ३-१३२
२. ना० शा० अभि०, पृ० ३०५
३. ना० शा० अभि०, पृ० ३०६
४. सा० द० ३/१३३-१३४
५. ना० शा० अभि०, पृ० ३०६

'एकोनपंचाशदमी हि भावा: युक्त्या निबद्धा: परिपोषयन्ति
आलस्यमौग्र्यं मरणं जुगुप्सा तस्याश्रयाद्वैतविरुद्धमिष्टम्[1] ।'

इस प्रकार प्राय: सभी व्यभिचारी भाव श्रृंगार रस के पोषक स्वीकार किये गये हैं ।

श्रृंगार रस के भेद

नायक-नायिका के मिलन एवं वियोग के आधार पर रस के दो भेद किए गये हैं—संयोग या सम्भोग एवं वियोग या विप्रलम्भ । भरत ने ही इसके दो भेदों की कल्पना की थी जो इस समय तक मान्य है ।

धनंजय ने श्रृंगार रस के तीन प्रकार माने हैं—अयोग, विप्रयोग एवं सम्भोग—

'अयोगो विप्रयोगश्च सम्भोगश्चेति स त्रिधा[2] ।'

अयोग श्रृंगार वहां होता है जब नायक एवं नायिका एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हुए भी परतंत्रता (माता-पिता आदि के कारण) अथवा दैवयोग से परस्पर मिल नहीं सकें । किन्हीं कारणों से नायक-नायिका का संगम या मिलन का न होना ही अयोग है ।

'तत्राऽयोगोऽनुरागेऽपि नवयोरेकचितयो: ।
पारतन्त्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसंगम:[3] ।।'

सम्भोग श्रृंगार

पारस्परिक प्रेम के वशीभूत होकर जब नायक-नायिका एक-दूसरे के दर्शन, मिलन, स्पर्श और आलाप आदि में संलग्न होते हैं, उस अवस्था को संयोग और उसके वर्णन को संयोग श्रृंगार कहते हैं ।

विश्वनाथ ने 'संयोग श्रृंगार' का लक्षण इस प्रकार दिया है—

'दर्शनस्पर्शनादीनि निषवेते विलासिनौ ।
यत्रानुरक्तावन्योन्यं सम्भोगोऽयमुदाहृत: ।।
संख्यातुमशक्यतया चुम्बन परिरम्भणादिबहुभेदात्,
अयमेव एवं धीरै: कथित: संभोगश्रृंगार:[4] ।।

---

१. द० रू० ४/६६
२. द० रू० ४/४६
३. द० रू० ४/५०
४. सा० द० ३/२१०-११

विप्रलम्भ शृंगार

जब अनुराग के उत्कट होने पर भी प्रिय-संयोग का अभाव रहता है, उस अवस्था को विप्रलम्भ अथवा वियोग शृंगार कहते हैं।

विश्वनाथ के अनुसार जिसमें नायक-नायिका का परम्परानुराग तो प्रगाढ़ हुआ करता है, किन्तु परस्पर मिलन नहीं हो पाता, उसे विप्रलम्भ कहते हैं—

'यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ[1]।'

संयोग की अवस्था में नायक और नायिका एक साथ रहकर संयोग-सुख का उपभोग करते हैं, किन्तु वियोग में वे पृथक् रहते हैं। संयोग में उनकी वृत्तियां बहिर्मुखी होती हैं और वियोग में अन्तर्मुखी। संयोग में प्रेम का उपभोग होता है किन्तु वियोग में वह राशीभूत हो जाता है। इसलिए वियोग को प्रेम की कसौटी कहा गया है। प्रेम की परीक्षा वियोग के समय में ही होती है। वियोग को शृंगार रस का शृंगार कहते हैं।

वियोग शृंगार चार प्रकार का होता है—पूर्वराग, मान, प्रवास एवं करुणात्मक।

पूर्वानुराग या पूर्वराग—मिलन के पूर्व नायक और नायिका के हृदय में मिलन की उत्कण्ठा के कारण उत्पन्न होनेवाली व्याकुलता को पूर्वानुराग कहते हैं। पूर्वानुराग चार प्रकार से सम्भव है—चित्रदर्शन, गुणश्रवण, स्थान दर्शन, एवं प्रत्यक्ष दर्शन। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार सौन्दर्यादि गुणों के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक और नायिका की समागम से पहली दशा का नाम पूर्वराग है। दूत, भाट अथवा सखी के द्वारा गुणों का श्रवण होता है और दर्शन इन्द्रजाल में, चित्र में स्वप्न में अथवा साक्षात् ही होता है।

'श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः।
दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते[2]॥'

मान—मान का अर्थ है—कोप करना। दंपत्ति में से किसी एक के अपराध के कारण मान होता है। संयोग की स्थिति में मिलन के अभाव को मान कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है—ईर्ष्यामान एवं प्रणयमान।

प्रवास-विप्रलम्भ—प्रियतम के परदेश निवास को प्रवास विप्रलम्भ कहते हैं। नायक-नायिका में से एक का विदेश में होना 'प्रवास' कहलाता है।

करुण-विप्रलम्भ—जहां नायक-नायिका को किसी कारणवश परस्पर मिलन की आशा नहीं रहती, वहां करुण विप्रलम्भ शृंगार मानना चाहिए। जब नायक

---

१. सा० द० ३/१८७
२. सा० द० ३/१८८

अथवा नायिका किसी एक की मृत्यु हो जाने से अथवा अन्य किसी कारणवश मिलन की सम्भावना ही सर्वथा नष्ट हो जाए, तब विरह करुण में परिणत हो जाता है। ऐसे अवसर पर शुद्ध करुण ही मानना चाहिए। मिलन की असम्भव आशा होते हुए भी जहां रति का भाव विद्यमान रहता है, वहां करुणात्मक वियोग शृंगार होता है।

विप्रलम्भ शृंगार में वियोगजन्य दश काम-दशाओं का भी वर्णन होता है—अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुणकथन, उद्वेग, प्रलय, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण[1]।

हास्य रस

विकृत आकार वेष, वाणी और चेष्टा आदि के वर्णन से हास्य रस की उत्पत्ति होती है। भरत के अनुसार हास्य रस की उत्पत्ति में मूल रूप से विकृति ही अवस्थित है। हास्य रस का स्थायी भाव हास होता है। हास स्थायी भावात्मक विकास नामक चित्तवृत्ति का उदय तब होता है जबकि विभिन्न प्रकार की विकृतियों को देखकर व्यक्ति अपने को उस विकृतियुक्त व्यक्ति या विषय की अपेक्षा उत्कर्ष-युक्त अनुभव करता है। सभी व्यक्तियों में यह आत्मोत्कर्षानुभूति की प्रवृत्ति जन्मजात होती है। इसलिए इसे वासना या स्थायी भाव के नाम से अभिहित किया जाता है—

'सर्वो स्वात्मन्युत्कर्षमानितया परमुपहसन् जायते[2]।

हास्य रस का स्थायी भाव—हास

विकृत वेशभूषा अथवा वचन के विकार से हृदय में उत्पन्न आनन्द के कारण हंसी का आना 'हास' है। आचार्य भरत के अनुसार हास की उत्पत्ति अन्य व्यक्तियों की चेष्टा के अनुकरण से होती है। इसका प्रदर्शन स्मितहास एवं अतिहास के रूप में होता है—

'परचेष्टानुकरणाद्धासः समुपजायते।
स्मितहासातिहसितैरभिनयः स पण्डितैः[3]॥'

हेमचन्द्र के अनुसार चित्त के विकास को हास कहते हैं—

'चेतसो विकासो हासः[4]।'

---

१. सा० द० ६/१९५-१९७
२. ना० शा० अभि०, पृ० २८२
३. ना० शा० ७/१०
४. काव्यानुशासन ४४/१८

विश्वनाथ के मत में वाणी, रूप आदि की विकृति के दर्शन से चित्त का विकसित होना 'हास' है—

'वागादि वैकृतैश्चेतो विकासो हास इष्यते[1] ।'

जगन्नाथ के अनुसार दूसरों के वचन, अंग एवं वेष में विकृति के दर्शन से उत्पन्न होने वाली विकास नामक चितवृत्ति 'हास' है—

'वागङ्गादिविकासदर्शनजन्मा विकासाख्यो हासः[2] ।'

हास्य रस के विभाव

भरत तथा अभिनव के द्वारा की गयी भरत की व्याख्या के अनुसार देश, काल, प्रकृति, वय तथा अवस्था आदि के विपरीत वेष-रचना, अलंकार-धारण अथवा गमन, निर्लज्जता, लौल्य, कुहक अर्थान् बालकों को विस्मित करने वाले कार्य असत्प्रलाप, अंगहीनता आदि के दर्शन तथा दोषोदाहरणादि हास्य रस के विभाव होते हैं—

'स च विकृत पर वेषालंकार-धाष्टर्य-लौल्य-कुहकासत्प्रलापव्यंग्यदर्शन दोषोदाहरणादिभिर्विभावैरुत्पद्यते[3] ।'

विश्वनाथ के अनुसार विकृतियों से युक्त व्यक्ति आलम्बन तथा उस व्यक्ति की चेष्टाएं उद्दीपन विभाव है—

'विकृताकारवाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः ।
तदत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम्[4] ।'

अनुभाव—ओष्ठ, नासिका तथा कपोल स्पन्दन, दृष्टि-विकास दृष्टिनिमीलन, नेत्रों का इषत् आकुंचन, स्वेद, मुखराग, तथा शरीर के पार्श्वभागों का पीडनादि हास्य रस के अनुभाव होते हैं—

विश्वनाथ ने स्मितादि को भी अनुभावों में परिगणित किया है—

'अनुभावोऽक्षिसंकोचवदनस्मेरतादयः[5] ।'

व्यभिचारी भाव—अवहित्था, आलस्य, तन्द्रा, निद्रा, स्वप्न, प्रबोध तथा असूयादि हास्य रस के पोषक व्यभिचारी भाव होते हैं[6] ।'

१. सा० द० ३/१७६
२. र० गं० पृ० १४१
३. ना० शा० अभि०, पृ० ३१२
४. सा० द० ३/२१५
५. सा० द० ३/२१६
६. ना० शा० अभि०, पृ० ३१३

भरत ने तेंतीस व्यभिचारियों में तन्द्रा का उल्लेख नहीं किया है परन्तु उन्होंने हास्य रस के व्यभिचारियों में तन्द्रा का भी उल्लेख कर दिया है। अभिनव ने इस असंगति को दूर करने के लिए तन्द्रा के स्थान पर मोह व्यभिचारी भाव की हास्य रस पोषकता को स्वीकार कर लिया है—'तन्द्राशब्देन मोहः[1]।'

धनंजय ने श्रम तथा ग्लानि को हास्य रस पोषक माना है—

'निद्रालस्यश्रमग्लानिमूर्च्छाश्च सहचारिणः[2]।'

हास्य रस के भेद

भरत के अनुसार हास्य रस के दो प्रकार हैं—आत्मस्थ एवं परस्थ। पंडितराज ने इन भेदों का विवेचन ढंग से किया है जो भरत की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है। उनके अनुसार आत्मस्थ उसे कहते हैं जिसकी उत्पत्ति हास्य के विषय को देखने से होती है। और परस्थ हास्य दूसरों को हंसते हुए देखकर उत्पन्न होता है—

'आत्मस्थो द्रष्टुरुत्पन्नो विभावेक्षणमात्रतः।
हसन्तमपरं दृष्टवा विभावश्चोपजायते ॥
योऽसौ हास्यरसस्तज्ज्ञैः परस्थः परिकीर्तितः।[3]

भरत ने पुनः उत्तमादि प्रकृतियों को आधार बनाकर हास्य रस के स्मितादि अन्य छः भेदों का भी उल्लेख किया है—स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित तथा अतिहसित। इनमें स्मित एवं हसित उत्तम प्रकृति के पुरुषों में, विहसित और अवहसित मध्यम प्रकृति के व्यक्तियों में तथा अपहसित एवं अतिहसित अधम प्रकृति के मनुष्यों में होते हैं—

'स्मितमथ हसितं विहसितमुपहसितं चापहसितमतिहसितम्।
द्वौ द्वौ भेदौ स्यातामुत्तममध्यमाधम प्रकृतौ।
स्मितहसिते ज्येष्ठानां मध्यानां विहसितोप हसिते च।
अधमानामपहसितं ह्यतिहसितं चापि विज्ञेयम्[4] ॥'

करुण रस

इष्ट के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति के कारण करुण रस की उत्पत्ति होती है। भरत ने करुण रस की विवेचना करते हुए कहा है—

---

१. ना० शा० अभि०, पृ० ३१३
२. द० रू० ४/७८
३. र० गं० पृ० १८४
४. ना० शा० ६/५२-५३

'अथ करुणो नाम शोकस्थायिभाव प्रभवः। स च शापक्लेशविनिपतितेष्टजन-विप्रयोगविभवनाश वधबन्ध विद्रवोपघातव्यसनसंयोगादिभिर्विभावैः समुपजायते। तस्याश्रुपातपरिदेवनमुखशोषणवैवर्ण्यस्रस्तगात्रतानिश्वासस्मृतिलोपादिभिरनुभावैरभि-नयः प्रयोक्तव्यः[१]।

धनंजय ने करुण रस की परिभाषा देते हुए कहा है कि इष्ट का नाश या अनिष्ट की प्राप्ति के कारण करुण रस होता है—

'इष्टनाशादनिष्टाप्तौ शोकात्मा करुणो रसः[२]।'

भोज के अनुसार जो रसमूर्च्छा को उत्पन्न करता है, विलाप को उत्पन्न करता है, मृत्यु के लिए मन को प्रेरित करता है तथा चित्त में दुःख उत्पन्न करता है, करुण कहलाता है—

'मूर्च्छाविलापौ कुरुते कुरुते साहसे मनः।
करोति चित्तं दुःखेन योऽसौ करुण उच्यते[३]॥'

करुण रस का स्थायी भाव—शोक

प्रिय वस्तु के नाश से उत्पन्न चित्त की व्याकुलता का नाम शोक है। भरत ने इष्ट जन के वियोग, धन या विभव का नाश, प्रिय व्यक्ति की मृत्यु एवं प्रिय व्यक्ति के कारावास से उत्पन्न दुःख को शोक कहा है—

'शोको नाम इष्टजनवियोगविभवनाशकवधबन्धनदुःखानुभवनादिभिर्विभावै रुत्पद्यते[४]।'

विश्वनाथ के अनुसार इष्टनाश के कारण उत्पन्न चित की व्याकुलता शोक है—

'इष्टनाशादिभिश्चेतो वैक्लव्यं शोकशब्दभाक्[५]।'

जगन्नाथ ने इष्ट जन के वियोग के अतिरिक्त पुत्रादि की मृत्यु के कारण उत्पन्न होने वाली चित की व्याकुलता को शोक माना है—

'पुत्रादि वियोगमरणादिजन्मा वैक्लवाख्यश्चितवृत्तिविशेषः शोकः[६]।

विभाव—अप्रतीकार्य शापादिक कष्टों में निमग्न इष्टजनों का वियोग, विभव-

---

१. ना० शा० ६/६३
२. द० रू० ४/८१
३. स० कं०, पृ० ७६
४. ना० शा० ७/१०
५. सा० द० ३/१७७
६. र० गं०, पृ० १४१

नाश, वध, बन्धन, देश, निर्वासन, अग्न्यादिजन्य मरण, मृगया अथवा द्यूत क्रीड़ा से संयोगादि करुण रस के विभाव होते हैं—

'स च शापक्लेशविनिपतितेष्टजन विप्रयोग विभव नाश वध वन्ध विद्रवोपधातव्यसनसंयोगादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते[1] ।'

भरत तथा अभिनव ने करुण रस के आलम्बन तथा उद्दीपनों का पृथक्-पृथक् उल्लेख नहीं किया है । पंडितराजादि ने उनका पृथक् रूप में उल्लेख कर दिया है—

'करुणस्य बन्धुनाशादय आलम्बनानि तत्सम्बन्धिगृहतुरगाभरणदर्शनादयस्तत्कथाश्रवणादयश्चोद्दीपकाः[2] ।'

अनुभाव—भरत ने अश्रुपात, परिदेवन, मुखशोष, वैवर्ण्य, स्रस्तगात्रता, निश्वास, स्मृतिलोप, स्तम्भ तथा प्रलयादि को करुण रस का अनुभाव बताया है[3] ।'

धनंजय, विश्वनाथ तथा पण्डितराज ने इन अनुभावों से भिन्न किसी अन्य अनुभाव का निर्देश नहीं किया है ।

व्यभिचारी भाव—भरत के अनुसार निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, औत्सुक्य, आवेग, मोह, श्रम, भय, विषाद, दैन्य, व्याधि, जड़ता, उन्माद, अपस्मार, त्रास, आलस्य तथा मरणादि व्यभिचारी भाव तथा स्तम्भ, वेपथु, वैवर्ण्य, अत्रु एवं स्वरभेदादि सात्विक भाव करुण रस के परिपोषक होते हैं[4] ।

धनंजय तथा विश्वनाथ ने भरत द्वारा निर्दिष्ट व्यभिचारियों में से कुछ व्यभिचारियों का निर्देश करते हुए निद्रा तथा स्मृति को भी करुण रस का पोषक मान लिया है । पण्डितराज ने किसी नये व्यभिचारी का निर्देश नहीं दिया है ।

करुण रस के भेद

भरत के विभावों के आधार पर करुण रस के तीन भेद किए हैं—धर्मोपघातज, अपचयोद्भव तथा शोककृतक ।

'धर्मोपघातजश्चैव तथापचयोद्भवः ।
तथा शोककृतश्चैव करुणस्त्रिविधः स्मृतः[5] ॥'

भानुदत्त ने रसतरंगिणी में करुण रस के दो प्रकार किए हैं—स्वनिष्ठ एवं

१. ना० शा० अभि० पृ० ३१५
२. र० गं०, पृ० १४८
३. ना० शा० अभि०, पृ० ३१७
४. ना० शा० अभि०, पृ० ३१७
५. ना० शा० ६/७८

परनिष्ठ। अपने शाप, बन्धन एवं क्लेशादि से उत्पन्न करुण स्वनिष्ठ एवं दूसरे के नाश से जनित करुण परनिष्ठ होता है—

'स च स्वनिष्ठः परनिष्ठश्च। स्वशापबन्धनक्लेशनिष्ठैर्विभावैः।
स्वनिष्ठ परेष्टनाशशापबन्धन क्लेशादीनां दर्शनस्मरणैर्विभावैःपरनिष्ठः[1]॥

भाव प्रकाशकार ने करुण को मानसिक, वाचिक और कायिक तीन प्रकार का माना है।

धनंजय, विश्वनाथ तथा पण्डितराज में किसी ने भी करुण रस के भेदों का निर्देश नहीं किया है।

रौद्र-रस

भरत के अनुसार रौद्र रस संग्रामहेतुक क्रोध रूप स्थायी भाव वाला रस है जो राक्षस, दानव एवं उद्धत मनुष्यों के आश्रित होता है—

'अथ रौद्रो नाम क्रोधस्थायिभावात्मको रक्षोदानवोद्धत मनुष्य प्रकृति संग्रामहेतुकः[2]।'

रौद्र-रस का स्थायी भाव—क्रोध

शत्रुकृत बहुत बड़े अपराध अथवा अपमानादि से हृदय में उत्पन्न हुए उत्तेजनापूर्ण भाव को क्रोध कहते हैं। इसका वर्णन करते हुए भरत ने कहा है कि ओद्धत्य, अश्लील वाक्य, कलह, विवाद एवं प्रतिकूल भावों या विरोध के कारण क्रोध उत्पन्न होता है—

'क्रोधो नाम आधर्षणा क्रुष्टकलह विवादप्रतिकूलादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते[3]।'

विश्वनाथ ने शत्रु के प्रति मन में उठी हुई प्रतिशोध की भावना को क्रोध कहा है—

'प्रतिकूलेषु तैक्ष्णस्यावबोधः क्रोध इष्यते[4]।'

पंडितराज के अनुसार गुरु एवं बन्धु के वध एवं असह्य अपराध के कारण उत्पन्न होने वाली जलन (प्रज्वलन) नामक चितवृत्ति का नाम क्रोध है—

'गुरुबन्धुवधादि परमापराध जन्मा प्रज्वलनाख्यः क्रोधः[5]।

---

१. र० तं०, पृ० १४९
२. ना० शा० पृ० ३१९
३. ना० शा० पृ० ३१९
४. सा० द० ३/१७७
५. र० गं०, पृ० १३२

विभाव—धनंजय विश्वनाथ तथा पण्डितराजादि ने क्रौधोद्बोधक व्यापारों के प्रवर्त्तक को आलम्बन विभाव तथा उसकी चेष्टाओं एवं उपर्युक्त व्यापारों को उद्दीपन विभाव के नाम से अभिहित किया है—

'रौद्रस्यागस्कृतपुरुषादिरालम्बनम्, तत्कृतोऽपराधादिरुद्दीपकः[१] ।

अनुभाव—भरत ने रौद्र रस के कर्मों तथा अनुभावों का पृथक्-पृथक् निर्देश किया है—

'तस्य च ताडनपाटन पीडनच्छेदन भेदनप्रहरणशस्त्रसम्पात सम्प्रहाररुधिराकर्षणाथानि कर्माणि । पुनश्च रक्तनयनभृकुटीकरणदन्तोष्ठपीडनगण्डस्फुरणहस्ताग्रनिष्पेषणादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः[२] ।'

धनंजय तथा विश्वनाथ ने भरत द्वारा प्रत्यक्षरूपेण अनुक्त रौद्र रस के कुछ अनुभावों का भी निर्देश किया है—

'क्षोभः स्वाधरदंशकम्प भृकुटिस्वेदास्यरागैर्युतः
शस्त्रोल्लास विकत्थनांस धरणीघात प्रतिज्ञाग्रहैः[३] ।'

'भ्रू विभंगोष्ठनिर्देश बाहुस्फाटन तर्जनाः ।
आत्मावदानकथनमायुधोत्क्षेपणानि च ।।
उग्रतावेगरोमांच स्वेद वेपथवो मदः ।
अनुभावास्तथाक्षेपक्रूर संदर्शनादयः[४] ।।'

व्यभिचारी भाव—भरत ने रौद्र रस पोषक स्थायी भावों, व्यभिचारी भावों, तथा सात्विक भावों तीनों का एक सूत्र में ही भाव नाम से अभिधान कर दिया है—

'भावाश्चास्यासम्मोहोत्साहावेगामर्ष चपलतौग्रय
गर्वस्वेदवेपथुरोमाञ्च गद्गदादयः[५] ।'

धनंजय तथा विश्वनाथ ने मद, स्मृति व असूया को भी रौद्र रस का पोषक स्वीकार कर लिया है—

'अत्रामर्षमदौ स्मृतिश्चलतासूयौग्र्यवेगादयः[६] ।'

---

१. र० गं०, पृ० १४६
२. ना० शा० पृ० ३२०
३. द० रू० ४/७४
४. सा० द० ३/२२६-२३०
५. ना० शा० पृ० ३२१
६. द० रू० ४/७४

'मोहामर्षादयस्तत्र भावाः स्युर्व्यभिचारिणः[1] ।'

रौद्र रस के भेद—भरत ने हास्य रस के समान रौद्र रस को भी अंग नेपथ्य तथा वाक्यों के आधार पर तीन भागों में विभक्त किया है—

'अंग नेपथ्यवाक्यैश्च हास्यरौद्रौ त्रिधा स्मृतौ[2] ।'

परन्तु परवर्ती विवेचकों ने रौद्र रस के भेदोपभेदों का निर्देश नहीं किया है। और न भरत के द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त भेदों का उल्लेख ही उन्होंने किया है।

वीर-रस

भरत के अनुसार वीर रस का स्थायी भाव उत्तम प्रकृति का उत्साह होता है।

'अथ वीरो नामोत्तमप्रकृतिरुत्साहात्मकः[3] ।'

वीर-रस का स्थायी भाव—उत्साह

नाट्य दर्पणकार के अनुसार धर्म, दान एवं युद्ध आदि कार्यों के प्रति आलस्य का न होना उत्साह है—

'धर्मदानयुद्धादि कर्मण्यनालस्यमुत्साहः[4] ।'

शारदातनय के अनुसार सभी कार्यों को करने के लिए मन में विशेष प्रकार की सत्वर क्रिया का सजग होना ही उत्साह है—

'उत्साहः सर्वकृत्येषु सत्वरा मानसी क्रिया[5] ।

विश्वनाथ ने किसी कार्य को सम्पन्न करने के अवसर पर व्यक्तियों में दृष्टिगत होने वाले स्थिरतर आवेश को उत्साह स्थायी भाव के नाम से अभिहित किया है जबकि पण्डितराज ने पर-पराक्रम अथवा दानादि की स्मृति से उत्पन्न औन्नत्य नामक चितवृत्ति को उत्साह स्थायी भाव के नाम से अभिहित किया है—

'कार्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते[6] ।

'परपराक्रम दानादि स्मृतिजन्मा औन्नत्याख्य उत्साह[7] ।'

---

१. सा० द० ३/२३१
२. ना० शा० ६/७७
३. ना० श० पृ० ३२४
४. नाट्यदर्पण ३/१२६
५. भावप्रकाशन, पृ० ३५
६. सा० द० ३/१७८
७. र० गं० पृ० १३२

उत्साह मन की ऐसी उमंग है जो कर्म में प्रवृत्त कराती है। कर्म भी सामान्य नहीं होता, असमान्य होता है। सामान्य कर्म में तो सभी प्रवृत्त होते हैं, पर असाधारण कर्म में उत्साही ही प्रवृत्त होता है। कर्म में प्रवृत्त होने के पहले से लेकर कर्म की समाप्ति तक उत्साह के साथ कई अन्य भाव भी उत्साही के हृदय में तरंगित होते रहते हैं। ये भाव हैं—आनन्द, आशा, आत्मविश्वास और सन्तोष।

विभाव—भरत के अनुसार असंमोहाध्यवसायादि वीर रस के विभाव होते हैं—

'स चासंमोहाध्यवसाय-नय-विनय-बल पराक्रम-शक्ति-प्रताप-प्रभावादिभिर्विभावैरुत्पद्यते[1]।'

धनंजय ने वीर रस के विभावों का निर्देश करते हुए मोह तथा विस्मय को भी वीर रस का व्यंजक स्वीकार कर लिया है—

'वीरः प्रतापविनयाध्यवसाय सत्व
मोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यैः[2]।'

जबकि भरत के अनुसार अमोह तथा अविस्मय वीर रस का व्यंजक होता है—

'उत्साहोऽध्यवसायादविषादित्वादविस्मयामोहात्।
विविधादर्थविशेषाद्वीररसो नाम संभवति[3]।'

इस प्रकार धनंजय तथा भरत की मान्यताओं में परस्पर विरोध है, किन्तु यदि धनंजय द्वारा निर्दिष्ट मोह तथा विस्मय को आलम्बनगत मान लिया जाए तो उपर्युक्त विरोध स्वतः दूर हो जाता है, क्योंकि शत्रुगत मोह तथा विस्मय आश्रयगत उत्साह का परिपोष ही करेगा।

विश्वनाथ के अनुसार विजेतव्यादि व्यक्ति वीर रस का आलम्बन होता है तथा उसकी चेष्टादि उद्दीपन विभाव होते हैं—

आलम्बनविभावस्तु विजेतव्यादयो मताः।
विजेतव्यादि चेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः[4]॥'

अनुभाव—भरत ने स्थैर्य, धैर्य, शौर्य अर्थात् युद्धादि क्रिया त्याग अर्थात् दान तथा वैशारध अर्थात् सामादिक उपायों के आवश्यकतानुसार प्रयोग को वीर रस का अनुभाव स्वीकार किया है—

---

१. ना० शा० अभि० पृ० ३२४
२. द० रू० ४/७२
३. ना० शा० ६/६७
४. सा० द० ३/२३३

'तस्य स्थैर्य धैर्य शौर्यत्यागवैशारद्यादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः[1]।'

विश्वनाथ ने सहायान्वेषण को भी वीर रस का अनुभाव स्वीकार कर लिया है—

'अनुभावास्तु तत्र स्यु सहायान्वेषणादयः[2]।'

व्यभिचारी भाव

भरत के अनुसार धृत्यादिक भाव वीर रस का परिपोष करते हैं—

'भावाश्चास्य घृतिमतिगर्वावेगौग्र्यामर्षस्मृति रोमांचादयः[3]।'

धनंजय ने हर्ष तथा धनिक ने वितर्क को भी रस के व्यभिचारियों में परिगणित कर लिया है—

'वीरः मतिगर्वघृतिप्रहर्षाः[4]।'

'गर्वधृतिहर्षामर्षस्मृति-मतिवितर्कप्रभृतिभिर्भावितः उत्साह स्थायीस्वदेत[5]।'

विश्वनाथ के अनुसार—'धैर्य, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमांच आदि इसके संचारी-भाव हैं—

'संचारिणस्तु धृतिमति गर्वस्मृतितर्करोमांचाः[6]।'

वीर रस के भेद

भरत मुनि ने वीर रस के तीन भेद माने हैं—युद्धवीर, दानवीर, और धर्मवीर।

'दानवीरं धर्मवीरं युद्धवीरं तथैव च।
रसवीरमपि प्राहुस्तज्ज्ञास्त्रिविध-सम्मतम्[7]।

भरत द्वारा निर्दिष्ट ये भेद वीर-रस के अनुभावों पर आधारित हैं। भरत ने वीर-रस के अनुभावों में शौर्य अर्थात् युद्धादि-क्रिया तथा त्याग अर्थात् दान का भी परिगणन किया है। और उन्हें ही वे वीर रस का भेद भी स्वीकार करते हैं।

धनंजय ने दया, रण तथा दान के आधार पर वीर-रस को तीन भागों में विभाजित किया है और धनिक उन दयादिकों को वीर-रस का अनुभाव स्वीकार करते हैं—

---

१. ना० शा० पृ० ३२४
२. सा० द० ३/२३३
३. ना० शा० पृ० ३२४
४. द० रू० ४/७२
५. द० रू० सं० वृ० ४/७२
६. सा० द० ३/२३४
७. ना० शा० ६/७९

'उत्साह भूः स च दयारणदानयोगात् त्रेधा[1]।'

'प्रतापविनयादिभिर्विभावितः करुणायुद्धदानाद्यैरनुभावितः उत्साह स्थायी स्वदते[2]।'

परवर्ती विवेचकों ने वीर रस के अनेकानेक भेदों का उल्लेख किया है। धनंजय ने भरत द्वारा निर्दिष्ट धर्मवीर के स्थान पर दयावीर का उल्लेख किया है जबकि विश्वनाथ ने दया तथा धर्म दोनों भेदों को अस्वीकार कर लिया है—

'स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात्[3]।'

भयानक-रस

भयानक दृश्य को देखने अथवा बलवान व्यक्तियों के अपराध करने से भयानक रस उत्पन्न होता है।

भयानक-रस का स्थायी भाव—भय

विश्वनाथ ने रौद्र की शक्ति या भयंकर वस्तु की भीषणता से उत्पन्न चित्त के भाव को 'भय' स्थायी माना है—

'रौद्रशक्त्या तु जनितं चित्तवैक्लव्यदं भयम्[4]।'

जगन्नाथ के अनुसार वैक्लव्य नामक चितवृत्ति को भय नाम से अभिहित किया गया है—

'व्याघ्रदर्शनादिजन्मा परमानर्थविषयको वैक्लव्याख्यः स भयम्[5]।'

विभाव—आचार्य भरत के अनुसार अट्टाहासादि शब्द, पिशाचादि का दर्शन, गीदड, उल्लू, परगत त्रास तथा उद्वेग, शून्यागार, अरण्यगमन, स्वजन वध अथवा बन्धादि का दर्शन, श्रवण अथवा कथनादि के स्मरण आदि भयानक रस के विभाव होते हैं—

'स च विकृतरवसत्वदर्शनशिवोलूकत्रासोद्वेगशून्यागारारण्यगमनस्वजनवध-बन्धदर्शनश्रुतिकथादिभिर्विभावैरुत्पद्यते[6]।'

घनंजय तथा विश्वनाथ ने किसी नवीन विभाव की ओर संकेत नहीं किया है, विश्वनाथ ने केवल आलम्बन तथा उद्दीपन के रूप में उनका पृथक्-पृथक् संकेता-

१. द० रू० ४/७२
२. द० रू० सं० वृ० ५/७२
३. सा० द० ३/२३४
४. सा० द० ३/१७८
५. र० गं० पृ० १४५
६. ना० शा० अभि० पृ० ३२६

त्मक निर्देश मात्र कर दिया है—

'विकृतस्वरसत्वादेर्मय भावो भयानकः[1]।'
'यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बनं मतम्।
चेष्टा घोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपनं पुनः[2]॥'

अनुभाव—हाथ-पैरों का कांपना, नेत्रों की चंचलता, रोमांच, मुखवैवर्ण्य तथा स्वरभेदादि भयानक रस के अनुभाव होते हैं—

'तस्य प्रवेपित कर चरण नयन पुलक मुखवैवर्ण्य स्वरभेदादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्ताव्यः[3]।'

धनंजय तथा विश्वनाथ ने भी उपर्युक्त अनुभावों में से ही कुछ अनुभावों का निर्देश किया है। उन्होंने जिन सात्विक भावों का अनुभावों के साथ उल्लेख किया है, भरत ने उन्हें व्यभिचारियों के साथ परिगणित किया है—

'सर्वांग वेपथु स्वेद शोषवैचित्र्य लक्षणः[4]।'
'अनुभावोऽत्र वैवर्ण्य गद्गद्स्वर भाषणम्।
प्रलयस्वेद रोमांचकम्पदिक् प्रेक्षणादयः[5]॥'

व्यभिचारी भाव

भरत के अनुसार स्तम्भ, स्वेद, गद्गद्, रोमांच, वेपथु, स्वरभेद, वैवर्ण्य, शंका, मोह, दैन्य, आवेग, चपलता, जड़ता, त्रास, अपस्मार तथा मरणादि सात्विक एवं व्यभिचारी भाव भयानक रस के पोषक होते हैं।[6]

धनंजय ने भी उपर्युक्त व्यभिचारी भावों में से ही कुछ व्यभिचारी भावों का निर्देश किया है। विश्वनाथ ने ग्लानि तथा जुगुप्सा को सम्मिलित कर लिया है—

'जुगुप्सावेगसंमोह संत्रासग्लानि दीनताः।
शंकापस्मार संभ्रान्तिमृत्व्याद्या व्यभिचारिणः[7]।'

भयानक रस के भेद

भरत ने भयानक रस के व्याज-जन्य, अपराध जन्य तथा वित्रासितक नामक तीन भेदों का उल्लेख किया है—

---

१. द० रू० ४/८०
२. सा० द० ३/२३६
३. ना० शा० अभि० पृ० ३२६
४. द० रू० ४/८०
५. सा० द० ३/२३७
६. ना० शा० अभि० पृ० ३२६
७. सा० द० ३/२३८

'व्याजाच्चैवापराधाच्च विवासितकमेव च ।
पुनर्भयानकं चैव विद्यात् त्रिविधमेव हि[१] ।।''

धनंजय, विश्वनाथ तथा पण्डितराज ने भयानक रस के भेदों का निर्देश नहीं किया है। पण्डितराज ने परमानर्थ विषयक भय को ही स्थायी भाव स्वीकार किया है। यदि भय परमानर्थ विषयक न हो तो उसे वे त्रास नामक व्यभिचारी स्वीकार करते हैं—

'व्याघ्रदर्शनादिजन्मा परमानर्थविषयको वैक्लव्याख्यः स भयम् ।
परमानर्थ विषयकत्वाभावे तु स एव त्रासो व्यभिचारी[२] ।'

बीभत्स-रस

घृणित वस्तुओं को देखकर अथवा सुनकर जो रस उत्पन्न होता है, उसे बीभत्स कहते हैं।

बीभत्स-रस का स्थायी भाव जुगुप्सा

विश्वनाथ ने दोषयुक्त पदार्थ के दर्शन के कारण उत्पन्न घृणा को जुगुप्सा कहा है—

'दोषेक्षणादिर्भिर्हा जुगुप्सा विषयोद्भवा[३] ।'

जगन्नाथ ने घृणित पदार्थों को देखने से उत्पन्न हुई घृणा नामक चितवृत्ति को जुगुप्सा माना है—

'कदर्यवस्तुविलोकनजन्मा विचिकत्साख्यश्चित वृत्तिविशेषो जुगुप्सा[४] ।'

विभाव—भरत तथा अभिनव के अनुसार अहृद्य अर्थात् स्वभावतः अप्रिय तथा कारणवशात् अप्रिय वस्तु स्वरूप में अदुष्ट होते हुए भी मलाद्युपहित वस्तु तथा अनिष्ट वस्तु के श्रवण, दर्शन तथा कीर्तनादि बीभत्स रस के विभाव होते हैं--

'स चाहृधाप्रिया चोष्यानिष्ट श्रवणदर्शन कीर्तिनादिभिर्विभावैरुत्पद्यते[५] ।'

धनंजय तथा विश्वनाथ ने प्रायः एक जैसे विभावों का निर्देश किया है। विश्वनाथ ने केवल उन्हें आलम्बन तथा उद्दीपन भेदों में विभक्त कर दिया है तथा धनंजय ने वीभत्स-रस के भेदों के पृथक्-पृथक् विभावों का उल्लेख किया है—

१. ना० शा० ६/८०
२. र० गं० पृ० १४५
३. सा० द० ३/१७९
४. र० गं० पृ० १४६
५. ना० शा० अभि० पृ० ३२८

'बीभत्सः कृमिपूतिगन्धिवेमथुप्रायैर्जुगुप्सैकमू
रुद्वेगीरुधिरान्त्रकीकस वसामांसादिभिः क्षोभणः ।
वैराग्याज्जघनस्तनादिषु घृणा शुद्धः[1] ।।'

विश्वनाथ ने बीभत्स रस के भेदों का निर्देश नहीं किया है और न समन्वित रूप में ही धनंजय द्वारा निर्दिष्ट बीभत्स रस से शुद्ध भेद के विभावों की ओर संकेत किया है--

'दुर्गन्धमांसरुधिरमेदास्यालम्वनं मतम् ।
तत्रैव कृमिपाताद्यमुद्दीपनमुदाहृ तम्[2] ।।"

अनुभाव--भरत तथा अभिनव के अनुसार समस्त अंगों का पिण्डीकरण, मुख-संकोच वमन, निष्ठीवन तथा उद्वेजन अर्थात् गात्रोद्धूनन आदि बीभत्स रस के अनुभाव होते हैं—

"तस्य च सर्वांगसंहार मुखविकूणनोल्लेखननिष्ठीवनोद्वेजनादिभिरनुभावैर-भिनयः प्रयोक्तव्यः[3] ।'

धनंजय तथा विश्वनाथ ने भी उपर्युक्त अनुभावों का अभिधान किया है—

'नासावक्त्र विकूणनादिभिः[4] ।'
निष्ठीवनास्यनलननेत्रसंकोचनादयः अनुभावाः[5] ।'

व्यभिचारी भाव

भरत के अनुसार अपस्मार, उद्वेग, आवेग, मोह, व्याधि तथा मरणादि भाव वीभत्स रस के पोषक होते हैं—

'भावाश्चास्यापस्मारोद्वेगावेगमोहव्याधिमरणादयः[6] ।'

धनंजय ने शंका व्यभिचारी को भी वीभत्स रस का पोषक माना है। जबकि विश्वनाथ ने भरत के द्वारा निर्दिष्ट व्यभिचारियों को ही स्वीकार कर लिया है।

वीभत्स-रस के भेद

भरत ने बीभत्स रस के दो भेदों का उल्लेख किया है—क्षोभज या शुद्ध, तथा उद्वेगी अर्थात् अशुद्ध । रुधिरादि से उत्पन्न होने वाला क्षोभज एवं विष्ठा तथा कृमि आदि से उत्पन्न होने वाले को उद्वेगी कहते हैं—

---

१. द० रू० ४/७३
२. सा० द० ३/२४०
३. ना० शा० अभि० पृ० ३२८
४. द० रू० ४/७३
५. सा० द० ३/२४१
६. ना० शा० अभि० पृ० ३२८

'बीभत्सः क्षोभजः शुद्ध उद्वेगी स्याद् द्वितीयकः ।
विष्ठाकृमिभिरुद्वेगी क्षोभजो रुधिरादिजः[1] ।'

धनंजय का लक्षण भरत से मिलता-जुलता है, किन्तु उन्होंने शुद्ध वीभत्स में सुन्दरी के जघन स्तन आदि के प्रति वैराग्य के कारण उत्पन्न घृणा को स्थान दिया है--

'वैराग्याज्जघनस्तनादिषु घृणा शुद्धोऽनुभाववैर्वृतो[2] ।'

वीभत्स रस की उत्पत्ति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि श्मशान, शव, रक्त, मांस या सड़े गले पदार्थों का ही वर्णन किया जाय बल्कि ऐसी वस्तुएं भी बीभत्स रस के अन्तर्गत आ जायेंगी जिनके प्रति मन में अरुचि, हिचक या घृणा का भाव हो। अतएव आचार्यों ने यह स्वीकार किया है कि अहृद्य, अप्रिय वस्तु को देखकर, अनिष्ट के संबंध में सुन देख अथवा स्मरण करके वीभत्स रस व्यक्त होता है। अतः यही इसके विभाव हैं। जिन-जिन वस्तुओं से घृणा उत्पन्न होती है, वे सब बीभत्स के विभाव हैं। किसी के दुष्टतापूर्ण कार्य, किसी की शारीरिक मानसिक कुरूपता आदि को भी बीभत्स रस का विभाव माना जा सकता है।

अद्भुत-रस

आश्चर्यजनक वस्तुओं को देखने से अद्भुत-रस की उत्पत्ति होती है। लोकोत्तर वस्तु अथवा घटना के द्वारा भी अद्भुत रस उत्पन्न होता है।

अद्भुत-रस का स्थायी भाव—विस्मय

नाट्यदर्पण में उत्कृष्ट होने के निश्चय को विस्मय कहा गया है—

'उत्कृष्टत्वाध्यवसायो विस्मयः[3] ।'

विश्वनाथ ने चित्त के विस्तार तथा पण्डितराज ने विकास नामक चितवृत्ति को विस्मय नाम से अभिहित किया है—

'विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु ।
विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः[4] ।'
'अलौकिकवस्तुदर्शनादिजन्मा विकासाख्यो विस्मयः[5] ।'

विभाव--भरत के अनुसार दिव्यजनों के दर्शन, अभिलषित मनोरथ की प्राप्ति, उपवन एवं देवमन्दिर में जाने, सभा, विमान, माया, इन्द्रजाल आदि के द्वारा

---

१. ना० शा० ६/८१
२. द० रू० ४/७३
३. ना० द०, पृ० ३३०
४. सा० द० ३/१७९-८०
५. र० गं० पृ० १३३

असम्भव वस्तु का प्रदर्शनादि विस्मयोद्बोधक विभाव होते हैं ।

घनंजय ने समष्टि रूप में सभी लोकसीमातिवर्ती पदार्थों को विस्मयजनक स्वीकार किया है । और विश्वनाथ ने उन्हीं पदार्थों की आलम्बन तथा उद्दीपन विभावता का पृथक्-पृथक् उल्लेखमात्र कर दिया है—

'अतिलौकैः पदार्थैः स्याद्विस्मयात्मा रसोऽद्भुतः[1] ।
'वस्तु लोकातिगमालम्बनं मतम् । गुणानां तस्य महिमा भुवेदुद्दीपनं पुनः[2] ।'

अनुभाव—भरत के अनुसार नेत्र विस्तार अनिमेष निरीक्षण, रोमांच, अश्रु, स्वेद, हर्ष, साधुवाद, दानादि का प्रबन्ध हाहाकार एवं बाहु, बदन, वस्त्र तथा अंगुलि भ्रमण आदि अद्भुत रस के अनुभाव होते हैं ।[3]

घनंजय तथा विश्वनाथ ने भरतोक्तविस्मयाभिव्यंजक अनुभावों के साथ-साथ सात्विक भावों का भी अनुभावों के साथ ही निर्देश किया है, जबकि भरत ने विस्मयाभिव्यंजक सात्विकों का भावों के साथ निर्देश किया है—

'कर्मास्य साधुवादाश्रुवेपथु स्वेदगद्गदाः[4] ।'
'स्तम्भस्वेदोऽथ रोमांचगद्गद् स्वर संभ्रमाः ।
तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः[5] ॥'

व्यभिचारी भाव

भरत के अनुसार स्तम्भ, अश्रु, स्वेद, गद्गद, रोमांच, आवेग, संभ्रम, जड़ता तथा प्रलाप आदि सात्विक तथा व्यभिचारी भाव अद्भुत रस के पोषक होते हैं—

'भावाश्चास्य स्तम्भाश्रुस्वेदगद्गदरोमांचावेगसंभ्रमजडताप्रलापादयः[6] ।'

घनंजय तथा विश्वनाथ ने क्रमशः घृति तथा वितर्क को भी अद्भुत रस के व्यभिचारियों में परिभाषित कर लिया है—

'हर्षावेगधृतिप्राया भवन्ति व्यभिचारिणः[7] ।'
'वितर्कावेगसंभ्रान्तिहर्षाद्या व्यभिचारिणः[8] ।'

---

१. ना० शा० अभि० पृ० ३२९
२. द० रू० ४/७८
३. सा० द० ३/२४३
४. ना० शा० अभि० पृ० ३२९
५. द० रू० ४/७९
६. सा० द० ३/२४४
७. ना० शा० अभि०, पृ० ३३०
८. द० रू० ४/७९

अद्भुत-रस के भेद

भरत ने अद्भुत-रस के दो भेदों का वर्णन किया है--

'दिव्यश्चान्दजश्चैव द्विधा ख्यातोऽद्भुतो रसः ।
दिव्यदर्शनजो दिव्यो हर्षानन्दजः स्मृतः[१] ।।'

अर्थात् दिव्य-दैविक चमत्कार से उत्पन्न तथा आनन्दज-अभीष्ट की प्राप्ति से उत्पन्न आनन्द ।

शान्त-रस

शान्त को रस माना जाये या नहीं, यह विषय अत्यधिक विवादास्पद रहा है। बहुत प्राचीन काल में रसों की संख्या आठ मानी जाती रही है । भरत ने नाट्यशास्त्र में आठ रसों का ही उल्लेख किया है, बहुत दीर्घ काल तक कवियों ने भी आठ ही रसों का प्रयोग किया है । भरत के पश्चात् दण्डी के काव्यादर्श में आठ रसों का उल्लेख है—

'इह त्वष्टरसायत्ता रसवत्ता स्मृता गिराम्[२] ।'

ऐसा प्रतीत होता है कि भामह को भी आठ ही रस मान्य थे । सर्वप्रथम उद्भट ने स्पष्ट रूप से नव रसों का उल्लेख किया है—

'शृंगारहास्यकरुणरौद्र वीर भयानकाः
बीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः[३] ।।'

नाट्यशास्त्र में भरत के पूर्ववर्ती किसी द्रुहिण नामक आचार्य का नामोल्लेख किया है जिन्होंने आठ रसों को स्वीकृति दी थी—

'एते ह्यष्टौ रसाःप्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना[४] ।'

अभिनव गुप्त ने कालान्तर में नाट्यशास्त्र के किसी पाठ के आधार पर यह सिद्ध किया कि भरत ने ही नवरसों को माना था, किन्तु उनका यह उल्लेख केवल मात्र अपने मत की पुष्टि करने के लिए ही है, क्योंकि भरत ने स्पष्ट रूप से दो स्थानों पर आठ ही रसों का निर्देश किया है । अभिनव ने शान्तरस की पुष्टि के लिए भरत की इस पंक्ति को उद्धृत किया है—

'क्वचिद्धर्मः क्वचित् क्रीडा क्वचिदर्थः क्वचित् शमः ।'

इसी को आधार बनाकर अभिनव ने शान्त-रस का वर्णन इस प्रकार किया

---

१. सा० द० ३/२४५
२. ना० शा० ६/८२
३. काव्यादर्श, १/२९१
४. काव्यादर्श १/२९२

है—'अथ शान्तो नामशमस्थायिभावात्मको मोक्षप्रवर्त्तकः। स तुतत्वज्ञानवैराग्याशय-शुद्ध्यादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते'।

शान्त-रस के पोषक आचार्य शान्तरस को परम्परागत सिद्ध करते हुए महाभारत को शान्त-रस प्रधान महाकाव्य मानते हैं।

शान्त-रस के विरोधी आचार्यों ने अपना विरोध प्रायः नाटकों की दृष्टि से ही प्रकट किया है।

शान्त-रस का स्थायी भाव

आचार्य भरत ने भावों में शान्त रस के स्थायी भाव का न तो स्पष्ट निर्देश किया है न कोई ऐसा स्पष्ट संकेत ही किया है कि उन्चास भावों में कौन भाव शान्त रस का स्थायी भाव हो सकता है। किन्तु वर्तमान नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट शान्त-रस के स्वरूप के अनुसार जिसे कुछ विद्वान् भरत निर्दिष्ट नहीं मानते शान्त रस का स्थायी भाव शम है—

'अथ शान्तो नाम शमस्थायिभावात्मकोमोक्षप्रवर्तकः[२]।'

इसी प्रकार विश्वनाथ ने भी शान्त-रस का स्थायी भाव शम को ही माना है—

'शान्तःशमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः[३]।'

मम्मट और पण्डितराज ने निर्वेद नामक व्यभिचारी भाव का ही शान्त-रस के स्थायी भाव के रूप में उल्लेख किया है—

'निर्वेद स्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः[४]।'

पण्डितराज ने निर्वेदमात्र को शान्त रस का स्थायीभाव नहीं माना है, उन्होंने उसके स्थायी तथा व्यभिचारी दो रूपों की ओर संकेत किया है—

'नित्यानित्यवस्तुविचारजन्मा विषयविरागाख्यो निर्वेदः।
गृहकलहादिजस्तु व्यभिचारी[५]॥'

विभाव—तत्वज्ञानजनक विषय, वैराग्य तथा आश्रय-शुद्धि आदि शान्त-रस के विभाव होते हैं—'स तु तत्वज्ञान वैराग्याशयशुद्धयादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते[६]।'

---

१. ना० शा० ६/१७
२. ना० शा० अभि० पृ० ३१२
३. ना० शा० अभि० पृ० ३३२
४. सा० द० ३/२४५
५. का० प्र० ४/४७
६. र० गं० पृ० १४३

विश्वनाथ तथा पण्डितराज ने शान्त रस के आलम्बन तथा उद्दीपन विभावों का पृथक्-पृथक् निर्देश किया है—

'अनित्यत्वादिनाशेषवस्तुनिः सारता तु या।
परमात्मस्वरूपं वा तस्यालम्बनमिष्यते ।।'
'पुण्याश्रम हरिक्षेत्र तीर्थं रम्यवनादयः।
महापुरुषसंगाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः[1] ।।'
'शान्तस्यानित्यत्वेन ज्ञातं जगदालम्बनम्।
वेदान्तश्रवण तपोवन तापस दर्शनाद्युद्दीपनम्[2]।'

अनुभाव—भरत के अनुसार यम, नियम, अध्यात्म, ध्यान, धारणा, उपासना, सर्वभूतदया, आदि शान्त-रस के अनुभाव होते हैं—

'तस्य यमनियमाध्यात्मध्यानधारणोपासन सर्व भूतदया लिंगग्रहणादिभिरनुभावैरभि नयः प्रयोक्तव्यः[3]।'

विश्वनाथ के अनुसार रोमांचादि इसके अनुभाव हैं—

रोमान्चाद्या अनुभावाः[4]।'

पण्डितराज ने विषयारुचि, शत्रु एवं मित्रों के प्रति उदासीनता तथा चेष्टा-नाशादि को अनुभाव कहा है—

'विषयारुचिशत्रुमित्राधौदासीन्य चेष्टा हानि नासाग्र दृष्टयादयोऽनुभावाः[5]।

व्यभिचारी भाव

निर्वेद, स्मृति धृति आदि व्यभिचारी तथा स्तम्भ एवं रोमांचादि सात्विक भाव शान्त-रस के पोषक होते हैं—

'व्यभिचारिणश्चास्य निर्वेद स्मृति धृति सर्वाश्रम शौचस्तम्भरोमांचादयः[6]।

विश्वनाथ ने हर्ष, मति तथा दया मूलक उत्साह को भी शान्त रस का पोषक माना है—

'निर्वेद हर्षस्मरणमतिभूत दयादयः[7]।'

पण्डितराज ने उन्माद को भी शान्त-रस का पोषक माना है—

---

१. ना० शा० अभि० पृ० ३३२
२. सा० द० ३/२४६-२४८
३. र० गं०, पृ० १३६
४. ना० शा० अभि०, पृ० ३३२
५. सा० द० ३/२४८
६. र० गं० पृ० १४६
७. ना० शा० अभि० पृ० ३३३

'हर्षोन्माद स्मृति मत्यादयो व्यभिचारिण:[१] ।'

जबकि अभिनव के अनुसार सभी स्थायी तथा व्यभिचारी भाव तत्व ज्ञान के पोषक होते हैं—'तत्वज्ञानलक्षणस्य च स्थायिन: समस्तोऽयं लौकिकालौकिक चितवृत्ति-कलापो व्यभिचारितमामस्येति[२] ।'

वात्सल्य-रस

प्राचीन आचार्यों ने प्रत्यक्षत: वात्सल्य रस को मान्यता प्रदान नहीं की थी। सर्वप्रथम आचार्य विश्वनाथ ने वात्सल्य रस की शास्त्रीय विवेचना की है।

वात्सल्य रस का स्थायी भाव वत्सलता अर्थात् स्नेह है। लालन-पालन की इच्छा वत्सलता कहलाती है।

पुत्रादि आलम्बन विभाव हैं। तथा पुत्रादि की चेष्टायें (खेलना, कूदना और हास्यादि) विद्या, वीरता, दया आदि उद्दीपन विभाव हैं।

आलिंगन, अंग-स्पर्श, शिरो चुम्बन, देखना, रोमांच, आनन्दाश्रु आदि अनुभाव हैं।

अनिष्ट की आशंका, हर्ष, गर्व आदि संचारी भाव हैं—

'स्थायी वत्सलता स्नेह: पुत्राद्यालम्बनं मतम्
उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्यदयादय: ।
आलिंगनांगसंस्पर्शशिरश्चुम्बनमीक्षणम्
पुलकानन्दबाष्पाद्या अनुभावा: प्रकीर्तिता:
संचारिणोऽनिष्टशंकाहर्षगर्वादयो मता:[३] ।'

भक्ति-रस

भक्ति-रस की सरसता की ओर प्राचीन आचार्यों का ध्यान नहीं गया। सर्वप्रथम भक्ति-रस को रसत्व प्रदान करने का श्रेय रूप गोस्वामी को है। इन्होंने 'भक्तिरसामृतसिन्धु' एवं 'उज्ज्वलनीलमणि' नामक ग्रन्थों में भक्ति को स्वतन्त्र रूप से रसत्व प्रदान कर शास्त्रीय दृष्टि से इसका मूल्यांकन किया है। तत्पश्चात् मधुसूदन शास्त्री ने भक्तिरस का विवेचन किया है। मधुसूदन सरस्वती ने तो पूर्णानन्दमय होने के कारण केवल भक्ति रस को ही वास्तविक रस माना है। अन्य रसों को वे निम्नकोटि का मानते हैं।

---

१. सा० द० ३/२४६
२. र० गं० पृ० १४६
३. सा० द० ३/२५१-२५३

इश्वरानुराग भक्तिरस का स्थायीभाव है। इसके आलम्बन ईश्वर, राम, कृष्ण या अन्य अवतारादि माने जाते हैं। ईश्वर के अलौकिक कार्य भक्तों के सत्संग एवं ईश्वर का गुणगान इसके उद्दीपन विभाव हैं।

औत्सुक्य, हर्ष, गर्व, निर्वेद, मति आदि व्यभिचारी भाव हैं।

— — — —

तृतीय अध्याय

वाल्मीकि-रामायण का प्रधान-रस

वाल्मीकि—रामायण का प्रधान रस

रामायण रसों की मन्दाकिनी है। श्रृंगार, वीर, करुण आदि सभी रस इस महाकाव्य में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। सभी रसों की योजना में आदिकवि ने अपनी कुशलता प्रदर्शित की है। इनमें किस रस को प्रधान माना जाये यह एक विचारणीय विषय है, क्योंकि प्रत्येक महाकाव्य या नाटक में एक ही प्रधान रस होता है अन्य रस उसके अंगभूत होते हैं—

'प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारसनिवन्धने।
एको रसोऽङ्गीकर्तव्यः तेषामुत्कर्षमिच्छता[1] ॥'

जिन प्रबन्धों में बहुत से रस एकत्रित होकर प्रतिभासित होते हैं, उन रसों में जिस रस का आस्वाद सर्वाधिक प्रतीत होता है, वह रस स्थायीवत् एवं अन्य संचारी के समान होते हैं—

'बहूनां समवेतानां रूपं यस्य भवेद् बहुः।
स मन्तव्यो रसः स्थायी शेषाः संचारिणो मताः[2] ॥'

रामायण में प्रधान रस के निर्धारण के लिए विभिन्न आचार्यों द्वारा प्रतिपादित विचारों की विवेचना यहां आवश्यक है।

काव्य शास्त्र में प्रधान रस निरूपण

आचार्यों में रसों की संख्या के विषय में पर्याप्त मतभेद रहा है। यह संख्या ८ से ११ तक मानी गई है। शान्त, वात्सल्य एवं भक्ति को; रस माना जाये अथवा नहीं, यह विवादास्पद विषय है।

यद्यपि सभी रस आस्वाद्य होते हैं, अतः काव्य में समस्त रसों की महत्ता समान रूप से माननी चाहिए, पुनरपि अनेक मनीषियों ने किसी एक रस को अन्य रसों की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान किया है। इनमें किसी ने श्रृंगार को सर्वश्रेष्ठ माना है तो किसी ने वीर, करुण, अद्भुत अथवा शान्त रस को प्रधान रस निरूपित किया है। भिन्न-भिन्न रसों की प्रधानता प्रतिपादित करने वाले काव्य-शास्त्रियों ने अपने-अपने कथन की पुष्टि में सारगर्भित तर्क प्रस्तुत किए हैं। इनके तर्कों में अन्तर होते हुए भी साहित्य-जगत् में उनकी मान्यताओं को आदर प्राप्त हुआ है। महाकाव्यों में प्रायः उन्हीं रसों की प्रधान रूप से योजना पर बल दिया गया है, जिन्हें किसी न किसी आचार्य ने रसराज सिद्ध करने का प्रयत्न किया है—

---

१. ध्व० ३/७७
२. ध्व० पृ० ३९७

'श्रृंगार वीर शान्तानामेकोऽङ्गीरस इष्यते
अङ्गाणि सर्वेऽपि रसाः······[१]।'

काव्य में सर्वप्रथम जिसकी व्यंजना की गयी हो तथा अन्त तक जिसका पुनः पुनः अनुसन्धान किया गया हो ऐसे स्थायी रूप से भासित होने वाले रस को आनन्दवर्धन ने अंगी (प्रधान) रस माना है—

'प्रबन्धेषु प्रथमतरं प्रस्तुतः सन् पुनः पुनरनुसंधीयमानत्वेन स्थायी यो रसस्तस्य सकलसन्धिव्यापिनो रसान्तरैरन्तरालवर्तिभिः समावेशो यः स नांगितामुपहन्ति[२]।'

रसों की प्रधानता एवं अप्रधानता का विचार करते समय एक दृष्टिकोण यह भी रहा है कि, कुछ रस तो मूल रूप है तथा अन्य उन रसों से उत्पन्न हैं। इनमें मूलरूप से विद्यमान रहने वाले रस प्रधान तथा उनसे उत्पन्न रस अप्रधान माने गए हैं।

आचार्य भरत ने इस विषय में सर्वप्रथम विचार किया है। भरत के अनुसार श्रृंगार, रौद्र, वीर, तथा वीभत्स ये चार रस क्रमशः हास्य, करुण, अद्‌भुत तथा भयानक रस के जनक होते हैं—

'श्रृंगाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः।
वीराच्चैवाद्‌भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानकः[३]।'

इसका आशय यह है कि श्रृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स रस प्रधान हैं, तथा हास्य, करुण, अद्‌भुत और भयानक रस अप्रधान हैं।

भरतमुनि के इस विवेचन का आधार चितवृत्तियां हैं। अन्तःकरण मे अनादि-काल से संचित वासनाओं या संस्कारों को वर्गीकृत करके स्थायी-भावों के नाम दिए गए हैं। अतः रसास्वाद के समय चितवृत्ति की विभिन्न अवस्थाओं के आधार पर रसों की प्रधानता या अप्रधानता निर्धारित की गई है।

चित्तवृत्ति की चार अवस्थाएं मानी गयी हैं—

(१) विकास, (२) विस्तार, (३) क्षोभ और (४) विक्षेप।

श्रृंगार के अनुभव के समय विकास, वीर रस के अनुभव के समय विस्तार, वीभत्स की अनुभूति के समय क्षोभ तथा रौद्र-रस की अनुभूति में विक्षेपावस्था होती है। अतः इन चार रसों को प्रधान मानना चाहिए। अन्य चार इन्हीं से उत्पन्न होते हैं, ऐसा धनंजय का मत है—

---

१. सा० द० ६/३१७
२. ध्व० पृ० ३८७
३. ना शा० ६/३९

'स्वादः काव्यार्थसंभेदादात्मानन्दसमुद्भवः ।
विकासविस्तरक्षोभ विक्षेपैः स चतुर्विधः ।।
श्रृंगार वीर वीभत्स रौद्रेषु मनसः क्रमात्
हास्याद्भुतभयोत्कर्ष करुणानां त एव हि
अतस्तज्जन्यता तेषामत एवावधारणम्[1] ।।'

इन समस्त रसों में साहित्य की सुदीर्घ परम्परा में श्रृंगार को सर्वोपरि स्थान प्राप्त हुआ, संस्कृत में जितने भी महाकाव्य एवं नाटकादि का निर्माण हुआ है, प्रायः उन सभी में श्रृंगार एवं वीर को कवियों ने प्रधान रस के रूप में स्वीकार किया है, किन्तु रौद्र अथवा वीभत्स को प्रधान रस मानकर प्रायः काव्य-रचना नहीं की गयी है । हां, करुण को प्रधान रस मानकर अनेक कवि काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए हैं । शान्त रस को भी महत्व प्राप्त हुआ हैं । यहां तक किअनेक सुधी समीक्षक महाभारत को शान्त-रस प्रधान महाकाव्य ही मानते हैं—

"Anand Vardhan points out that the Rasa of the great Epic Mahabharat is Shanta[2]."

कतिपय आचार्य मूल रस किसी एक को ही मानते हैं, तथा अन्य रसों का उद्भव उसी से प्रतिपादित करते हैं । इस सम्बन्ध में चार आचार्यों के विचार अधिक महत्वपूर्ण हैं ।

भोज

आचार्य भोज के अनुसार श्रृंगार ही समस्त रसों में प्रधान रस है । वही सबका एकमात्र मूल है । रस के कारण ही कविता सरस बनती है, और इस रस को श्रृंगार कहा जाता है । इसका रूप अभिमान और अहंकार जैसा होता है—

'रसोऽभिमानोऽहंकारः श्रृंगार इति गीयते ।
योऽर्थस्तस्यान्वयात् काव्यं कमनीयत्वमश्नुते[3] ।।'

भरत

रस-सिद्धांत के प्रथम आचार्य भरत ने भी श्रृंगार रस की प्रधानता प्रतिपादित करते हुए कहा है—

'यत् किंचिल्लोके शुचि मेध्यं
दर्शनीयं वा तच्छृंगारेणोपमीयते[4] ।'

---

१. द० रू० ४/४३-४५
२. द नम्बर आफ रसाज, पृ० १७
३. स० कं० ५/१
४. ना० शा० पृ० ३००

अर्थात् संसार में जो कुछ दर्शनीय अर्थात् सुन्दर है, साथ ही पवित्र, उत्तम और उज्ज्वल है, वह श्रृंगार रस कहा जा सकेगा।

श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति अर्थात् प्रेम है, जो जन्म से ही न केवल मनुष्यों में अपितु प्राणीमात्र में विद्यमान रहता है। सर्वाधिक व्यापकता के कारण ही इसे रसराज की उपाधि से विभूषित किया गया है।

श्रृंगार की प्रधानता का एक प्रबल आधार यह भी है कि आचार्यों ने श्रृंगार रस का जितना विस्तृत विवेचन किया है उतना अन्य किसी भी रस का नहीं किया है।

विश्वनाथ

विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' में अपने प्रपितामह नारायण का उल्लेख करते हुए 'अद्भुत' रस की प्रधानता प्रतिपादित की है। अद्भुत रस की प्रधानता प्रतिपादित करते हुए नारायण पंडित ने कहा 'सर्वत्राप्यद्भुतो रसः' अर्थात् अद्भुत ही मूल और एकमात्र रस है। विश्वनाथ ने अपने पूर्ववर्ती विद्वान् धर्मदत्त के आधार पर कहा है—

'रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते,
तच्चमत्कार सारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतो रसः।
तस्माददद्भुतमेवाह कृती नारायणो रसम्[1]॥'

आचार्य विश्वनाथ ने अद्भुत रस की श्रेष्ठता का उल्लेख तो किया है, किन्तु वे स्वयं इसको प्रधान रस के रूप में स्वीकार करते प्रतीत नहीं होते हैं। दर्पणकार ने महाकाव्य का लक्षण निरूपित करते हुए श्रृंगार अथवा वीर को ही प्रधान रस माना है—

'एक एव भवेदंगी श्रृंगारः वीर एव वा[2]।'

अद्भुत रस को अंगी रस मानकर कोई काव्य-रचना भी नहीं हुई है।

अभिनव गुप्त

अभिनव ने शान्त रस को मूल रस मानकर इसकी प्रधानता निरूपित की है। वे अपना अभिमत इस प्रकार प्रकट करते हैं--

'स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद् भावः प्रवर्तते।
पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते[3]॥'

---

१. सा० द० पृ० ८२
२. सा० द० ६/१०
३. ना० शा० अभि०, पृ० १३३५

अभिनवगुप्त का विचार है कि शान्तरस का सम्बन्ध मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष से है, क्योंकि सभी प्रकार के काव्यों का आस्वादन अलौकिक तथा ब्रह्मा-स्वाद के समान होता है, शान्त रस इसको अभिव्यंजित करता है, अत: शान्त रस को ही सबसे प्रमुख रस मानना चाहिए ।

महाकवि भवभूति

भवभूति के अनुसार करुण ही एकमात्र रस है, उसी के आश्रय से विभिन्न रसों की अभिव्यक्ति होती हैं—

> 'एको रसः करुण एव निमित्त भेदाद्
> भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।
> आवर्त्तबुद्बुदतरंगमयान् विकारान्
> अम्भो यथा सलिलमेव ही तत्समस्तम्'[1] ।।'

रामायण का प्रधान रस

सभी विद्वान् समीक्षक एकमत से यह स्वीकार करते हैं कि रामायण का आत्मत्वाधायक तत्व रस है । आदिकवि ने विभिन्न प्रसंगों में प्रायः सभी रसों की योजना सुन्दर रूप में की है । किन्तु, इस महाकाव्य का प्रधान-रस किसे माना जाये यह विवाद का विषय है । प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने तथा कालिदास, भवभूति आदि महाकवियों ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से करुण-रस की प्रधानता प्रतिपादित की है ।

राम-कथा-साहित्य के कतिपय अध्येताओं ने रामायण को वीर-रस प्रधान महाकाव्य माना है । अपने मत की पुष्टि में उन्होंने जो तर्क दिए हैं । उनका सार इस प्रकार है ।

१. उत्तर-काण्ड प्रक्षिप्त है, अत: उत्तरकाण्ड की घटनाओं के आधार पर करुण-रस की प्रधानता नहीं मानी जा सकती ।
२. क्रौंचवध का प्रसंग भी संदिग्ध है और केवल उसके आधार पर करुण रस को प्रधान नहीं माना जा सकता ।
३. राम के एवं अधिकांश पात्रों के वीर चरित्र एवं रावण वध की घटना के आधार पर इसका प्रधान-रस वीर ही है ।
४. बालकाण्ड में यह उल्लेख किया गया है कि प्रारम्भ में इस महाकाव्य का नाम 'पौलस्त्य वध' रखा गया । इस आधार पर भी रामायण का प्रधान रस वीर को ही मानना चाहिए ।

---

१. उ० रा० च० ३/४७

५. भारतीय महाकाव्यों का विशेष अध्ययन करने वाले विद्वानों ने युग और वातावरण के आधार पर रामायण और महाभारत को वीर युग का प्रतिनिधि महाकाव्य माना है ।

६. रामायण में ऐतिहासिक तत्वों की प्रचुरता भी यही प्रकट करती है कि उसमें वीर-रस की प्रधानता है ।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने रामायण में शान्त रस को ही प्रधान माना है— 'रामायण में बाहुबल को नहीं, जिगीषा को नहीं, राष्ट्रगौरव को नहीं, केवल शान्त रसास्पद गृहस्थ धर्म को ही, करुणा के अश्रुजल से अभिषिक्त कर महान् शौर्य वीर्य के ऊपर प्रतिष्ठित किया है[1] ।'

यहां पर टैगौर ने काव्य शास्त्रीय दृष्टि से निरूपित शान्त रस को प्रधान नहीं माना है, अपितु समग्र महाकाव्य के अध्ययन से जो जीवनोपयोगी नैतिक शान्ति प्राप्त होती है, उसकी ओर संकेत किया है ।

कुछ विद्वान् रामायण में भक्ति रस की प्रधानता मानते हैं । इस विषय में के० आर० शास्त्री के विचार इस प्रकार हैं—

"We are in the *Ramayana* in a region where the *Karun-Rasa* reigns Supreme and is finally transcended and etherialized into Shanta-Rasa and Bhakti-Rasa[2]."

इस प्रकार रामायण में किसी ने करुण को तो किसी ने वीर, शान्त अथवा भक्ति रस को प्रधान रस माना है ।

अब विचारणीय हो जाता है कि, इन चार रसों में किस रस को रामायण का प्रधान रस माना जाए ।

शान्त अथवा भक्ति रस इस महाकाव्य के प्रधान रस कदापि नहीं माने जा सकते । शान्त अथवा भक्ति रस के पक्ष में कोई प्रबल आधार नहीं है तथा स्वयं वाल्मीकि ने भी कहीं ऐसा संकेत नहीं किया है ।

दूसरी बात यह है कि रामायण काल तक शान्त अथवा भक्ति रस का कोई सुनिश्चित स्वरूप प्राप्त नहीं होता है । ऐसी अवस्था में ये रस प्रधानता को प्राप्त नहीं कर सकते । हां, इतना अवश्य मानना होगा कि रामायण में यत्र-तत्र शान्त-रस की रमणीय योजना आदिकवि ने की है । साथ ही इस महाकाव्य में भक्ति का उज्ज्वल स्वरूप भी दृष्टिगोचर होता है ।

रसराज श्रृंगार भी इस महाकाव्य का प्रधान रस नहीं हो सकता, कारण यह किसी विलासी-कवि की रचना नहीं है अपितु शान्तातमा महर्षि की वाणी से करुणा-निधान राम के पावन-चरित का सहज उच्छलन है ।

---

१. प्राचीन साहित्य (हिन्दी अनुवाद), पृ० ७

२. स्टडीज इन रामायण, पृ० १२५

वीर-रस को प्रधान रस सिद्ध करने के लिए जो युक्तियां दी गई हैं, उनके आधार पर इस महाकाव्य का प्रधान रस वीर नहीं माना जा सकता । क्योंकि—

१. रामायण का उत्तर काण्ड प्रक्षिप्त है यह अद्यावधि विवादास्पद विषय है । सभी विद्वान इसको प्रक्षिप्त मानने के पक्ष में नहीं हैं । अतः इस काण्ड को प्रक्षिप्त मानकर करुण रस की प्रधानता को नकारा नहीं जा सकता ।
२. क्रौंचवध का प्रसंग संदिग्ध नहीं माना जा सकता, कारण कि, इसके लिए कोई स्पष्ट आधार नहीं दिया गया है तथा आनन्दवर्धनादि आचार्यों ने क्रौंचवध के प्रसंग को प्रामाणिक माना है ।
३. राम एवं अन्य पात्रों के वीरतापूर्ण कार्यों के आधार पर भी इसे वीर-रस प्रधान नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनकी वीरता करुणा से उद्‌बुद्ध है ।
४. ऐतिहासिक तत्वों की प्रचुरता होना कोई ऐसा आधार नहीं जो इस काव्य में वीर रस की प्रधानता प्रमाणित कर सके ।
५. विरही राम के हृदय में समय-समय पर युद्ध का उत्साह तरंगिता होता है, यह सत्य है, किन्तु इस उत्साह के मूल में भी करुणा ही है ।

राक्षसराज की कारा में वन्दिनी सीता को मुक्त कराना तथा असुरों के अत्याचारों से संत्रस्त वसुधा का उद्धार राम का मुख्य लक्ष्य है ।

प्रधान रस का निर्णय करते समय अन्तः साक्ष्य के अन्तर्गत हमें यह भी देखना होगा कि इस विषय में कवि का क्या मत है--

आदिकवि ने अपने महाकाव्य का प्रेरणा स्रोत करुणा को माना है । तमसा तट पर विचरण करते हुए महर्षि ने व्याध द्वारा कामासक्त क्रौंचयुगल में से नर पक्षी का निर्मम वध होते हुए देखा तो उनके शोकाकुल हृदय से ही मानो यह श्लोक फूट पड़ा था--

'मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्[1] ।।

महर्षि ने स्वयं अपने शिष्यों से कहा था—

'पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलय समन्वितः ।
शोकार्त्तस्य प्रवृतो मे श्लोको भवतु नान्यथा[2] ।।'

और वस्तुतः महर्षि के अन्तःकरण का यह शोक ही श्लोक रूप हो गया—

'शोकः श्लोकत्वमागतः[3] ।'

---

१. वा० रा० बालकाण्ड २/१५
२. वा० रा० बालकाण्ड २/१८
३. वा० रा० बालकाण्ड २/४०

बहि:साक्ष्य के अन्तर्गत अन्य काव्याचार्यों तथा विद्वान् समीक्षकों का भी यही विचार है।

आनन्दवर्धन ने रामायण में करुण रस की प्रधानता मानी है। ध्वनि-तत्व की विवेचना करते हुए वे इसकी पुष्टि इस प्रकार करते हैं—

'काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा,
क्रौंचद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः[1] ।'

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं—

'तथा चादिकवे वाल्मीकेर्निहतसहचरविरहकातरक्रौंच्याक्रन्दजनितः शोक एवं श्लोकतया परिणतः[2] ।'

दशरूपक में करुण रस की सुखात्मकता प्रतिपादित करते हुए धनिक ने अपनी टीका में रामायण को करुण रस प्रधान महाकाव्य माना है—

'यदि च लौकिककरुणवद् दुःखात्मकमेवेह स्यात्तदा न कश्चिद प्रवर्तेत, ततः करुणैकरसानां रामायणादिमहाप्रबन्धानामुच्छेद एव भवेत्[3] ।'

विश्वनाथ ने भी करुणादि रसों की सुखात्मकता निरुपित करते हुए रामायण का प्रधान रस करुण ही माना है। उनका मत है कि यदि करुणादि को दुःखात्मक मान लें, तब रामायणादि महान् काव्य अथवा नाट्य ग्रन्थों को दुःखदायी मानना होगा। रामायणादि काव्य-प्रबन्ध अथवा नाट्य-प्रबन्ध सबके लिए रसात्मक-आनन्द-निष्यन्दी प्रबन्ध हैं। इन प्रबन्धों का जो रस है, वह करुण है। अब यदि करुण को दुःखात्मक मान लिया जाये, तब तो यह भी मानना पड़ेगा कि, करुण रस प्रधान रामायणादि प्रबन्ध सहृदय सामाजिक के लिए दुःखात्मक प्रबन्ध हैं—

'करुणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम्,
सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम्।
किंच तेषु यदा दुःखं न कोऽपि स्यात्तदुन्मुखः
तधा रामायणादीनां भविता दुःखहेतुता[4] ॥'

महाकवि कालिदास ने भी आदि कवि की प्रेरणा का स्रोत शोक को मानते हुए प्रकारान्तर से रामायण को करुण रस प्रधान महाकाव्य माना है—

---

१. ध्व० १/५
२. ध्व० पृ० ३०
३. द० रू० ४/४४-४५ पर धनिक की टीका
४. सा० द० ३/४-५

'निषाद विद्याण्डज दर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः[१]।'

नाटककार भवभूति ने रामायण को करुण रस प्रधान महाकाव्य मानकर अभी के आधार पर करुण रस प्रधान नाटक 'उत्तररामचरितम्' की रचना की है।

विद्वान् चिन्तक के० आर० शास्त्री ने भी रामायण में करुण रस की प्रधानता अंगीकार की है—

"The other Rasas are found in the poem, yet its dominant Rasa is Karun-Rasa[2]."

काव्य के प्रारम्भ से अन्त तक जिसका विस्तार किया गया हो एवं अन्य सभी रस जिसको पुष्ट करते हों ऐसे रस को ही प्रधानता प्रदान की जा सकती है। इस दृष्टि से विचार करने पर भी करुण को ही इस महाकाव्य का प्रधान रस मानना होगा। संपूर्ण रामायणी-कथा करुण के क्रोड में ही क्रीडा करती हुई प्रतीत होती है। वीर, शृंगार आदि अन्य रसों की धारायें भी अन्ततोगत्वा करुण में ही विलीन हो जाती है।

रामायण के पात्र एक ओर वीरता के प्रतीक हैं, तो दूसरी ओर उनके हृदय करुणा से ओत-प्रोत हैं, सभी के अन्तः करण आंसुओं से गीले हैं। संभवतः इस काव्य का कोई पात्र ऐसा नहीं है, जो किसी न किसी अवसर पर जी भर कर न रोया हो। रामायण के अध्येता को सर्वत्र करुणा का साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है। करुणा कवि के अन्तःकरण की मूल भावना है, अतः करुण रस की योजना करते समय वह भाव-सरिता में डूब जाता है। ऐसे अवसरों पर वह चेतनाचेतन जगत् को शोकमय बना देता है।

जो विद्वान् केवल युद्ध काण्ड के आधार पर इस काव्य को वीर रस प्रधान मानते हैं, उनका मत कदापि ग्राह्य नहीं हो सकता। किसी भी काव्य के प्रधान रस का निर्णय उस रचना के एक अंग को आधार मानकर नहीं किया जा सकता, अपितु उस काव्य के समग्र कलेवर को दृष्टिपथ में रखकर ही करना होगा। और सम्पूर्ण रामायण का अध्ययन करने पर करुण ही इस महाकाव्य का प्रधान रस सिद्ध होता है।

रामायण में प्रधान रस निर्धारण करते समय यह भी ध्यातव्य हो जाता है कि, उस समय तक महाकाव्यादि की रचना का कोई शास्त्रीय-स्वरूप निर्धारित नहीं हुआ था, जिसको आधार मानकर महाकाव्य रूपी प्रासाद का निर्माण किया जाता। अतएव परवर्ती कालिदास, भवभूति आदि कवियों का प्रधान रस शृंगार, करुण आदि

---

१. रघुवंश १४/७०

२. स्टडीज इन रामायण, पृ० १२५, भाग २

जिस प्रकार स्पष्ट रूप से प्रतिभासित होता है, ऐसी स्थिति रामायण में करुण रस की नहीं है ।

इसका एक अन्य कारण यह भी है कि वाल्मीकि किसी शास्त्रीय मर्यादा में नियन्त्रित होकर काव्य रचना में प्रवृत्त नहीं हुए, अपितु वे स्वतंत्र रूप से प्रसंगानुकूल रस, अलंकार आदि का प्रयोग करते हैं ।

यद्यपि, रामायण में प्रधान रस का अधिकारी कौन है ? इस प्रश्न का उपस्थित होना ही, यह सिद्ध करता है कि, कवि ने करुण एवं अन्य वीरादि रसों की योजना में इतना स्पष्ट अन्तर नहीं किया है कि इसे तत्क्षण करुण रस प्रधान महाकाव्य घोषित किया जा सके ।

तथापि उपर्युक्त युक्तियों, अन्तःसाक्ष्यों एवं बहिःसाक्ष्यों से यह सिद्ध हो जाता है कि 'करुण रस' ही इस महाकाव्य का प्रधान रस है, वही इसका प्राण है और सर्वस्व है ।

———

चतुर्थ अध्याय

वाल्मीकि-रामायण में प्रधान-रस का चित्रण

वाल्मीकि-रामायण में करुण-रस

महर्षि वाल्मीकि की प्रेरणा का मूल आधार उनकी करुणा है, जो न केवल मनुष्यों अपितु पशु-पक्षियों तक के लिए उन्मुक्त रही है, यदि वाल्मीकि को करुणा की प्रतिमूर्ति कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। तमसा तट पर विचरण करने वाले तपःपूत महर्षि ने कामासक्त क्रौंचमिथुन में पुरुष का व्याध द्वारा निर्मम वध होते देखा तो उनका शोक-संविग्न हृदय ही मानों श्लोक रूप में फूट पड़ा। अभिव्यक्ति और करुणा ने महर्षि को कवि बना दिया[1]।

आदिकवि के हृदय की मार्मिक करुणा सम्पूर्ण रामायण में ओत-प्रोत है। उनकी करुण-प्रकृति के अनुकूल ही उनको काव्य सृजन के लिए उपयुक्त कथानक मिला। कवि की अन्तःकरण की करुणा में रामकथा शोकाकुला एवं शोकमूला बन गई। कवि को जहाँ कहीं ऐसा प्रसंग उपलब्ध हुआ, उस प्रसंग में करुण रस का पूर्ण तन्मयता के साथ हृदयग्राही चित्रण किया है।

वाल्मीकि ने करुण रस के चित्रण में धननाश आदि का वर्णन प्रायः नहीं किया है, क्योंकि भारतीय मनीषा ने भौतिक सम्पदा की कभी विशेष चिन्ता नहीं की। आदिकवि ने करुण रस के धर्मोपघातज, शोककृत अथवा इष्टनाश एवं प्रिय-बन्धु-बान्धव के वियोग का सांगोपांग चित्रण किया है।

वाल्मीकि-रामायण के प्रिय-बन्धु-बान्धव-वियोग एवं इष्टनाश के प्रसंगों को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है—

१. रामवनवास-प्रसंग तथा दशरथ-मरण।
२. सीता-हरण तथा राम-विलाप।
३. अशोक वाटिका में स्थित सीता की करुण-दशा।
४. रावण द्वारा माया से प्रदर्शित राम के कटे सिर को देखकर सीता का विलाप।
५. माया-रचित सीता के वध पर राम का दुःख एवं शोक।

---

१. 'काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौंचद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥' —ध्व० १/५

६. लक्ष्मण-शक्ति ।
७. सीता-निर्वासन ।

विपक्षी पात्रों में शोकानुभूति

१. वालि-वध
२. कुंभकर्ण-मेघनाद-वध पर रावण-विलाप ।
३. रावण-वध पर विभीषण तथा मंदोदरी का विलाप ।

राम-वनवास की मुख्य घटना दशरथ की मृत्यु है । वियोग की यह आत्यंतिक असाधारण दशा है । राम के वनगमन के प्रसंग में करुण-रस का संचारी भाव 'विषाद' अति विस्तृत होकर शोक की सीमाओं का स्पर्श करता है और वह दशरथ की मृत्यु के रूप में उपस्थित होने वाले करुण रस की पृष्ठभूमि बनकर उसे अत्यन्त मार्मिक बना देता है ।

वाल्मीकि रामायण में रस-योजना का विस्तृत अध्ययन करते समय हमें विशेष रूप से इस तथ्य को स्वीकार कर चलना होगा कि रामायण की रचना से पूर्व काव्य शास्त्र का कोई सुनिश्चित नियमबद्ध शास्त्रीय स्वरूप नहीं था तथा वाल्मीकि केवल उच्चकोटि के कवि ही नहीं थे अपितु वे तत्वद्रष्टा महर्षि भी थे । उनकी वाणी शास्त्रीय सीमाओं में बंधकर रह नहीं सकती थी ।

कवि के रस प्रयोग में मनोवैज्ञानिक तत्वों का संकलन तथा संघठन है । इसी विशेषता के कारण दशरथ-मरण की असाधारण घटना स्वाभाविक प्रतीत होने लगती है । राम-वियोग में दशरथ-मरण को स्वाभाविक एवं सहज सिद्ध करने के लिए कवि को विशेष प्रयत्न करना पड़ा है । महाकवि ने दशरथ की शोकानुभूति के क्रमिक विकास का, आशा-निराशागत विभिन्न भावोर्मियों का, और वेदना के विकसित हो जाने के साथ ही अंधशाप की स्मृति के कारण जीवन-शक्ति को क्षीण करने के लिए घातक संवेदनों की योजना करके इस प्रसंग में स्वाभाविकता का समावेश कर दिया है ।

कैकेयी द्वारा याचित वरदान को सुनकर तरुणीवशगत वृद्ध महाराज जो अनुनय-विनय करते हैं, उनकी विवशता, शारीरिक शिथिलता तथा जीवन शक्ति की क्षीणता के प्रति कवि पहले ही संकेत कर देता है जो इस प्रसंग की पृष्ठभूमि बन जाती है ।

कैकेयी द्वारा वर मांगने पर दशरथ का शोक

कैकेयी द्वारा राम को वन भेजने के लिए वर-याचना करने पर दशरथ गिड़गिड़ाते हुए हाथ-पैर जोड़कर प्रार्थना करते हैं । वे अपने आपको परम विवश अनुभव करते हैं । उनको जीवन की आशा नहीं रही है तथा उनकी दशा शोचनीय है, वे कहते हैं—

'ममवृद्धस्य कैकेयी गतान्तस्य तपस्विनः ।
दीनं लालप्यमानस्य कारुण्यं कर्तुमर्हसि ॥' --अयो० का० १२/३४

'अंजलिं कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते ।
शरणं भव रामस्य माऽधर्मो मामिह स्पृशेत् ॥' —अयो० का० १२/३६

'इति दुःखाधिसन्तप्तं विलपन्तमचेतनम् ।
घूर्णमानं महाराजं शोकेन समभिप्लुतम् ॥' —अयो० का० १२/३७

यहां पर कैकेयी द्वारा राम को वन भेजने के लिए वर की याचना आलम्बन-विभाव है। राजा दशरथ की वृद्धावस्था उद्दीपन विभाव है। तरुणीवशगत राजा का दीन-भाव से कैकेयी के सम्मुख गिड़गिड़ाना, हाथ-जोड़ना, चरण-स्पर्श करना, करुण विलाप तथा मूर्च्छित हो जाना आदि अनुभाव है। निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, मोह, विषाद आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट दशरथ गत 'शोक' स्थायी भाव व्यंग्य है।

राम के प्रति उनका अगाध प्रेम है किन्तु प्रतिज्ञा भंग के प्रति वे परमभीरू भी हैं। उनकी शारीरिक दशा अतिक्षीण है, इसलिए वे अचेत हो जाते हैं। जब वे कैकेयी से अनुनय-विनयपूर्वक बार-बार पूछकर निश्चय कर लेते हैं कि वह वास्तव में ऐसा ही वरदान मांग रही है अथवा केवल हँसी कर रही है, कैकेयी अपने निश्चय को पुनः प्रकट करती हैं और साथ में शपथ खाकर अपने भयंकर निश्चय को कठोर वास्तविकता के रूप मे प्रकट करती है। तब तो महाराज दशरथ अपनी असहायावस्था में बिलख उठते हैं और राजा दशरथ की अतिकरुणापूर्ण दशा का चित्रण कवि मार्मिक शब्दों में करता है—

'स देव्या व्यवसायं च घोरं च शपथं कृतम् ।
ध्यात्वा रामेति निःश्वस्य छिन्नस्तरुरिवापतत् ॥'
'नष्टचित्तो यथोन्मत्तो विपरीतो यथाऽऽतुरः ।
हृततेजा यथा सर्पो बभूव जगतीपतिः ॥'
—अयो० का० १२/५४-५५

यहाँ पर भी कैकेयी के वर से राम का वनगमन आलम्बन विभाव है, दशरथ की वृद्धावस्था के साथ-साथ राम के प्रति उनका असाधारण प्रेम उद्दीपन विभाव है। तथा 'हा राम' कहकर दीर्घश्वास लेते हुए वृक्ष की भांति राजा का पृथ्वी पर गिर जाना, चेतना का लुप्त हो जाना, उन्मादग्रस्त-सा प्रतीत होना, प्रकृति का विपरीत सा हो जाना और और रुग्णवत् जान पड़ना, अथवा जिसका तेज हर लिया गया हो ऐसे सर्प के समान दिखाई देना अनुभाव हैं। इस प्रकार निर्वेद, मोह, विषाद आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट होकर राजा दशरथ-गत 'शोक' स्थायी भाव करुण-रस की सरिता प्रवाहित कर रहा है।

उस समय राजा दशरथ को समस्त संसार शोक-सागर में डूबा हुआ प्रतीत हो रहा था। राजा के विलाप करते-करते ही सूर्य देव अस्ताचल को चले गए और रात्रि का आगमन हो गया। गगनमण्डल तारावली से देदीप्यमान हो उठा, किन्तु चारुचन्द्रिका का आलोक राजा को उल्लसित न कर सका। वह रात्रि उनके लिए अमृतवर्षिणी न होकर काल-रात्रि बनकर आयी थी। वे नक्षत्र मालाओं से सुशोभित रजनी को सम्बोधित करते हुए अपने मन की व्यथा इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

'विललापार्त्तवद् दुःखं गगनासक्तलोचनः।
न प्रभातं त्वयेच्छामि निशे नक्षत्रभूषिते ॥' —अयो० का० १३/१७

राजा दशरथ ने पुनः कैकेयी से विनम्र प्रार्थना की कि वह ऐसा कठोर कर्म उनसे न कराये, किन्तु कैकेयी अपने निश्चय से तनिक भी विचलित नहीं हुई और दशरथ पुनः मूर्च्छित हो गए—

'ततः स राजा पुनरेव मूर्च्छितः प्रियामतुष्टां प्रतिकूलभाषिणीम्।
समीक्ष्य पुत्रस्य निवासनं प्रति, क्षितौ विसंज्ञो निपपात दुःखितः ॥
—अयो० का० १३/२५

इस समय राम को बुलाया गया। महाराजा दशरथ वेदना तथा आत्म-ग्लानि से पीड़ित थे। अतएव वे अपने नेत्रों से राम को देखने का साहस न कर सके ना ही कुछ बोल सके। अश्रुपूर्ण नेत्र महाराज दशरथ के मुख से केवल 'राम' शब्द निकला—

'रामेत्युक्त्वा तु वचनं वाष्पपर्याकुलेक्षणः।
शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम् ॥' —अयो० का० १८/३

कवि ने मानस की सूक्ष्म अनुभूतियों की ओर संकेत करते हुए इस प्रसंग को मर्मस्पर्शी बना दिया है। अनेक अनुभावों का वर्णन करके इस प्रसंग की गंभीरता पर प्रकाश डाला है—

'इन्द्रियैरप्रहृष्टैस्तं शोकसन्तापकर्शितम्।
निःश्वसन्तं महाराजं व्यथिताकुलचेतसम् ॥
ऊर्मिमालिनमक्षोभ्यं क्षुभ्यन्तमिव सागरम्।
उपप्लुतमिवादित्यमुक्तानृतमृषिं यथा ॥' —अयो० का० १८/५-६
'तथाश्वासय ह्रीमन्तं किं त्विदं यन्महीपति।
वसुधासक्तनयनो मन्दमश्रूणि मुंचति ॥' —अयो० का० १६/६

यहां पर कवि ने राजा को इन्द्रियों में प्रसन्नता न होना, शोक और सन्ताप से दुर्बल हो जाना, बार-बार दीर्घ निश्वास छोड़ना, पृथ्वी की ओर दृष्टि किए हुए धीरे-धीरे नेत्रों से अश्रु प्रवाहित करना आदि अनुभावों की योजना करके राजा दशरथ के हृदय में स्थित शोक की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। यहां हृदय के मर्म-

स्थलों को स्पर्श करने वाला एक और प्रसंग है––

राम कैकेयी से पूछते हैं कि यह तो बताइए कि महाराज इस प्रकार नीची गर्दन किए आंसू क्यों बहा रहे हैं ? इसके उत्तर में कैकेयी जब यह कहती हैं कि राम! जब तक तुम वन को प्रस्थान न करोगे, तब तक महाराज इसी प्रकार बैठे रहेंगे, न स्नान करेंगे और न भोजन ग्रहण करेंगे––

'यावत्त्वं न वनं यातः पुरादस्मादतित्वरम् ।
पिता तावन्न ते राम स्नास्यते भोक्ष्यतेऽपि वा ॥'

—अयो० का० १६/१६

कैकेयी के इस कथन से स्पष्ट प्रतीत होने लगता है कि कैकेयी से अधिक राम-बनवास के लिए महाराज की सहमति एवं इच्छा ही नहीं प्रत्युत वे इसके लिए कृतनिश्चय भी हैं और जब तक यह कार्य नहीं होता तब तक वे इसी प्रकार सत्याग्रह किए बैठे रहेंगे ।

वे निष्पाप और निरीह हैं तथा उनके मत्थे उन्हीं के समक्ष यह घोर पाप एवं कलंक मढ़ा जाये, उस समय जबकि वे अपनी दीन-दशा एवं मानसिक असह्य वेदना के कारण इसका विरोध करने में भी असमर्थ हों । महाराज दशरथ इस हृदय-विदारक उत्तर को सुनकर 'हा धिक् ।' कहकर दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए मूर्च्छित होकर पलंग पर गिर पड़े —

'धिक्कष्टमिति निःश्वस्य राजा शोकपरिलुप्तः ।
मूर्च्छितो न्यपतत् तस्मिन् पर्यं के हेमभूषिते ॥'

—अयो० का० १६/१७

यहां पर आदिकवि ने अपनी कला-कुशलता के द्वारा महाराजा दशरथ के मुख से केवल 'हा धिक् ।' इस शब्द का उच्चारण कराकर राम को वन भेजने का जो उत्तरदायित्व दशरथ के मत्थे मढ़ा जा रहा था, उस घृणित षडयन्त्र से मुक्त कर देने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है ।

इसी अवसर पर इस दारुण दुःख का एक और रूप प्रकट होता है, जब राम कैकेयी से कहते हैं कि तुम ऐसा प्रयत्न करना जिससे भरत इस राज्य का पालन और पिताजी की सेवा करते रहें, क्योंकि यही सनातन धर्म है । महाराज दशरथ के मानस की कल्पना कीजिए । वह राम को वनवास दे रहे हैं और राम वन जाते हुए भी उनकी कुशलक्षेम एवं सेवा-शुश्रूषा के लिए लालायित एवं प्रयत्नशील हैं । इस स्थिति में महाराज कुछ बोल नहीं पाते हैं और फूट-फूटकर रोने लगते हैं ।

तत्पश्चात् जब पुरुषसिंह राम हाथ जोड़े हुए कैकेयी के महल से बाहर निकलते हैं तो अन्तःपुर में रहने वाली राजमहिलाएं आर्तनाद करने लगती हैं । रानियों के विलाप का वर्णन करते हुए आदि कवि वाल्मीकि कहते हैं—

'इति सर्वा महिष्यस्ताविवत्साइव धेनवः ।
पतिमाचुक्रुशुश्चापि सस्वनं चापि चुक्रुशुः ।।' —अयो० का० २०/६

यहाँ परवनगमन के लिए तत्पर राम आलम्बन विभाव हैं। कैकेयी के हृदय में किंचिन्मात्र भी परिवर्तन न होना तथा दशरथ का किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर मूर्च्छित हो जाना उद्दीपन विभाव है। रानियों का अपने पति को कोसना, तथा बछड़ों से विछड़ी हुई गौओं के समान उच्चस्वर से करुण क्रन्दन करना अनुभाव है, संचारी भावों से परिपुष्ट रानियों के हृदयों में स्थित शोक स्थायी-भाव व्यंग्य है।

राम के वनगमन का वृतान्त सुनकर कौसल्या का शोक

जब राम को राजतिलक के स्थान पर वनवास की आज्ञा का मर्मभेदक वृत्तान्त माता कौसल्या सुनती हैं तो उनका पुत्रवत्सल हृदय हाहाकार कर उठता है। यहाँ सौतेली माता तथा सौतिया-डाह के प्रसंग विशेष रूप से दर्शनीय हैं, जिनके सन्दर्भ में माता कौसल्या का शोक पारिवारिक कटुता एवं विषमता के कारण मर्मभेदी वास्तविकता का उद्‌घाटन करता है।

राम माता कौसल्या से कहते हैं कि 'मैं चौदह वर्षों तक निर्जन वन में रहूगा और जंगल में सुलभ होने वाले वल्कल आदि को धारण करके फल-फूल के आहार से ही जीवन-निर्वाह करता रहूंगा।'

इस दुःखद समाचार से हुई कौसल्या की अवस्था का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

'सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने ।
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता ।।' —अयो० का० २०/३२

यहां पर माता कौसल्या के शोक सन्तप्त होकर पृथ्वी पर गिरने की तुलना फरसे से कटी हुई शाल वृक्ष की शाखा से तथा स्वर्ग से भूतल पर गिरी हुई देवांगना से करके कवि ने मातृ हृदय की शोकातिशयता को अभिव्यक्त किया है।

यहाँ ये अनुभाव स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। जब हम देखते हैं कि माता कौसल्या की आशा, प्रयत्न, हर्ष, उल्लास एवं उत्साह के विपरीत इनको घोर निराशा का समाचार सुनने को मिला। कहां वह राजतिलक की तैयारी कर रही थीं और प्रतीक्षा कर रही थी कि वह आज अपने पुत्र को राजसिंहासन पर सुशोभित देखेंगी और कहाँ उनको सुनने को मिला कि उनका यशस्वी पुत्र वन को जा रहा है। माता कौसल्या का शोक, आत्म-ग्लानि तथा भविष्य की कटु परिस्थितियों की चिन्ता में प्रकट होता है—

'यदि पुत्र न जायेथा मम शोकाय राघव ।
न स्म दुःखमतो भूयः पश्येयमहमप्रजाः ।।

एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः।
अप्रजास्मीति संतापो न ह्यन्यःपुत्र विद्यते ॥'

—अयो० का० २०/३६-३७

यदि राम का जन्म न हुआ होता तो कौसल्या को इस एक ही बात का दुःख रहता कि वह वन्ध्या है, किन्तु इस प्रकार की घोर व्यथा वन्ध्या होने पर न सहनी पड़ती।

वन्ध्या को एक मानसिक शोक होता है। उसके मन में यह सन्ताप बना रहता है कि मेरी कोई सन्तान नहीं है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई दुःख उसे नहीं होता। पति के प्रभुत्वकाल में एक ज्येष्ठ पत्नी को जो सम्मान कल्याण या सुख प्राप्त होना चाहिए वह माता कौसल्या को कभी नहीं देखने को मिला और अब तो बड़ी रानी होकर भी उन्हें अपनी बातों से हृदय को विदीर्ण कर देने वाली छोटी सपत्नियों के बहुत से अप्रिय वचन सुनने पड़ेंगे। यह सोचकर उनका हृदय दुःखित हो रहा है। स्त्रियों के लिए इससे बढ़कर महान् दुःख और क्या होगा, अतः माँ कौसल्या का शोक और विलाप ऐसा है, जिसका कहीं अन्त नहीं है—

'न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं व पति पौरुषे।
अपि पुत्रे विपश्येयमिति रामास्थितं भया॥'

—अयो० का० २०/३८

'अतो दुःखतरं किं नु प्रमदानां भविष्यति।
मम शोको विलापश्च यादृशोऽयमनन्तकः॥'

—अयो० का० २०/४०

माता कौसल्या फलस्वरूप मृत्यु की कामना करती हैं और मृत्यु न मिलने पर आत्मग्लानि से कातर होकर कह उठती हैं—

'स्थिरं नु हृदयं मन्ये ममेदं यन्न दीर्यते।
प्रावृषीव महानद्याः स्पृष्टं कूलं नवासम्भा॥
ममैव नूनं मरणं न विद्यते, न चावकाशोऽस्ति यमक्षये मम।
यदन्तकोऽद्यैव न मां जिहीर्षति प्रसह्य सिंहो रुदतीं मृगीमिव॥
स्थिरं हि नूनं हृदयं ममायसं, न भिद्यते यत् भुवि नो विदीर्यते।
अनेन दुःखेन च देहमर्पितं ध्रुवं ह्यकाले मरणं न विद्यते॥'

—अयो० का० २०/४९-५१

कौसल्या के मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द उनके हृदय की व्यथा-कथा की मार्मिक अभिव्यक्ति कर रहा है।

यहाँ पर राम आलम्बन विभाव है। वनगमन की आज्ञा उद्दीपन विभाव है। माता कौसल्या द्वारा अपने हृदय को लोहे के समान कठोर कहकर स्वयं अपनी भर्त्सना

करना, तथा मृत्यु की अलिभाषा करना अनुभाव हैं। निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, विषाद आदि संचारी भावों से परिपुष्ट कौसल्या के हृदय में स्थित शोक स्थायी भाव व्यंग्य है।

आने वाले भारी दुःख को सहने में असमर्थ हो महान् संकट का विचार करके सत्य के ध्यान में बंधे हुए पुत्र की ओर देखकर माता कौसल्या उस समय बहुत विलाप करने लगती हैं, मानो कोई किन्नरी अपने पुत्र को बन्धन में पड़ा हुआ देखकर बिलख रही हो—

'भृशमसुखममर्षिता तदा बहु, विललाप समीक्ष्य राघवम्।
व्यसनमुपनिशम्य सा महत् सुतमिव बद्धमवेक्ष्य किन्नरी॥'
—अयो० का० २०/५५

वनगमन से पूर्व राम, लक्ष्मण एवं सीता का वल्कल वस्त्र धारण करना करुणा का अत्यन्त मार्मिक प्रसंग है।

कैकेयी लज्जा त्यागकर बहुत से चीर ले आती है और जनसमूह में ही राम से धारण करने को कहती है उनकी आज्ञा पाकर राम-लक्ष्मण तपस्वियों से वल्कल वस्त्र अपने पिता के समक्ष धारण करते हैं। उस समय सदैव रेशमी वस्त्र धारण करने वाली कोमलांगी जानकी वल्कल वस्त्रों को देखकर उसी प्रकार भयभीत होती है जैसे मृगी बिछे हुए जाल को देखकर भयभीत हो जाती है। उनके नेत्रों में आंसू भर आते हैं और वे अपने पति राम से पूछती हैं—

'कथं नु चीरं बध्नन्ति मुनयो वनवासिनः।' —अयो० का० ३७/१२

इस एक ही वाक्य में सीता के हृदय में शोक का सागर किस तरह लहराता हुआ दिखाई देता है। सीता वल्कल वस्त्र कैसे धारण किये जाते हैं, इससे सर्वथा अनभिज्ञ थीं, वे बार-बार उन वस्त्रों को धारण करने का प्रयत्न करती हैं, किन्तु सफल नहीं हो पाती, तब धर्मात्मा राम स्वयं अपने हाथों से उनके रेशमी वस्त्रों के ऊपर वल्कल वस्त्र बांधते हैं। इस मर्मस्पर्शी दृश्य को देखकर अन्तःपुर की रमणियों के नेत्रों में अश्रु छलछला उठते हैं।

क्या कभी किसी ने स्वप्न में भी यह कल्पना की होगी कि जनक की पुत्री, पराक्रमी राजा दशरथ की पुत्रवधू एवं वीर राम की भार्या के जीवन में भी ऐसा दारुण प्रसंग उपस्थित हो सकता है? यहां पर करुण रस की सरिता उद्दाम रूप में प्रवाहित हो रही है।

माता कौसल्या की स्थिति तथा उनके भविष्य के सम्बन्ध में राम का अन्तःकरण पूर्व से ही चिन्तित था। अब माता द्वारा स्पष्ट कहने पर उनकी यह चिन्ता और प्रबल हो गयी। उन्होंने इसीलिए महाराज से बार-बार माता कौसल्या का ध्यान रखने की प्रार्थना की—

'पुत्रशोकं यथानर्च्छेत् त्वया पूज्येन पूजिता ।
मां हि संचिन्तयन्ती सा त्वयि जीवेत् तपस्विनी ।।'

—अयो० का० ३८/१६

इन वचनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि राम को वन में प्राप्त होने वाले कष्टों की कोई चिन्ता न थी, राज्य प्राप्ति न होने का कोई विशेष दुःख न था, किन्तु अपनी जन्मदात्री को भविष्य में प्राप्त होने वाले दुःखों की कल्पना से उनका हृदय शोकाकुल अवश्य था ।

महाराज दशरथ बहुपत्नी-प्रथा के दोषों को समझते थे और अपने घर में उत्पन्न विषम परिस्थिति का अनुभव भी करते थे । राम की प्रार्थना ने मानों उनकी दुःखाग्नि को प्रज्वलित कर दिया और वे अपनी विवशता में तिलमिला उठे । वे राम के इन वचनों को सुनकर मूर्च्छित हो गए । राम की ओर देखने अथवा कुछ कहने का उनको साहस न हो सका । आदिकवि ने इस प्रकार महाराज दशरथ की अति स्वाभाविक मानसिक दशा का चित्रण किया है । जब कोई भी मानव इस प्रकार की वेदना से ग्रस्त होता है तो वह सन्तोष-प्राप्ति के लिए या तो पूर्व कर्मों को स्मरण करता है अथवा भाग्य को ही दुःख का कारण समझने लगता है । महाराजा दशरथ की भी यही मानसिक दशा है । वे इस भयावह परिस्थिति का कारण पूर्वकृत कर्मों को मानते हुए कहते हैं—

'मन्ये खलु मया पूर्वं विवत्सा बहवः कृताः ।
प्राणिनो हिंसिता वापि तन्मामिदमुपन्यस्तम् ।।'

—अयो० का० ३९/३

राजा दशरथ के पश्चातापपूर्ण इन शब्दों में उनके हृदय में विद्यमान शोक की मार्मिक अभिव्यक्ति हो रही है ।

राम ने अपनी माताओं के समक्ष हाथ जोड़ कर कभी भूल से कहे गये कठोर वचनों के लिए तथा अनजाने में हुए अपराधों के लिए क्षमायाचना की और वनप्रस्थान के लिए विदा मांगी तो सबके अन्तःकरण शोक-संविग्न हो गए—

'जज्ञेऽथ तासां संनादः क्रौंचीनामिव निःस्वनः ।
मानवेन्द्रस्य भार्याणामेवं वदति राघवे ।।
मुरजपणव मेघघोषवद्, दशरथवेश्म बभूव यत् पुरा ।
विलपित परिदेवनाकुलं व्यसनगतं तदभूत सुदुःखितम् ।।'

—अयो० का० ३९/४०-४१

राम वन को चले तो उनके साथ अयोध्या के नर-नारी भी चल दिये । राम के रथ के पीछे क्या बालक, क्या बूढ़े और क्या युवक सभी दौड़ने लगे । अपनी

रानियों से घिरे राजा दशरथ अत्यन्त दीन होकर 'प्रियं पुत्रं द्रक्ष्यामि' ऐसा कहते हुए महल से बाहर निकल आये। उस समय विलाप करती हुई स्त्रियों के आर्त्तनाद से सम्पूर्ण वातावरण शोकमय हो गया—

'शुश्रुवे चाग्रतः स्त्रीणां रुदतीनां महास्वनः।
यथा नादः करेणूनां बद्धे महति कुंजरे ॥' —अयो० का० ४०/२९

अयोध्या के समस्त नगरवासी राम के प्रयाण के समय हाहाकार करते हुए किं कर्त्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं। पुरवासियों के नेत्रों से गिरे हुए आंसुओं द्वारा भीगकर धरती की उड़ती हुई धूल शान्त हो जाती है—

'निर्गच्छति महाबाहौ रामे पौरजनाश्रुभिः।
पतितैरभ्यवहितं प्रणनाश महीरजः ॥' —अयो० का० ४०/३३

महाराज दशरथ नगरवासियों को अति दुःखी देखकर जड़ से कटे हुए पेड़ की भांति भूमि पर गिर पड़ते हैं—

'दृष्ट्वा तु नृपतिः श्रीमानेकचित्तगतं पुरम्।
निपपातैव दुःखेन कृत्तमूल इव द्रुमः ॥' —अयो० का० ४०/३६

यहाँ पर पुरवासियों द्वारा अपने अश्रुकणों से वसुधा की धूल को शान्तकर देने, हाहाकार करते हुए अचेत हो जाने तथा राजा दशरथ के जड़ से कटे हुए पादप के समान पृथ्वी पर गिर जाने आदि अनुभावों से नगरवासियों तथा राजा के हृदय में विद्यमान शोक की सशक्त अभिव्यंजना हो रही है।

राम के अयोध्या से विदा हो जाने पर रानियां पुनः-पुनः दुःखार्त्त होकर रोती हैं और उच्च स्वर से करुण-क्रन्दन करती हैं—

'इति सर्वा महिष्यस्ता विवत्सा इव धेनवः।
रुरुदुश्चैव दुःखार्त्ताः सस्वरं च विचुक्रुशुः ॥' —अयो० का० ४१/७

आदिकवि ने अपने बछड़ों से बिछुड़ी हुई दुःखी गौओं से रानियों की तुलना करके करुण रस की मार्मिक अभिव्यक्ति की है—

राम वियोग का व्यापक प्रभाव न केवल चेतन जगत् में अपितु अचेतन संसार में भी दृष्टिगोचर हो रहा है—

'नाग्निहोत्राण्यहूयन्त नापचन् गृहमेधिनः।
अकुर्वन् न प्रजाः कार्यं सूर्यश्चान्तरधीयत ॥
व्यसृजन् कवलान् नागा गावो वत्सान् न पाययन्।
पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाभ्यनन्दत ॥'
—अयो० का० ४१/९-१०

'नक्षत्राणि गतार्चींषि ग्रहाश्च गततेजसः ।
विशाखाश्च सधूमाश्च नभसि प्रचकाशिरे ॥
कालिकानिल बेगेन महोदधिरिवोत्थितः ।
रामे वनं प्रव्रजिते नगरं प्रचचार तत् ।
दिशः पर्याकुलाः सर्वास्तिमिरेणेव संवृताः ।
न ग्रहो नापि नक्षत्रं प्रचकाशे न किंचन ॥'
अयो० ४१/१२, १३, १४

'वाष्पपर्याकुलमुखो राजमार्गगतो जनः ।
न हृष्टो लभ्यते कश्चित् सर्वः शोकपरायणः ॥
न वाति पवनः शीतो न शशी सौम्यदर्शनः ।
न सूर्यस्तपते लोकं सर्वं पर्याकुलं जगत् ॥'
'अयो० ४१/१७-१८

आदिकवि ने इस प्रसंग में चराचर जगत् में व्याप्त शोक के प्रभाव का अत्यन्त मार्मिक एवं विस्तार से वर्णन किया है । यहाँ पर महाकवि भवभूति की यह उक्ति चरितार्थ होती हुई दिखाई देती है—

'अपि ग्रावा रोदित्यपि च दलति वज्रस्य हृदयम्'[1] ।'

अग्निहोत्रों का बन्द हो जाना, गृहस्थियों का भोजन न पकाना, हाथियों द्वारा मुख में ग्रहण किया हुआ चारा उगल देना, गौओं का अपने बछड़ों को दूध न पिलाना, प्रथम पुत्र-जन्म पर माताओं का हर्षित न होना, नक्षत्रों की कान्ति का निस्तेज हो जाना, समस्त नगर का प्रकम्पित हो उठना, सर्वत्र अन्धकार का व्याप्त हो जाना, प्रत्येक मनुष्य का मुख आंसुओं से भीग जाना, शीतल वायु का अवरुद्ध होना, चन्द्रमा की सौम्यता का नष्ट हो जाना, सूर्य का प्रकाश भी कम हो जाना आदि ऐसे अनुभावों की कवि ने योजना की है कि धरती का कोना-कोना शोकमय प्रतीत होता है । यहां पर करुण रस की योजना में कवि को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है ।

राम के वनगमन पर दशरथ का शोक

महाराज दशरथ राम के रथ पर दृष्टि लगाये हुए उसको एकटक देख रहे थे । उन्होंने उस ओर से उस समय तक आंख न फेरी जब तक रथ ओझल न हो गया, किन्तु जब राजा को राम के रथ की धूल भी नहीं दिखाई दी, तब वे परम निराश हो गए और अति आर्त्त और विकल होकर भूमि पर गिर पड़े ।

---

१. उ० रा० च० १/२८

उनकी इस व्यथा में राम सीता और लक्ष्मण के वन के कष्टों के चित्र उनके मानस में सजीव हो उठे। उनका हृदय हाहाकार कर उठा। वे सोचने लगे—

जो मेरे श्रेष्ठ पुत्र राम चन्दन-चर्चित उपधान का आश्रय लेकर उत्तम शय्याओं पर सुख से सोते थे और उत्तम अलंकारों से विभूषित स्त्रियां जिन्हें व्यंजन डुलाती थीं, उन्हें अब वृक्ष के मूल का आश्रय लेना पड़ेगा और किसी काष्ठ या पत्थर पर सिर रखकर सोना पड़ेगा, यह सोच-सोचकर महाराजा दशरथ के हृदय का शोक उद्दीप्त हो रहा है—

'यः सुखेनोपधानेषु शेते चन्दनरुषितः।
वीज्यमानो महार्हाभिः स्त्रीभिर्मम सुतोत्तमः॥
स नूनं क्वचिदेवाद्य वृक्षमूलमुपाश्रितः।
काष्ठं वा यदि वाश्मानमुपधाय शयिष्यते॥'
—अयो० का० ४२/१५, १६

जहां वन में राम को प्राप्त होने वाले कठोर कष्टों की संभावना से दशरथ का हृदय शोकाकुल है, वहां अपनी प्रिय पुत्रवधू सीता को, जो सदा सुन्दर राजमहलों में ही रहने योग्य है, उनके दारुण दुःख की कल्पना से भी राजा दशरथ व्याकुल हो जाते हैं—

'सा नूनं जनकस्येष्टा सुता सुखसदोचिता।
कण्टकाक्रमणक्लान्ता वनमद्य गमिष्यति॥' —अयो० का० ५२/१९

राजमहल के सुखों से वन के कष्टों की तुलना करके महाराज अति विकल हो उठते हैं। उनको राम का अभाव खटकने लगता है और प्रलाप करते हुए हाथ ऊपर को उठाकर वह चिल्लाते हुए कहते हैं—'हा राम विजहासि नौ।'

महाराज दशरथ की दशा इस प्रलाप के पश्चात् अति शोचनीय हो जाती है। उनकी दृष्टि जाती रहती है। उनको समस्त विश्व अन्धकारमय एवं जीर्णारण्यवत् प्रतीत होने लगता है। शोक के कारण उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं देता। राजा के नेत्र की ज्योति तो राम थे, जो आज उनको छोड़कर जा चुके थे। अतएव समीपस्थित कौसल्या को भी वे नहीं देख पा रहे हैं और एक विवश, निरीह एवं दुःखार्णव में निमग्न प्राणी की भांति कौसल्या से कहते हैं—

'रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते।'　　अयो० का० ४२/३४

सुमन्त्र के साथ राम के न लौटने पर दशरथ का शोक

सुमन्त्र राम, सीता, लक्ष्मण को अपने रथ में बैठाकर वन में पहुंचाने गये थे, तब महाराज ने इच्छा प्रकट की थी कि वन में घुमाकर उन्हें लौटा लायें। सुमन्त्र

को भी पूर्ण विश्वास था कि महाराज की आर्त्त दशा तथा नगर-निवासियों के विषम वियोग को ध्यान में रखते हुए राम वन में घूमकर लौट आयेंगे। महाराज दशरथ सुमन्त्र की बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहे थे और उधर सुमन्त्र विफल-मनोरथ होकर बिलख रहे थे। सुमन्त्र की निराशा का प्रारम्भ उस समय होता है जब राम साथ में आये हुए नगर-वासियों को छोड़ देते हैं। राम सोते हुए अयोध्या-वासियों को त्याग कर सुमन्त्र को जगाकर चुपके-से वन की ओर चल देते हैं और इधर पुरवासी बिलखते हुए रह जाते हैं।

तमसा नदी के तट पर राम द्वारा परित्यक्त पुरवासियों की वेदना असह्य है, जो इन शब्दों में प्रकट होती है—

> 'इहैव निधनं याम महाप्रस्थानमेव वा।
> रामेण रहितानां नो किमर्थं जीवितं हितम्॥'
>
> —अयो० का० ४७/६

वे पुरजन राम के अभाव में जीवित रहना निरर्थक समझते हैं और अपने प्राणों की आहुति देने के लिए तत्पर हैं। इससे अधिक शोक की स्थिति क्या हो सकती है। राम के बिना नगर-वासियों के अयोध्या लौट आने पर उनकी पत्नियाँ भी दुःखार्त्त होकर रो पड़ती हैं। अपने पतियों को कोसने लगती हैं—

> 'गृहे-गृहे रुदत्यश्च भर्त्तारं गृहमागतम्।
> व्यगर्हन्त दुःखार्त्ता वाग्भिस्तोत्त्रैरिव द्विपान्॥' —अयो० का० ४८/६

यहाँ पर राम आलम्बन विभाव हैं, राम का वनगमन एवं वन में प्राप्त होने वाले अनेक प्रकार के कष्ट उद्दीपन विभाव हैं। नगरवासियों का विलाप करना, उनकी स्त्रियों का रो-रोकर अपने पतियों को कोसना अनुभाव है, विषाद, चिन्ता, दैन्य आदि संचारी भावों से परिपुष्ट समस्त नगर-नारियों के अन्तःकरणों में स्थित स्थायी भाव व्यंग्य है।

उनकी चिन्ता द्विगुणित हो जाती है जब उनके मन में यह विचार आता है कि जब हमारी यह दशा है तो महाराज दशरथ तो निश्चय ही राम के वियोग में प्राण दे देंगे—

> 'न हि प्रव्रजिते रामे जीविष्यति महीपतिः।
> मृते दशरथे व्यक्तं विलोपस्तदनन्तरम्॥' —अयो० का० ४८/२६

सुमन्त्र की अनुनय-विनय विफल हुई तथा राम वन से वापस न लौटे। तब सुमन्त्र बहुत उदास और शोकाकुल होकर अयोध्या वापस आते हैं। अयोध्या राम के वियोग में रो रही है, वहां का कण-कण राम की स्मृति में बिलख रहा है। कवि ने अनेक श्लोकों द्वारा अयोध्या की दयनीय अवस्था का चित्रण किया है। कवि का प्रत्येक शब्द करुण रस में डूबा हुआ है। वहां कहीं एक शब्द भी सुनायी नहीं दे रहा

था मानो वह नगरी मनुष्यों से सूनी हो गयी हो—

'स शून्यामिव निःशब्दां दृष्टवा परम दुर्मनाः ।' —अयो० का० ५७/६

राजमार्ग से जब वह महाराज दशरथ के भवन को जाते हैं तो राम-विरह में शोकाकुल नगरवासी सुमन्त्र से 'क्व राम ?' हमारे राम कहाँ हैं ? इस प्रकार पूछते हैं। और सुमन्त्र द्वारा निराशाजनक उत्तर देने पर 'अहो धिगिति निश्वस्य हा रामेति विचुक्रुशुः' ।' स्वयं को धिक्कारते हुए 'हा राम !' की पुकार मचाते हुए करुण-क्रन्दन करने लगते हैं। उनके हृदय-विदारक विलाप को सुनकर अति-व्यथित होकर सुमन्त्र भी अपना मुख हाथों से ढक लेते हैं।

सुमन्त्र के साथ राम के लौट आने की आशा केवल महाराज दशरथ को ही नहीं थी प्रत्युत अयोध्या के समस्त नर-नारियों को भी थी और वे सब सुमन्त्र के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब सुमन्त्र को अकेले ही आते हुए देखकर उनकी आशा घोर एवं कष्टकर निराशा में परिणित हो जाती है तो चारों ओर हाहाकार होने लगता है।

महाकवि ने नगरवासियों की अवस्था का वर्णन करके महाराजा की व्यथा की गम्भीरता पर प्रकाश डाला है। सामाजिक सहज ही सोच सकता है कि जब अयोध्या के नर-नारी की निराशा-जनित यह दशा है तो महाराज की कितनी विषम दशा होगी, जिसका जीवन ही राम के अधीन है।

सुमन्त्र ने जब महाराज को राम का सन्देश सुनाया तथा वनवास के लिए उनका दृढ़ निश्चय बताया तो महाराज शोक के कारण विह्वल होकर मूर्च्छित हो जाते हैं और पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। मूर्च्छित तो वे बार-बार हो रहे थे, किन्तु इस समय उनकी मूर्च्छा अति चिन्ताजनक बन गयी। उनकी वह बलवती आशा जिसके आश्रय से वह आज तक जीवित थे तथा राम के पुनः लौट आने के स्वप्न देख रहे थे, सहसा निराशा में परिवर्तित हो गयी और वह परम निराश तथा असहाय हो गए। जब आशा की एक भी किरन शेष नहीं रह गयी, ऐसी अवस्था में उनका मूर्च्छित हो जाना निश्चय ही चिन्ताजनक था। राजपरिवार को आशंका हो उठी कि कहीं महाराज का स्वर्गवास तो नहीं हो गया है। इसका संकेत कवि ने निम्न प्रकार से किया है—

'ततोऽन्तःपुरमाविद्धं मूर्च्छिते पृथिवीपतौ ।
उच्छ्रित्य बाहू चुक्रोश नृपतौ पतिते क्षितौ ।।'

—अयो० का० ५७/२७

---

१. अयोध्या काण्ड ५७/११

यहां पर राजा दशरथ आलम्बन विभाव हैं, उनका मूच्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाना उद्दीपन विभाव है, रानियों का बाहें उठा-उठाकर विलाप करना अनुभाव है। विषाद, मोह, चिन्ता आदि व्यभिचारी भावों से परि-पुष्ट होकर रानियों के अन्तःकरणों में स्थायी भाव सहृदयों को करुण-रस की चर्वणा करा रहा है।

उस समय का दृश्य अत्यन्त कारुणिक बन जाता है। एक ओर महाराज मूर्च्छित पड़े हैं और दूसरी ओर महारानी कौसल्या विलाप कर रही हैं। इस तरह महाराज के निधन की आशंका स्वाभाविक सी बन जाती हैं। महाराज की अन्य रानियां ऊंचे स्वर से रोने लगती हैं। रनिवास में इस प्रकार के घोर विलाप को सुनकर नगर-निवासी वृद्ध और तरुण पुरुष भी रो पड़ते हैं। वह नगरी उस समय सब ओर से पुनः शोक-सागर में डूब जाती है—

> 'विपलन्तीं तथा दृष्ट्वा कौसल्यां पतितां भुवि।
> पतिं चावेक्ष्य ताः सर्वाः समन्ताद् रुरुदुः स्त्रियः॥
> ततस्तमन्तः पुरनादमुत्थितं, समीक्ष्य वृद्धास्तरुणाश्च मानवाः।
> स्त्रियश्च सर्वा रुरुदुः समन्ततः, पुरं तदासीत् पुनरेव संकुलम्॥'
> —अयो० का० ५७/३३, ३४

इस प्रकार हृदय-विदारक वर्णन द्वारा वाल्मीकि ने आगे आने वाली वास्तविक मृत्यु का संकेत कर दिया और सामाजिक को इसके लिए तैयार भी कर दिया है। कवि ने करुणा के अन्तर्गत प्रकट सहानुभूति का अति स्वाभाविक वर्णन उपर्युक्त प्रसंग में किया है। एक को रोता देखकर दूसरे के नयनों में अश्रुओं का आ जाना स्वाभाविक है। कौसल्या को रोता देखकर अन्य रानियों का रोना तथा उनको देखकर नगरवासियों का रोना इस मनोवैज्ञानिक तथ्य की अति सुन्दर अभि-व्यक्ति है।

मूर्च्छा के टूट जाने पर महाराज को अपने वनवासी पुत्रों एवं पुत्रवधू की चिन्ता पुनः व्याकुल करने लगती है। वह उनके सम्भावित कष्टों का विचार कर अति दुःखी होते हैं व सुमन्त्र से पूछते हैं—'सूत ! धर्मात्मा राम वृक्ष की जड़ का सहारा ले कहाँ निवास करेंगे ? जो अत्यन्त सुख में पले थे, वे मेरे लाडले राम वहां क्या खायेंगे ? वे वन के कष्टों को किस प्रकार सहते होंगे ? षट्-रसों से युक्त स्वादिष्ट भोजन करने वाले वे राजकुमार किस प्रकार वन के कन्दमूल खाकर रहते होंगे ? कोमल शय्या पर शयन करने वाले, कोमल शरीर वाले वे मेरे पुत्र एवं पुत्रवधू भूमि पर कुश बिछाकर किस प्रकार सोते होंगे ? श्रेष्ठ यानों में चलने वाले सुकुमार किस प्रकार सुकुमारी दुखिया सीता को साथ लेकर पैदल चलते होंगे[1] ?'

---

१. अयोध्या काण्ड ५८/५-१२

इन कष्टों की स्मृति महाराज की वेदना तथा अनिष्ट की आशंका को बल देने के लिए पूर्णतः सक्षम है।

सुमन्त्र ने राम के सन्देश को सुनाया। यह सन्देश इसी के साथ राम और सीता की वेदना का वर्णन महाराज दशरथ के लिए अत्यन्त कष्टकर सिद्ध होता है। वे असह्य वेदना के कारण तड़पने लगते हैं। कवि ने इस प्रसंग की बड़ी मार्मिक योजना की है। राम द्वारा भेजे गए सन्देश में महाराजा दशरथ के परिवार की विषमता का वह कटु सत्य था जिसको सुनकर महाराज का तिलमिला उठना स्वाभाविक था। सुमन्त्र ने बताया कि राम ने नेत्रों से आंसू बहाते हुए भरत के लिए यह सन्देश दिया—

'अब्रवीच्चापि मां भूयो भृशश्रूणि वर्तयन्।
मातेव मम माता ते द्रष्टव्या पुत्रगर्धिनी ॥' —अयो० का० ५८/२४

राम के इन शब्दों में एक ओर अपनी जननी के प्रति अगाध स्नेह व्यंजित हो रहा है, तो दूसरी ओर माता के दारुण दुःखों की संभावना से उनका मातृवत्सल हृदय द्रवित हो रहा है।

सुमन्त्र महाराज के समक्ष जब यह भी निवेदन करते हैं कि राम, लक्ष्मण एवं सीता को वन में छोड़कर जब वह रथ से आ रहा था, तो केवल उसका अन्तःकरण ही खिन्न नहीं था अपितु रथ में संयुक्त अश्व भी गरम-गरम अश्रु प्रवाहित कर रहे थे। चेतन प्राणियों की तरह अचेतन वृक्ष लता, पुष्प, सरितायें, जलाशय, उपवन आदि प्राकृतिक पदार्थ भी विभिन्न प्रकार से अपना दुःख प्रकट कर रहे थे। अयोध्या के राजमार्ग, राजमार्गों के दोनों ओर स्थित गगनचुम्बी अट्टालिकाएं ओर उन अट्टालिकाओं में रहने वाले नर-नारी सभी दुःख की कहानी कह रहे थे—

'मम त्वश्वा निवृत्तस्य न प्रावर्तन्त वर्त्मनि।
उष्णमश्रु विमुंचन्तो रामे सम्प्रस्थिते वनम् ॥' —अयो० का० ५६/१

विषये ते महाराज महाव्यसन कर्शिताः।
अपि वृक्षाः परिम्लानाः सुपुष्पांकुर कोरकाः ॥' —अयो० का० ५६/४

उपतप्तोदका नद्यः पल्वलानि सरांसि च।
परिशुष्कपलाशनि वनान्युपवनानि च ॥' —अयो० का० ५६/५

हर्म्यैर्विमानैः प्रासादैरवेक्ष्य रथमागतम्।
हाहाकारकृता नार्यो रामदर्शन कर्शिताः ॥' —अयो० का० ५६/१२

इस प्रसंग में महाकवि ने करुणा के सहानुभूतिगत प्रभाव का मार्मिक चित्रण किया है। महाराज दशरथ की वेदना वैसे ही असह्य थी। इस सन्देश के द्वारा उनकी मानसिक पीड़ा अति कष्टकर बन गयी। उनकी यह निर्बलता उनके समक्ष आ गयी

कि वे कैकेयी के वश में हैं, जिसके कारण अन्य बड़ी रानियों की चिन्ता उनको नहीं रही हैं, तथा वे रानियां भी कैकेयी की वशंगता हैं और वे मन में सोचने लगते हैं कि सारी दुर्दशा उनकी अपनी निर्बलता के कारण हुई है। वास्तव में वही इस सबके लिए दोषी है । वह तड़फ उठते हैं और अति विवश होकर प्रलाप करने लगते हैं—

'हा राम रामानुज हा हा वैदेहि तपस्विनि ।
न मां जानीत दुःखेन म्रियमाणमनाथवत् ।।' —अयो० का० ५९/२७

इससे अधिक शोक की चरमावस्था और क्या हो सकती है कि चार पुत्रों, सीता जैसी बहु और तीनों रानियों के होते हुए भी राजा दशरथ अनाथवत् मरने की बात कह रहे हैं ।

इस प्रसंग में महाकवि ने महाराजा दशरथ के मुख से उनके हृदय की दारुण व्यथा का रूपक के माध्यम से जो मर्मस्पर्शी चित्रण किया है, वह निश्चय ही पत्थर को भी रुला देने वाला है । महाराज परम दुर्लङ्घ्य शोक-सागर में निमग्न होकर कहते हैं—

'रामशोकमहावेगः सीताविरह पारगः ।
श्वसितोर्मिहावर्तो वाष्पवेगजलाविलः ।।
बाहुविक्षेपमीनोऽसौ विक्रन्दितमहास्वनः ।
प्रकीर्णकेश शैवालः कैकेयीवडवामुखः ।।
ममाश्रुवेगप्रभवः कुब्जावाक्य महाग्रहः ।
वरवेलो नृशंसाया रामप्रव्राजनायतः ।।
यस्मिन् बत निमग्नोऽहं कौसल्ये राघवं विना ।
दुस्तरो जीवता देवि मयायं शोकसागरः ।।

—अयो० का० ५९/२९-३२

राम का शोक ही उस समुद्र का महान् वेग है । सीता का वियोग ही उसका दूसरा किनारा है । लम्बी-लम्बी सांसें उसकी लहरें और बड़ी-बड़ी भंवरें हैं । अश्रुओं का वेगपूर्वक उमड़ा हुआ प्रवाह ही उसका मलिन जल है । राजा का हाथ पटकना ही उसमें उछलती हुई मछलियों का विलास है । करुण क्रन्दन ही उसकी महान् गर्जना है । ये बिखरे हुए केश ही उसमें उपलब्ध होने वाले सेवार हैं । कैकेयी वडवानल है । वह शोक-समुद्र दशरथ की वेगपूर्वक होने वाली अश्रुवर्षा की उत्पत्ति का मूल कारण है । मन्थरा के कुटिलतापूर्वक वचन उस समुद्र के बड़े-बड़े ग्राह हैं । क्रूर कैकेयी के मांगे हुए दो वर उसके दो तट हैं । तथा राम का वनवास ही उस शोक-सागर का महान् विस्तार है ।

वेदना चाहें जैसी असह्य हो, किन्तु मृत्यु का कारण होने के लिए तो उसे अत्यन्त घातक बनना पड़ेगा । इसीलिए कवि ने इस प्रसंग में एक घोर कष्टकर

आघात महाराज पर किया । राम के सन्देश को सुनकर कौसल्या का मातृ-स्नेह सहज ही मुखरित हो उठा—

'तथापि सूतेन सुयुक्तवादिना, निवार्यमाणा सुतशोकर्शिता ।
न चैव देवी विरराम कूजितात्, प्रियेति पुत्रेति च राघवेति च ।।'

—अयो० का० ६०/२३

वह 'ओ मेरे वत्स ! ओ मेरे राम !' आदि कहकर विलाप करने लगी । भरत के लिए राम के सन्देश में अविश्वास तो स्थापित हो ही चुका था, इसलिए महाराज दशरथ से यह भी कह वैठी कि यदि बनवास की १४ वर्ष की अवधि को पूरा करके राम वापस आये तो मुझे विश्वास वनवास नहीं कि भरत राम को राज्य तथा कोष वापस दे दें—

'यदि पंचदशे वर्षे राघवः पुनरेष्यति ।
जह्याद् राज्यं च कोशं च भरतो नोपलक्ष्यते ।।'

—अयो० का० ६१/११

वह सन्तप्त हृदय से यह सोचकर कि राम, लक्ष्मण और सीता के दुःखों का मूल कारण महाराज दशरथ ही हैं, जी में जो कुछ आता है, कहती हैं—

'सा नूनं तरुणीश्यामा सुकुमारी सुखोचिता ।
कथमुष्णं च शीतं च मैथिली विसहिष्यते ।।
भुक्त्वाशनं विशालाक्षी सूपदंशान्वितं शुभम् ।।
वन्यं नैवारमाहारं कथं सीतोपभोक्ष्यते ।।'

—अयो० का० ६१/४-५

यहां पर सीता आलम्बन विभाव है । सीता की सुकुमारता, तरुणावस्था तथा पहले सुन्दर व्यंजनों से युक्त स्वादिष्ट भोजन करने वाली सीता का अब वन में तिन्नी के चावल खाना आदि उद्दीपन विभाव हैं । शोक-सन्तप्त कौसल्या का राजा को उपालम्भ देना एवं विलाप करना अनुभाव हैं । निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, विषाद, आदि संचारी भावों से परिपुष्ट कौसल्या के हृदय में स्थित शोक स्थायीभाव व्यंग्य है ।

इस प्रकार यह प्रसंग अति कटु और असह्य बन जाता है । महाराज सहज ही अति व्याकुल होकर मूच्छित हो जाते हैं—

'इमां गिरं दारुणशब्द संहितां,
निशम्य रामेति मुमोह दुःखितः ।
ततः स शोकं प्रविवेश पार्थिवः,
स्वदुष्कृतं चापि पुनस्तथास्मरत् ।।'

—अयो० का० ६१/२७

अंधशाप की स्मृति पर दशरथ का शोक

महाराज की चेतना के साथ महाराज को अंधशाप की स्मृति हो आती है। वे अपनी मृत्यु अवश्यम्भावी समझकर अति दीन और कातर हो उठते हैं। महारानी कौसल्या के कठोर वचन कटु सत्य थे अतएव अपनी दीनता और विवशता प्रकट करते हुए महाराज ने कौसल्या से क्षमायाचना की—

'प्रसादये त्वां कौसल्ये रचितोऽयं मयांजलिः।
वत्सला चानृशंसा च त्वं हि नित्यं परेष्वपि॥'

—अयो० का० ६२/२

इस आघात के साथ अंधशाप की स्मृति से दशरथ अति विकल हो उठते हैं। यह विकलता ठीक उसी प्रकार की थी जिस प्रकार प्राण निकलते समय शरीर का अंग-अंग व्याकुल हो उठता है। अंधशाप की कथा उनकी आंखों के सामने नाचने लगती है जिसकी पुनरावृत्ति होने जा रही थी। आज वे स्वयं अंधतापस का अभिनय करने जा रहे थे। उनकी अन्तरात्मा इस सत्य को समझ रही थी और इसीलिए अंधशाप की कथा के चित्र उनके नेत्र-पटल पर स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। वे अति मार्मिक शब्दों में कहते हैं—

'तौ पुत्रमात्मनः स्पृष्ट्वा तमासाद्य तपस्विनौ।
निपेततुः शरीरेऽस्य पिता चैनमुवाच ह॥
नाभिवादयसे मामद्य न च मामभिभाषसे।
किं च शेषे तु भूमौ त्वं वत्स किं कुपितो ह्यसि॥'

—अयो० का० ६६/२६-३०

श्रवण कुमार के वृद्ध माता-पिता द्वारा दिये गये शाप के स्मरण-मात्र से अपनी मृत्यु उनकी आंखों के सामने नर्तन करने लगती है। उन्हें ऐसा लगता हैं मानो यमराज के दूत महाराज को इस संसार से लेने के लिए आ गये हैं। महाप्रयाण की उस बेला में वे कौसल्या से कहते हैं—

'चक्षुषा त्वां न पश्यामि स्मृतिर्मम विलुप्यते।
दूता वैवस्वतस्यैते कौसल्ये त्वरयन्ति माम्॥'

—अयो० का० ६४/६५

जीवन के अन्तिम क्षणों में राम का वहां उपस्थित न होना दशरथ को मर्मान्तक पीड़ा दे रहा है। अपने प्रिय पुत्र राम की स्मृति के साथ दशरथ ने अनुभव किया कि उनके शरीर से प्राण निकल रहे हैं जैसे दीपक का तेल समाप्त होकर निस्तेज हो जाता है। असह्य शोक उनके जीवन को उसी प्रकार नष्ट करने लगता है जिस प्रकार नदी की वेगवती धारा नदी के कगारों को नष्ट कर देती है—

'चित्तनाशाद् विपद्यन्ते सर्वाण्येवेन्द्रियाणि हि ।
क्षीणस्नेहस्य दीपस्य संरक्ता रश्मयो यथा ।।
अयमात्मभवः शोको मामनाथमचेतनम् ।
संसाधयति वेगेन यथा कूलं नदीरयः ।।'
—अयो० का० ६४/७३-६४

जीवन की समाप्ति के क्षणों में प्रयाणतत्पर प्राणों के साथ महाराज का करुण प्रलाप प्रकट होता है—

'हा राघव महाबाहो हा ममायास नाशन ।
हा पितृप्रिय मे नाथ हा ममासि गतःसुत ।।
हा कौसल्ये न पश्यामि हा सुमित्रे तपस्विनि ।
हा नृशंसे ममामित्रे कैकेयि कुलपांसनि ।।'
—अयो० का० ६४/७५, ७६

इस प्रकार कौसल्या और सुमित्रा के निकट शोक-पूर्ण विलाप करते हुए राजा दशरथ के जीवन का अन्त हो गया है—

'इति मातुश्च रामस्य सुमित्रायाश्च संनिधौ ।
राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तमुपागमत् ।''
—अयो० का० ६५/७७

मृत्यु शोक की पराकाष्ठा है । राम के लिए व्याकुल होते-होते राजा ने मृत्यु का वरण कर लिया था । कवि ने इस प्रसंग को अत्यन्त हृदयद्रावक बनाने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है क्योंकि सभी पर इस मृत्यु का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है ।

महाराज दशरथ के निधन पर शोक

प्रातःकाल नित्य के समान वाद्य संगीत और विरुदगान के साथ दशरथ को जगाने की तैयारियां की गयीं किन्तु अनेक प्रकार के स्तुति-पाठ से भी उनकी महा-निद्रा भंग न हो सकी । महाराज की मृत्यु के समय कवि ने शोक के सूक्ष्म अनुभावों की योजना की है । महाराज की अब तक सामान्य दशा यह थी कि वह बार-बार मूर्च्छित होते और प्रलाप करने लगते थे । इस प्रकार उनकी मृत्यु के समय उनकी मृत्यु का विश्वास न होना तथा मृत्यु की संपुष्टि के लिए स्पर्शादि का आश्रय लेना स्वाभाविक था ।

महारानी कौसल्या तथा सुमित्रा ने महाराज दशरथ को देखा तथा स्पर्श किया और 'हा नाथ !' की पुकार मचाती हुई वे दोनों रानियां पृथ्वी पर गिर पड़ी—

'कौसल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा व पार्थिवम् ।
हा नाथेति परिक्रुश्य पेततुर्धरणी तले ॥'
—अयो० का० ६५/२२

महाराज की अन्य रानियां कैकेयी के साथ विलाप करती हुई महाराज के पास दौड़ी आई और शोक से सन्तप्त होने के कारण मूर्च्छित होकर गिर पड़ी—

'ततः सर्वा नरेन्द्रस्य कैकेयी प्रमुखाः स्त्रियः ।
रूदत्यः शोकसन्तप्ता निपेतुर्गत चेतनाः ॥' —अयो० का० ६५/२५

रानियों के साथ अन्यान्य व्यक्तियों के घोर विलाप तथा क्रन्दन के कारण महाराज दशरथ का राजभवन शोकाकुल हो गया था । राजमहल की दैन्यावस्था का मर्मस्पर्शी वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

'तत् परित्रस्तसम्भ्रान्त पर्युत्सुकजनाकुलम् ।
सर्वतस्तुमुलाक्रन्दं परितापार्त्त बान्धवम् ॥
सद्यो निपतितानन्दं दीनं विक्लवदर्शनम् ।
बभूव नरदेवस्य सद्म दिष्टान्तमीयुषः ॥'
—अयो० का० ६५/२७-२८

रानियों के शोक का वर्णन करते हुए कवि ने उनके अति सूक्ष्म व्यापारों का भी उल्लेख किया है । इस अवसर पर आदि कवि का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन विशेष रूप से दर्शनीय है—

'अतीतमाज्ञाय तु पार्थिवर्षभं, यशस्विनं तं परिवार्य पत्नयः ।
भृशं रुदत्यः करुणं सुदुःखिताः, प्रगृह्य बाहू व्यलपन्ननाथवत् ॥'
—अयो० का० ६८/२९

जब मन्त्रियों ने राजा के शव को तेल के कड़ाह में रखा, तब वे विलाप करती हैं—

'तैलद्रोण्यां शायितं तं सचिवैस्तु नराधिपम् ।
हामृतोऽयमिति ज्ञात्वा स्त्रियस्ताःपर्यवदेवयन् ॥'
—अयो० का० ६६/१६

प्रलाप करते हुए उनके मुख से बार-बार ये शब्द मुखरित हो रहे थे—

'हा महाराज रामेण सततं प्रियवादिना ।
विहीनाःसत्यसंघेन किमर्थं विजहासि नः ॥'—अयो० का० ६६/१८

मृत्यु की अनुभूति की वास्तविक दारुणता उस समय प्रकट होती है जिस समय शव को स्थानान्तरित किया जाता है या अन्त्येष्टि के लिए चिता पर रख देते हैं । इस तथ्य की ओर कवि ने विशेष ध्यान दिया है ।

सुहृद्जनों ने किसी भी पुत्र की अनुपस्थिति में दाह-संस्कार उचित न समझ कर उनके शव को सुरक्षित रख दिया। उस समय सूर्य के बिना प्रभाहीन आकाश तथा नक्षत्रों के बिना शोभाहीन रजनी की भांति वह अयोध्या नगरी राजा दशरथ से रहित हो श्रीहीन प्रतीत होती थी। सड़कों और चौराहों पर अश्रुओं से अवरुद्ध कण्ठ वाले मनुष्यों की भीड़ एकत्रित हो गयी थी—

'गतप्रभा द्यौरिव भास्करं विना, व्यपेतनक्षत्रगणेव शर्वरी।
पुरी बभासे रहिता महात्मना, कण्ठासकण्ठाकुलमार्गचत्वरा।।'

—अयो० का० ६६/२८

भरत का शोक

भरत की शोकानुभूति का वर्णन भी कवि ने अति विस्तृत किन्तु स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक तथ्यों के अनुरूप किया है। राम के वियोग में जिस प्रकार महाराज दशरथ इस संसार से विदा हुए थे, यद्यपि उस दारुण घटना का कारण भरत की माता कैकेयी थी, किन्तु पितृवत्सल भरत इस समस्त घटना-चक्र से अनभिज्ञ थे। उनका हृदय गंगा-जल के समान पावन था। भरत की निष्कपटता तथा निर्दोषता सिद्ध करने में कवि ने कोई कमी नहीं रखी। माता द्वारा पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर वे कटे हुए वृक्ष की भांति पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। महाकवि ने पिता दशरथ के वियोग में भरत की दुःखावस्था का चित्रण अत्यन्त मार्मिक रूप में किया है—

'हा हतोऽस्मीति कृपणां दीनां वाचमुदीरयन्।
निपपात महाबाहुर्बाहू विक्षिप्य वीर्यवान्।।'

—अयो० का० ७२/१७

भरत अपने पूज्य पिता की शय्या को देखकर विलाप करने लगते हैं।

'एतत् सुरुचिरं भाति पितुर्मे शयनं पुरा।
शशिनेवामलं रात्रौ गगनं तोयदात्यये।।
तदिदं न विभात्यद्य विहीनं तेन धीमता।
व्योमेव शशिना हीनमशुष्क इव सागरः।।'

—अयो० का० ७१/१९-२०

भरत इस कटु सत्य पर विश्वास नहीं कर पाते कि उनके तातचरण उन्हें इस संसार में अनाथवत् छोड़कर स्वर्ग चले गए होंगे। उन्हें लगता है—

'स नूनं मां महाराजः प्राप्तं जानाति कीर्तिमान्।
उपजिघ्रेत् तु मां मूर्ध्नितातः संनाम्य सत्वरम्।।'

—अयो० का० ७२/३०

भरत को वे सुखद क्षण याद आते हैं, जब पिता दशरथ वात्सल्याभिभूत होकर अपने कोमल हाथों के स्पर्श से सुख दिया करते थे और भरत के शरीर पर लगी हुई धूल को पोंछा करते थे—

'क्वस पाणिः सुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः ।
यो हि मां रजसा ध्वस्तमभीक्ष्णं परिमार्जति ॥'

—अयो० का० ७२/३१

यहां पर दशरथ आलम्बन विभाव हैं । उनकी मृत्यु का दारुण वृतान्त उद्दीपन विभाव है । पिता के स्नेह को स्मरण कर विलाप करना, आंसू बहाना अनुभाव है । दैन्य, विषाद, चिन्ता, मोह आदि संचारी भावों से परिपुष्ट भरत के हृदय में स्थित शोक स्थायी भाव व्यंग्य है ।

महाराज दशरथ की अन्त्येष्टि पर शोक

सर्वाधिक शोकोत्पादक, सम्पूर्ण अस्तित्व को मथित करने वाली अवस्था होती है किसी भी अत्यात्मीय जन का अन्त्येष्टि संस्कार । इस अवसर पर दुष्ट से दुष्ट हृदय भी संसार की असारता को देखकर वैराग्य-युक्त हो जाता है । इससे अधिक करुणा का प्रसंग कोई और नहीं हो सकता ।

शव को चिता पर रखते समय प्रिय बन्धु-बान्धवों को आलम्बन का मार्मिक अनुभव होता है । इसीलिए इस समय की वेदना अति करुणापूर्ण होती है । मृत-व्यक्ति के अभाव की अनुभूति प्रत्यक्ष एवं साकार होकर आश्रय को विपन्न तथा विकल बना देती है ।

मुनिवशिष्ठ की आज्ञा पाकर भरत महाराज के शव को विविध रत्नों से जटित शय्या पर लिटाकर अति दुःखी होकर विलाप करते हैं—

'क्व यास्यसि महाराज हित्वेमं दुःखितं जनम् ।
हीनं पुरुषसिंहेन रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥' —अयो० का० ७६/७
विधवा पृथिवी राजंस्त्वया हीना न राजते ।
हीनचन्द्रेव रजनी नगरी प्रतिभाति माम् ॥' —अयो० का० ७६/९

पिता दशरथ की मृत्यु से उत्पन्न भरत का शोक अग्रज राम के वियोग में द्विगुणित हो गया है । दशरथ के परलोक चले जाने पर यह पृथिवी भरत को विधवा-सी प्रतीत होती है ।

महाराज का शव श्मशान भूमि में पहुंचा दिया गया । विविध द्रव्यों से तैयार चिता पर वह रख दिया गया । पंचतत्वों से निर्मित शरीर अग्नि देवता को समर्पित हो गया । उसी समय शिबिकाओं और रथों पर आरूढ़ कौसल्यादि रानियां भी वहां पहुंच गयीं और उन्होंने जलती हुई चिता की प्रदक्षिणा की ।

शोकाभिभूत आश्रय को अपना सम्मान प्रकट करने का यही अंतिम अवसर होता है। भारी हृदय लेकर आश्रय यह परिक्रमा देता है तथा शोक को सह्य बनाने का प्रयास करता है। भयंकर विलाप तथा अति-विकलता का यह दृश्य निश्चय ही हृदय-विदारक होता है। इसलिए कवि ने इस स्थल पर अपनी मूल करुणानुभूति का स्मरण करते हुए कहा––

'क्रौंचीनामिव नारीणां निनादस्तत्र शुश्रुवे।
आर्त्तनां करुणं काले क्रोशन्तीनां सहस्रशः॥'

—अयो० का० ७६/२१

तेरहवें दिन भरत प्रातःकाल शोकाकुल अन्तःकरण से अस्थिसंचय के लिए पिता के चिता-स्थान पर आये। इधर-उधर पिता की जली हुई अस्थियां बिखरी हुई थीं। पिता के शरीर के निर्वाण का वह स्थान देखकर भरत घोर विलाप करते हुए शोक-सागर में डूब गए। असह्य वेदना के कारण मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े भरत को शोक में डूबा देख शत्रुघ्न भी पिता का बारम्बार स्मरण करते हुए अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े—

सुध-बुध खोकर उन्मत्त के समान विलाप करने लगे––

'सुकुमारं च बालं च सततं लालितं त्वया।
क्व तात भरतं हित्वा विलपन्तं गतो भवान्॥'

—अयो० का० ७७/१४

'अवदारणकाले तु पृथिवी नावदीर्यते।
विहीना या त्वया राज्ञा धर्मज्ञेन महात्मना॥'

—अयो० का० ७७/१६

भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई विषादग्रस्त तथा श्रान्त होकर पृथ्वी पर लौटने लगते हैं। रोते-रोते उनके नेत्र लाल हो जाते हैं। मन्त्रियों के कहने पर वे बहुत कठिनाई से अन्य क्रियायें करने लगते हैं।

दशरथ के निधन पर राम का शोक

राम के बिना भरत को अयोध्या के राज्य का किंचिन्मात्र भी मोह नहीं था। वे अपने बड़े राम को राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ देखना चाहते थे, अतः राम को लौटाने के लिए गुरुवशिष्ठ, राजमाताओं एवं अन्य मन्त्रियों के साथ वन में गए। भरत द्वारा महाराज के निधन का दुःखद समाचार सुनकर राम अचेत हो गए।

पिता के निधन का यह दारूण समाचार राम जैसे धीर और वीर पुरुष के

लिए भी असह्य सिद्ध हुआ। जन साधारण की भांति राम की आत्मा बिलख उठी।

भरत के मुख से निकला हुआ वह वचन राम को वज्र-सा लगा। मानो दानवशत्रु इन्द्र ने युद्ध भूमि में वज्र का प्रहार कर दिया हो। उस अप्रिय समाचार को सुनकर राम दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर वन में कुल्हाड़ी से कटे हुए वृक्ष की भांति पृथ्वी पर गिर पड़े —

'तं तु वज्रमिवोत्सृष्टमाहवे दानवारिणा।
वाग्वज्रं भरतेनोक्तममनोज्ञं परंतप।
प्रगृह्य रामो बाहू वै पुष्पितांग इव द्रुमः।
वने परशुना कृत्तस्तथा भुवि पपात ह॥'

—अयो० का० १०३/२-३

शोकानुभूति का मार्मिक अंग परिताप है। राम को यही परिताप था कि मेरे वियोगजनित शोक के कारण पिता की मृत्यु हुई और मैं उनका अन्तिम संस्कार भी न कर सका। मेरा जीवन निरर्थक रहा।

शोक प्रियजनों का आलम्बन चाहता है और उनके सानिध्य में द्विगुणित वेदनायुक्त बन जाता है। राम ने अपने सम्मुख सीता और लक्ष्मण को देखा, जिनको अभी तक पिता के निधन का समाचार नहीं मिला था। वे दुःखावेग को रोक न सके और चिल्लाकर कहने लगे—

'सीते मृतस्तेश्वसुरः पितृहीनोऽसि लक्ष्मण।
भरतो दुःखमाचष्टे स्वर्गतिं पृथिवीपते॥'

—अयो० का० १०३/१५

राम के इन शब्दों में शोक कूट-कूटकर भरा हुआ है। जिस प्रियजन का संयोग जितना सुखदायी होता है, उसका वियोग उससे भी अधिक दुखःदायी होता है। राम को अपने पिता से अत्यधिक स्नेह था, इसलिए उनकी मृत्यु का अप्रिय समाचार उन्हें दारुण दुःख देता है।

राम पिता को तिलांजलि देने नदी किनारे जाते हैं। वहां से लौटते समय पिता का अभाव राम के मन में वेदना उत्पन्न करता है। पर्णशाला में जाकर भरत और लक्ष्मण को भुजाओं से थामकर राम रोने लगते हैं। उस समय चारों राजकुमार तथा सीता घोर विलाप करते हैं—

'तेषां तु रुदतां शब्दात् प्रतिशब्दोऽभवद् गिरौ।
भ्रातृणां सह वैदेह्या सिंहानां नर्दतामिव॥'

—अयो० का० १०३/३३

भरत का शोक

कैकेयी ने राम को वनवास तथा भरत के लिए अयोध्या का राज्य मांगा था। अतएव सभी के मन में भरत की सहमति की आशंका होना स्वाभाविक ही था। क्योंकि कैकेयी द्वारा मांगे गये वरदान में उनकी ही हित-साधना समाहित थी। उनकी अनुपस्थिति में यह सब कार्य हुआ था इसलिए भरत को अपनी स्थिति के स्पष्टीकरण का कोई अवसर नहीं मिला था। वे निश्चय ही माता के मत से तिल-मात्र भी सहमत नहीं थे। किन्तु अनुपस्थित होने के कारण वरदान-याचना के समय वे इसका विरोध भी नहीं कर सके थे। अतएव उनके क्या विचार हैं, यह जानने की सबको उत्सुकता भी थी। यह उत्सुकता धीरे-धीरे सम्भावना का रूप ले चुकी थी। तब सब लोग यही सोचने लगे थे कि भरत की इच्छा के अनुकूल ही यह कुचक्र रचा गया होगा। कवि ने इस सम्भावना का स्पष्ट परिपुष्ट रूप माता कौसल्या की कटूक्तियों में प्रकट किया है।

कौसल्या को दुःखी और विपन्न देखकर दोनों भाई भरत और शत्रुघ्न अत्यन्त दुःखी होकर कौसल्या के चरणों में गिर पड़ते हैं और उनसे लिपटकर बिलख-बिलख कर रोने लगते हैं। कौसल्या दोनों भाइयों के बिलखते हुए हृदयों पर दारुण प्रहार करती हुई कहती हैं—

'इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकमे।
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा॥

प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम्।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी॥'

—अयो० का० ७५/११-१२

किसी निर्दोष व्यक्ति को ऐसे घोर दुष्कर्म का दोषी बताया जाए तो उसकी क्या दशा हो सकती है, इसका अनुमान कोई भुक्तभोगी ही लगा सकता है। भरत मन, वचन, कर्म से राम के परम भक्त थे। वे राम के अहित की कामना कभी स्वप्न में भी नहीं कर सकते थे। वे तो राम को ही अयोध्या के राजसिंहासन पर विराजमान देखने की प्रबल इच्छा रखते थे। किन्तु जब उन्होंने माता कौसल्या के मुख से इस प्रकार मर्मभेदी शब्द सुने तो वे अवाक् रह गये। उनकी असह्य वेदना का अनुमान लगाने के लिए कवि ने एक अन्य वेदना का उदाहरण देते हुए कहा—

'इत्यादिबहुभिर्वाक्यैः क्रूरैः सम्भर्त्सितोऽनघः।
विव्यथे भरतोऽतीव व्रणे तुद्येव सूचिना॥

पपात चरणौ तस्यास्तदा सम्भ्रान्तचेतनः ।
विलप्य बहुधासंज्ञो लब्धसंज्ञस्तदाभवत् ॥'
—अयो० का० ७५/१७-१८

आत्मग्लानि, असह्यवेदना और शोक ने भरत को आहत कर दिया । वह शपथ खाकर अपनी निर्दोषता प्रकट करने लगे । वह उन दुर्गतियों की कामना करने लगे जो अन्यान्य पापों को करने से पापी मनुष्यों को प्राप्त होती हैं । इन शब्दों में भरत का निश्छल, निष्पाप हृदय उमड़ पड़ा है । उन्होंने एक के बाद दूसरी पापगति की कामना करते हुए अनेक पापगतियों का वर्णन कर डाला[1] ।

माता कौसल्या को शपथ द्वारा आश्वासन देते हुए भरत अति आर्त्त और विकल होकर भूमि पर गिर पड़ते हैं । भरत ने कौसल्या के समक्ष यह जो अनेक प्रकार की पापगतियों का विस्तार से वर्णन किया है, और जिसकी अनुमति से राम वन गये, वह इन समस्त पापों का भागी हो, यह स्पष्ट घोषणा की है। इससे एक ओर भरत का परमोज्वल, परम पवित्र चरित्र प्रकाशित होता है, तो दूसरी ओर यह भी अभिव्यंजित हो रहा है कि अग्रज भाई राम के वन जाने से तथा पिता की मृत्यु से भरत का हृदय अत्यन्त विषादयुक्त है। कैसा दुर्भाग्य है कि जिसका चरित्र सर्वथा निष्पाप है, उसी भरत पर राम को वन भेजने के षड्यन्त्र में सम्मिलित होने की आशंका की जा रही है । किन्तु भरत ने अपनी सत्यता को प्रमाणित करने के लिए जब पापगतियों का उल्लेख किया तब माता कौसल्या को भरत की निष्कपटता तथा निर्दोषता का विश्वास हुआ । राम का वनवास उन्हें पहले ही मर्मान्तिक पीड़ा दे रहा था । भरत को इस प्रकार शोक-संतप्त एवं अचेतावस्था में आत्मग्लानि से विकल देखकर उनका मातृ-हृदय और अधिक दुःखी हो उठा । उनका हृदय कहने लगा कि वह व्यर्थ में ही भरत जैसे राम के परम भक्त भाई को दोष दे रही हैं—

'मम दुखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते ।
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणत्सि मे ॥' —अयो० का० ७५/६१

यह दुःख अत्यन्त वेदनामय तथा पीड़ा जनक होता है । निर्दोष व्यक्ति पर दोषरोपण मिथ्या सिद्ध होने पर दोषारोपण करने वाले व्यक्ति को एक विशेष प्रकार का खिसियानापन तो होता ही है और जिस व्यक्ति पर दोषारोपण किया गया, वह व्यक्ति यदि अपना परम सुहृद, स्नेहभाजन, शुभचिन्तक अथवा भक्ति-भाव रखने वाला सिद्ध हो जाये, तब तो हृदय शतधा विदीर्ण हो उठता है । माता कौसल्या की वेदना इसी प्रकार की है ।

---

१. अयो० का० ७५/२१ से ५८

पितृवत्सल भरत जहाँ एक ओर अपने पिता की मृत्यु से अत्यन्त दुःखी थे, वहां पितृतुल्य अग्रज राम के वनवास के कष्टों की कल्पना से उनकी अन्तरात्मा व्याकुल थी। वे कौसल्यादि राजमाताओं, वशिष्ठ मुनि एवं अन्य प्रतिष्ठित मंत्रियों, सेनापतियों को लेकर राम को अयोध्या में वापस लौटाने के लिए वन में जाकर तथा वहां भाई राम की कुश-शैय्या देखकर पुनः आत्मग्लानि से व्याकुल हो जाते हैं। राम वन में इस प्रकार के कष्ट सहें, यह सब उन्हीं के कारण हुआ। जो कोमल गद्दों पर सोया करते थे, आज भूमि पर कुश-शय्या पर सोते हैं। भरत आत्मग्लानि से सिहर उठे और बोले—

'हा हतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत् सभार्यःकृते मम।
ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत्॥'

—अयो० का० ८८/१७

विलाप करते-करते भरत के मुख कमल पर स्वेद-बिन्दु दिखाई देते हैं। वे राम के चरणों तक पहुंचने से पहले ही भूमि पर गिर पड़ते हैं। आंसुओं से उनका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है। वे राम की ओर देखकर—'हा आर्य' कहकर चीख उठते हैं—

'इत्येवं विलपन् दीनः प्रस्विन्नमुखपंकजः।
पादावप्राप्य रामस्य पपात भरतो रुदन्॥'

—अयो० का० ९९/३७

'वाष्पैः पिहितकण्ठश्च प्रेक्ष्य रामं यशस्विनम्।
आर्येत्येवाभिसंक्रुश्य व्याहर्तुं नाशकत् ततः॥'

—अयो० का० ९९/३९

आत्मग्लानि के साथ अनुभावों का कितना प्रभावशाली वर्णन यहां कवि ने किया है।

भरत का मुख पसीने से तर हो रहा था। स्वेद का शोक के अनुभव के रूप में प्रयोग कवि के सूक्ष्म निरीक्षण को ही प्रकट कर रहा है। यहां पर कवि ने विभाव अनुभावादि की सुन्दर योजना की है। राम आलम्बन विभाव हैं। उनका वन में पृथ्वी पर शयन करना, वन में कष्टों को सहना आदि उद्दीपन विभाव हैं। भरत के मुखमण्डल पर पसीना आ जाना, राम के चरणों तक पहुंचने से पूर्व ही पृथ्वी पर गिर पड़ना, आंसुओं से कण्ठ अवरुद्ध हो जाना तथा 'हा आर्य' कहकर चीखनादि अनुभाव हैं। इस प्रकार विषाद, चिन्ता, ग्लानि, मोह, दैन्य आदि संचारी भावों से परिपुष्ट भरत के हृदय में स्थित शोक स्थायी भाव व्यंग्य है।

भरत निराश होकर अयोध्या लौट आये और उन्होंने देखा कि राजा दशरथ की वैभवशालिनी अयोध्या नगरी सूनी है। राजमहल उदास होकर शून्य में निहार

रहा है। शून्यता अथवा अभावग्रस्त परिस्थितियों के अन्तर्गत शोक की अनुभूति मूल अनुभूति से कहीं अधिक दारुण होती है। उस समय चारों ओर व्याप्त पूर्ण शून्यता असह्य होती है। शून्यता या अभाव की परिस्थिति में कोई आधार नहीं रहता तथा अभाव या शून्यता स्वयं उद्दीपन का काम करने लगते हैं। इस प्रकार शोक की अनुभूति विशेष रूप से वेदनामय बन जाती है। करुण की इस प्रकार की अनुभूति को रस की दृष्टि से उत्कृष्टता प्रदान की जा सकती है।

अयोध्या नगरी की शून्यता का दृश्य उपस्थित करते हुए कवि कहता है—

'राहुशत्रोः प्रियां पत्नीं श्रिया प्रज्वलितप्रभाम्।
ग्रहेणाभ्युदितेनैकां रोहिणीमिव पीडिताम्॥'

—अयो० का० ११४/३

जैसे पुण्य क्षय होने के कारण सहसा अपने स्थान से भ्रष्ट होकर आकाश से पृथ्वी पर गिरी हुई तारिका की विस्तृत प्रभा क्षीण हो जाती है, उसी प्रकार अयोध्या शोभाहीन हो गयी थी—

'सहसाचरितां स्थानान्महीं पुण्यक्षयाद्गताम्।'
संहृतद्युतिविस्तारां तारामिव दिवश्च्युताम्॥'

—अयो० का० ११४/११

पिता दशरथ के निवास-स्थान की शून्यता को देखकर भरत फूट-फूटकर रोते हैं। उनके दुःख तथा अभावगत वेदना का अनुमान लगाने के लिए कवि ने एक समान अनुभूति का उदाहरण दिया है कि भरत को उसी प्रकार अत्यन्त दुःख हुआ जिस प्रकार देवासुर संग्राम में सूर्य के अभाव को देखकर देवता लोग दुखी होते हैं—

'तदा तदन्तःपुरमुज्झितप्रभं, सुरैरिवोत्कृष्टमभास्करं दिनम्।
निरीक्ष्य सर्वत्र विभक्त मात्मवान्, मुमोच वाष्पं भरतः सुदुःखितः॥'

—अयो० का० ११४/२९

सीताहरण प्रसंग में करुण रस

सीता-हरण का प्रसंग भी रामकथा का मुख्य अंग है। आदिकवि ने सीता-हरण का अति विस्तृत एवं प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है। इसमें सीता तथा राम के वियोग का वर्णन हुआ है। इस प्रसंग को विप्रलम्भ श्रृंगार के अन्तर्गत भी रखा जा सकता है किन्तु सीता को विश्वास ही नहीं था कि उसके अपहरण की सूचना राम तक पहुंच सकेगी। उधर राम को विश्वास नहीं था कि सीता मिल सकेगी। क्योंकि वे यह मान बैठे थे कि सीता को राक्षस मारकर खा गए होंगे। इस सम्बन्ध में राम का विश्वास इन शब्दों में प्रकट हुआ है—

'सुव्यक्तं राक्षसैः सीता भक्षिता वा हुताऽपि वा ।' —अर० का० ६२/७

अतः सीता का पता लगने से पूर्व तक का वर्णन करुण का निराशा तथा निरपेक्षता के अन्तर्गत आता है ।

सीता हरण प्रसंग में एक विशेषता है कि सीता राम का विरह चराचर जगत् की सहानुभूति की अपेक्षा रखता है । उस भयावह निर्जन वन में उनका कौन था, यह वास्तविकता अपने आप में सत्य है किन्तु अपनी भाव भूमि को चराचर जगत के लिए उन्मुक्त कर देना भी तो हर एक का काम नहीं है । ऐसा तो राम जैसे वन्दनीय आदर्श चरित्रों से ही सम्भव है । कवि की यह योजना निश्चय ही आध्यात्मिक जगत् की अभूतपूर्व झांकी है ।

सीता की शोकावस्था

दुष्ट रावण सीता का हरण कर ले जा रहा है, उस निर्जन वन में कौन उस देवी की सहायता करता, कौन उसके करुण क्रन्दन को सुनता, ऐसा कोई माध्यम नहीं था, जिसके द्वारा जानकी इस भयावह दुखद घटना की सूचना अपने प्रियतम तक पहुंचाती । ऐसे दारुण समय पर दुखी व्यक्ति जड़-चेतन के अन्तर को भूल जाता है । प्रकृति के जो भी तत्व उसे दृष्टिगोचर होते हैं, उन्हीं से वह अपनी करुण-व्यथा कहता चला जाता है ।

इसीलिए सीता अपने हरण की सूचना राम तक पहुंचाने के लिए वन-देवता, वृक्षों, पर्वतों तथा पक्षियों को सम्बोधित करती हैं और उनसे कहती हैं—

'आमन्त्रये जनस्थाने कर्णिकारांश्च पुष्पितान् ।'
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः ।।
हंस सारस संघुष्टां वन्दे गोदावरीं नदीम् ।
क्षिप्रं रामाय शंस त्व सीतां हरति रावण ।।'

—अर० का० ४९/३०-३१

मार्ग में गृध्रराज जटायु को देखकर वह दुःख भरी वाणी में करुण-क्रन्दन करते हुए कहती हैं—

'जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत् ।
अनेन राक्षसेन्द्रेणाकरुणं पापकर्मणा ।।' —अर० का० ४९/३८

तत्पश्चात् जटायु एवं रावण का भयानक युद्ध होता है । रावण के प्रबल प्रहारों से वृद्ध जटायु धराशयी हो जाते हैं तब गृध्रराज की ओर देखकर चन्द्रमुखी सीता विलाप करती हुई कहती हैं--

'त्राहि मामद्य काकुत्स्थ लक्ष्मणेति वरांगना ।
सुसंत्रस्ता समाक्रन्दच्छृण्वतां तु यथान्तिके ॥' —अर० का० ५२/५

रावण पुनः बलपूर्वक वैदेही को उठाकर ले जाता है । सीता का हरण होते देख सूर्यदेव की प्रभा नष्ट सी हो जाती है । वन्य पशु भी एकत्र होकर विलाप करने लगते हैं—

'ह्रियमाणां तु वैदेहीं दृष्ट्वा दीनो दिवाकरः ।
प्रविध्वस्तप्रभः श्रीमानासीत् पाण्डुरमण्डलः ॥
नास्ति धर्मः कुतःसत्यं नार्जवं नानृशंसता ।
यत्र रामस्य वैदेहीं सीतां हरति रावणः ॥
इति भूतानि सर्वाणि गणशः पर्यदेवयन् ।
वित्रस्तका दीनमुखा रुरुदुर्मृगपोतकाः ॥'
—अर० का० ५२/३८-४०

न केवल सूर्यादि देवता अपितु अरण्यवासी पशु, पक्षी भी सीता के शोक में पूर्णरूपेण सम्मिलित हैं और अपना दुःख प्रकट करते हैं ।

सीताहरण पर राम का शोक

मायावी स्वर्णमृग का वध करके अपनी पर्णशाला में लौटते समय मार्ग में अनेक प्रकार के अपशकुनों से राम का अन्तःकरण व्यथित होने लगा । उनकी बायीं आंख की नीचेवाली पलक जोर-जोर से फड़कने लगी । वे चलते-चलते लड़खड़ा गए और उनके शरीर में कम्पन होने लगा । उन्होंने पर्णशाला को चारों ओर से देखा वह सूनी थी । जैसे हेमन्त ऋतु में कमलिनी हिम से ध्वस्त हो श्रीहीन हो जाती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक पर्णशाला कान्तिहीन हो गयी थी—

'ददर्श पर्णशालां च सीतया रहितां तदा ।
श्रिया विरहितां ध्वस्तां हेमन्ते पद्मिनीमिव ॥' —अर० का० ६०/५

वन में प्रयत्नपूर्वक ढूंढने पर भी सीता का पता न लगा, तो वे उन्मत्त के समान दिखाई देने लगते हैं । उनका चेतनाचेतन का विवेक जाता रहता है । शोकसागर में डूबे हुए राम विलाप करते हुए वृक्षों से पूछते हैं—

'अस्ति कच्चित्वया दृष्टा सा कदम्बप्रिया प्रिया ।
कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां शुभाननाम् ॥
स्निग्ध पल्लवसंकाशां पीतकौशेयवासिनीम् ।
शंसस्व यदि सा दृष्टा बिल्व बिल्वोपमस्तनी ॥'
—अर० का० ६०/१२-१३

इसी प्रकार वे अन्य वृक्षों एवं वन्य पशु-पक्षियों से सीता का समाचार पूछते हैं किन्तु कहीं से कोई प्रत्युत्तर न पाकर उनकी अवस्था उन्मत्त सी हो जाती है। वे तरह-तरह से प्रलाप करने लगते हैं—

'व्यक्तं सा भक्षिता बाला राक्षसैः पिशिताशनैः ।
विभज्यांगानि सर्वाणि मया विरहिता प्रिया ॥'

—अर० का० ६०/३०

यह निश्चय कर लेने पर कि सीता को राक्षसों ने मार डाला राम का हृदय टूक-टूक होने लगा। वे सीता के सुन्दर अंगों का स्मरण कर करुण विलाप करने लगे—

'नूनं तच्छुभदन्तोष्ठं सुनासं शुभकुण्डलम् ।
पूर्णचन्द्रनिभं ग्रस्तं मुखं निष्प्रभतांगतम् ॥
सा हि चम्पकवर्णाभा ग्रीवा ग्रैवेयकोचिता ।
कोमला विलपन्त्यास्तु कान्ताया भक्षिता शुभा ॥
नूनं विक्षिप्यमाणौ तौ बाहू पल्लवकोमलौ ।
भक्षितौ वेपमानाग्रौ सहस्ताभरणागंदौ ॥'

—अर० का० ६०/३१-३३

सीता के संकट का उत्तरदायी स्वयं को मानकर राम और अधिक दुःखी होकर कहने लगते हैं—

'हा लक्ष्मण महाबाहो पश्यसे त्वं प्रियां क्वचित् ।
हा प्रिये क्वगता भद्रे हा सीतेति पुनः पुनः ॥'

—अर० का० ६०/३५

इस तरह विलाप करते हुए वे एक वन से दूसरे वन में दौड़ने लगते हैं, वे कहीं सीता की समानता पाकर उद्भ्रान्त हो उठते हैं और कहीं शोक की प्रबलता के कारण विभ्रान्त हो जाते हैं। अपनी प्रियतमा की खोज करते हुए वे कभी-कभी पागलों की सी चेष्टा करते हैं—

'इत्येवं विलपन् रामःपरिधावन् वनाद् वनम् ।
क्वचिदुद्भ्रमते वेगात् क्व चिद् विभ्रमते बलात् ॥
क्वचिन्मत इवाभाति कान्तान्वेषणतत्परः ।
स वनानि नदीः शैलान् गिरिप्रस्रवणानि च ॥
काननानि च वेगेन भ्रमत्यपरिसंस्थितः ॥'

—अर० का० ६०/३६-३७

यह प्रसंग करुण रस की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। सीता के प्राण राम

थे। और राम के प्राण सीता थीं। वे एक-दूसरे के बिना जीवित रहने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। जन्म से जिस जानकी ने सर्वविध सुख ऐश्वर्य आदि के अतिरिक्त, दुःख, दरिद्रता आदि किस को कहते हैं, यह कभी सोचा भी नहीं था। वही सीता अपने पति के प्रेम को जीवन का सर्वस्व मानकर वन के दारुण कष्टों का आलिंगन करने के लिए स्वेच्छा से सहर्ष वन में आई थीं। पति के साथ रहते हुए उन्हें वन की कठोर भूमि कोमल शय्या के समान, कन्दमूल आदि स्वादिष्ट व्यंजनों के समान तथा कण्टक सुकुमार प्रसूनों के समान प्रतीत होते थे। ऐसी प्राण-प्रिया सीता का अपहरण होने पर राम की जो असह्य दुःखावस्था हुई, उसका सटीक एवं हृदय-ग्राही चित्रण कवि ने किया है। अनेक अनुभावों की योजना करके करुण रस को अत्यधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयास पूर्णरूपेण सफल हुआ है।

यहां पर राक्षसकीर्ण निर्जन वन में सीता का अपहरण आलम्बन विभाव है। राम का वन के कदम्ब आदि वृक्षों, मृगादि, पशु-पक्षियों से सीता के विषय में पूछना, उन्मत्त होकर सीता को सम्बोधित करना, सीता के अनवद्य सौन्दर्य मण्डित अंगो को स्मरण कर विकल होना उद्दीपन विभाव है। उद्भ्रान्त होना, एक वन से दूसरे वन में दौड़ना, कहीं पर भी विश्राम न करते हुए, नदियों के तटों, पर्वतों के शिखरों पर सीता की खोज करना, कृशांग निस्संज्ञ, निश्चेष्ट, आर्त्त और दीन हो जाना, बार-बार उष्ण और दीर्घ श्वास लेना अनुभाव है। विषाद, दैन्य, चिन्ता, मोह, आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट राम के अन्तःकरण में स्थित शोक स्थायी भाव व्यंजित होकर करुण रस की चर्वणा करा रहा है।

आत्मग्लानि—सीता-हरण के बाद राम का हृदय आत्म ग्लानि से अत्यधिक व्याकुल हो उठता है। समस्त घटनाचक्र का मूल कारण स्वयं को मानकर उनका निष्पाप हृदय हाहाकार करने लगता है। वे लक्ष्मण से अपने भाग्य को कोसते हुए कहते हैं—

'राज्यं भ्रष्टं वने वासः सीता नष्टा मृतो द्विजः।
ईदृशीयं ममालक्ष्मीर्दहेदपि हि पावकम्॥'

—अर० का० ६७/२४

राम समस्त विपत्तियों का कारण स्वयं को ही मानते हैं। राज्य का छिन जाना, वनवास, पिता की मृत्यु, सीता का अपहरण तथा जटायु की मृत्यु का कारण वे अपने दुर्भाग्य को ही मानते हैं। उन्हें संसार में अपने से अधिक भाग्यहीन कोई नहीं दिखाई देता।

'नास्त्यभाग्यतरो लोके मतोऽस्मिन् स चराचरे।
येनेयं महती प्राप्ता मया व्यसनवागुरा॥'

—अर० का० ६७/२६

राम द्वारा आत्मग्लानि में कहे गये इन शब्दों में उनकी विरह-व्यथा ध्वनित हो रही है। जब कोई व्यक्ति स्वयं को शोक-सागर में आकण्ठ निमग्न देखता है, तभी वह इस प्रकार सभी दु:खों का कारण अपने भाग्य को मानने लगता है।

अशोक वाटिका में स्थित सीता की करुणापूर्ण दशा

विशाल समुद्र को पार कर वीर हनुमान लंका नगरी में पहुंचकर सीता की खोज करते हुए अशोक वाटिका में पहुंच जाते हैं। वहां पर सीता की दयनीय अवस्था को देखकर उनका हृदय करुणा से भर आता है। उनकी करुणापूर्ण व्यथा का इस तथ्य से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनको इस दशा में देखकर सहसा ही हनुमान के नेत्रों से आंसुओं की धारा बहने लगती है। हनुमान के हृदय में उत्पन्न शोक का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—

'हिमहतनलिनीव नष्टशोभा, व्यसनपरम्परया निपीड्यमाना।
सहचररहितेव चक्रवाकी, जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना॥'
—सु० का० १६/३०

कवि ने इस प्रसंग में सीता की व्यथा का वर्णन प्रत्यक्षदर्शी पात्र के मुख से कराकर जहां परिस्थिति की गम्भीरता का परिचय दिया, वहां सीता को मौन रखकर उनकी गम्भीर वेदना तथा भारतीय नारी की विशेष विरह-भावना पर भी प्रकाश डाला है। आदिकवि ने सीता की वेदना को उसके मुख से कहलाने की अपेक्षा अनुभावों के माध्यम से प्रकट करना अधिक उपयुक्त मानकर हनुमान के मुख से अभिव्यक्त किया है।

रावण सीता को विभिन्न प्रकार की यातनाएं दे रहा था। हजारों भयानक आकृतियों वाली दुष्ट राक्षसियां सदैव उनको चारों ओर से घेरकर अनेक प्रकार के प्रलोभनों से डरा-धमकाकर रावण के वश में करने के लिए घृणित प्रयास करती रहती थीं। इस प्रकार के भयावह दमघोटू वातावरण में सीता का एक-एक पल बड़ी कठिनाई से बीत रहा था। उनके नेत्रों में सदैव आंसू बहते रहते थे। हनुमान ने देखा कि जैसे वन में अपने यूथ से बिछुड़ी हुई मृगी भेड़ियों से पीड़ित होकर भय के मारे कांपती है, उसी प्रकार सीता जोर-जोर से कांप रही हैं और इस तरह सिकुड़ी जा रही हैं, मानो अपने अंगों में ही समा जायेंगी—

'वेपते स्माधिकं सीता विशन्तीवांगमात्मनः।
वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता॥' —सु० का० २५/५

राम आदि का स्मरण करते हुए सीता कहती हैं—

'हा रामेति च दु:खार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च।
हा श्वश्रूर्मम कौसल्ये हा सुमित्रेति भामिनी॥' —सु० का० २५/११

सीता के चन्द्रवदन पर निरन्तर आंसुओं की धारा बह रही है। वे करुण विलाप करती हुई ऐसी प्रतीत होती हैं मानों उन्मत्त हो गयी हों, अथवा उन पर भूत सवार हो गया हो या पित्त बढ़ जाने से पागलों का सा प्रलाप कर रही हों अथवा दिग्भ्रम आदि के कारण उनका चित्त भ्रान्त हो गया हो। वे शोक मग्न हो धरती पर लोटती हुई बछड़ी के समान छटपटाती हैं—

'प्रसक्ताश्रुमुखी त्वेवं ब्रुवती जनकात्मजा।
अधोगतमुखी बाला विलप्तुमुपचक्रमे॥
उन्मत्तेव प्रमत्तेव भ्रान्तचित्तेव शोचती।
उपावृत्ता किशोरीव विचेष्टन्ती महीतले॥' —सुन्दरकाण्ड २६/१०२

अपने आप को धिक्कारती हुई सीता कहती हैं—

'अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम्।
हृदयं मम येनेदं न दुःखेन विशीर्यते॥
धिङ् मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता।
मुहूर्त्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका॥' —सु० का० २६/६-७

राम के विरह में विलाप करती हुई सीता प्राण- परित्याग के लिए उद्यत हो कर कहती हैं—

'हा राम हा लक्ष्मण हा सुमित्रे, हा राममातः सह मे जनन्यः।
एषा विपद्याम्यहमल्पभाग्या, महार्णवे नौरिव मूढवाता॥'
—सु० का० २८/८

सीता का अन्तःकरण प्रतिपल शोकाग्नि में दग्ध हो रहा है। दुष्ट राक्षस की कारा में वे अपने जीवन की आशा त्याग चुकी हैं। इसलिए अपने समस्त प्रियजनों को स्मरण करती हैं। उनके करुण विलाप में मन की समस्त वेदना मुखरित हो रही है। अपने प्राण वल्लभ को स्मरण करते हुए वे आह्वान करती हैं—

'हा राम सत्यव्रत दीर्घबाहो
हा पूर्णचन्द्रप्रतिमानवक्त्र।
हा जीवलोकस्य हितः प्रियश्च,
वध्यां न मां वेत्सि हि राक्षसानाम्॥' —सु० का० २८/११

माया-निर्मित राम के कटे सिर को देखकर सीता का शोक

रावण ने जानकी को जितनी यातनाएं दी उनमें सर्वाधिक कष्टकर तथा भयानक यातना प्रस्तुत प्रसंग में प्रकट हुई है—रावण ने सीता के हृदय को राम की ओर से हटाने के लिए मायारचित राम के कटे हुए सिर को उसके सामने लाकर

रख दिया और बताया कि प्रहस्त ने सोते हुए राम का सिर काट डाला। जिस राम के लिए वह हर क्षण रोती है तथा जिसके विरह में विकल है, वह राम अब इस संसार में नहीं रहे। सीता को सर्वप्रथम तो विश्वास नहीं हुआ, इसीलिए उसने राम के धनुष, कुण्डल, नेत्र आदि को ध्यान से देखा तथा और भी अनेक प्रकार से निरीक्षण किया किन्तु वह सिर इतनी कुशलता से बनाया गया था कि शंका करने के लिए कोई आधार न मिला और यह निश्चय हो गया कि वास्तव में रावण ने राम का सिर कटवा लिया है। इस हृदय विदारक अनुभूति के निश्चय के साथ ही उनको राम वनवास के मूलकारण की कष्टकर स्मृति हो आई। कैकेयी की कुत्सित नीति आज सफल हो गयी। कुररी के समान रोते हुए उनके मुख से सहसा ये शब्द निकल पड़े--

'सकामा भव कैकेयि हतोऽयं कुलनन्दनः
कुलमुत्सादितं सर्वं त्वया कलहशीलया ॥' —यु० का० ३२/४

दुःख के कारण सीता थर-थर कांपने लगती हैं और कटी हुई कदली के समान पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं—

'एवमुक्त्वा तु वैदेही वेपमाना तपस्विनी।
जगाम जगतीं बाला छिन्ना तु कदली यथा ॥' —यु० का० ३२/६

सीता की शोकानुभूति विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त होकर करुण रस की मार्मिक व्यंजना करती हैं। सीता करुण क्रन्दन करते हुए अपने राम को स्मरण करती हुई कहती हैं—

'हा हतास्मि महाबाहो वीरव्रतमनुव्रत।
इमां ते पश्चिमावस्थां गतास्मि विधवा कृता ॥' यु० का० ३२/८

रावण द्वारा अपहरण किये जाने पर शोकसागर में डूबी हुई सीता आशा करती थी कि वीर राम उनका उद्धार करेगें, किन्तु वे स्वयं शत्रुओं द्वारा मारे गये—

'महद् दुःखं प्रपन्नाया मग्नायाः शोकसागरे।
यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽपि त्वं विनिपातितः ॥' —यु० का० ३२/१०

इस समय सीता को ज्योतिषियों की भविष्यवाणी स्मरण आ रही है, जिसमें उन्होंने कहा था कि राम दीर्घायु होंगे वे कथन आज मिथ्या हो गये थे। राम तो अल्पायु में ही प्रयाण कर चले थे—

'उद्दिष्टं दीर्घमायुस्ते दैवज्ञैरपि राघव।
अनृतं वचनं तेषामल्पायुरसि राघव ॥' यु० का० ३२/१२

वह रात्रि सीता के लिए क्रूर कालरात्रि बनकर आई थी, जिसने उनके प्राणस्वरूप पति को उनसे छीन लिया था—

'तथा त्वं सम्परिष्वज्य रौद्रयातिनृशंसया ।
कालरात्र्या ममाच्छिद्य हृतः कमललोचन ॥' —यु० का० ३२/१५

लक्ष्मण और सीता वन में राम के साथ आये थे, किन्तु राम के इस संसार से चले जाने पर सीता भी जीवित नहीं रह सकेगी और जब एकाकी लक्ष्मण अयोध्या लौटेंगे, वह क्षण माता कौसल्या के लिए कितना कठोर होगा—

प्रव्रज्यामुपपन्नानां त्रयाणामेकमागतम् ।
परिप्रेक्ष्यति कौसल्या लक्ष्मणं शोकलालसा ॥' यु० का० ३२/२५

इसी शोकानुभूति में सीता माता कौसल्या के हृदय में उत्पन्न होने वाली वेदना की कल्पना इस प्रकार करती है—

'सा त्वां सुप्तं हतं ज्ञात्वां मां च रक्षोगृहं गताम् ।
हृदयेनावदीर्णेन न भविष्यति राघव ॥' —यु० का० ३२/२७

राम की मृत्यु का कारण स्वयं को मानकर सीता का अन्तःकरण आत्मग्लानि से भर आता है और उनकी आत्मग्लानि निम्न रूप में प्रकट होती है—

'मम हेतोरनार्याया अनघः पार्थिवामतजः ।
रामः सागरमुत्तीर्य वीर्यवान् गोष्पदे हतः ॥' यु० का० ३२/२८

मुझ कुलकलंकिनी के साथ विवाह करके तुमने बड़ी भूल की क्योंकि मेरे कारण ही तुम्हारी मृत्यु हुई—

'अहं दाशरथेनोढा मोहात् स्वकुल पांसनी ।
आर्यपुत्रस्य रामस्य भार्या मृत्युरजायत ॥' यु० का० ३२/२९

निश्चय ही पूर्वजन्म में मैंने किसी के दानधर्म में बाधा डाली होगी ।

'नूनमन्यां मया जातिं वारितं दानमुत्तमम् ।
याहमद्येव शोचामि भार्यासर्वातिथेरिह ॥' यु० का० ३२/३०

दुःख-सन्तप्त विशाललोचना सीता पति के मस्तक तथा धनुष को बार-बार देखकर अत्यधिक विलाप करती है—

'इतीव दुःखसन्तप्ता विललापायतेक्षणा ।
भर्त्तुः शिरो धनुश्चैव ददर्श जनकात्मजा ॥' यु० का० ३२/३३

यहां पर राम आलम्बन विभाव हैं । उनका कटा हुआ मस्तक तथा उस पर मांसभक्षी हिंसक जन्तुओं का मंडराना उद्दीपन विभाव है ; सीता का थर-थर

कामना, मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ना, आंसू बहाना तथा राम के गुणों का स्मरण कर विलाप करना अनुभाव है। विषाद, मोह, स्मृति, चिन्ता, दैन्य आदि संचारी भावों से परिपुष्ट सीता के अन्तःकरण में स्थित शोक स्थायी भाव व्यंग्य है।

इसी प्रकार का एक दूसरा प्रसंग भी युद्धकाण्ड में आया है। इन्द्रजित् ने युद्ध में राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों को विषधर सर्पतुल्य बाणों से घायल कर दिया है। दोनों वीरों के अंगों से झरने की तरह रक्त बह रहा है और वे दोनों शर-शय्या पर पड़े हुए हैं। इस भीषण दृश्य को सीता को दिखलाने की रावण ने योजना की और उसने सीता को पुष्पक विमान पर बैठाकर यह दृश्य दिखलाया। उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरों को उस अवस्था में शर-शय्या पर पड़ा देख दुःख सन्तप्त सीता करुणाजनक स्वर में जोर-जोर से विलाप करने लगती हैं---

'शरतल्पगतौ वीरौ तथाभूतौ नरर्षभौ।
दुःखार्त्ता करुणं सीता सुभृशं विललापह।-' —यु० का० ४७/२३

उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे और हृदय शोक के आघात से पीड़ित था। सीता के शोक में निम्नलिखित तथ्य प्रकट हुए हैं—

सामुद्रिकों की भविष्यवाणियां मिथ्या सिद्ध हुईं—

'ऊचुर्लाक्षणिका ये मां पुत्रिण्यविधवेति च।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः॥' यु० का० ४८/२

ज्योतिषियों ने सीता को नित्य मंगलमयी कहा था, किन्तु वह तो असमय में ही विधवा हो गयी थी—

'यज्वनो महिषीं ये मामूचुः पत्नीं च सत्रिणः।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः॥
वीरपार्थिवपत्नीनां ये विदुर्भर्तृपूजिताम्।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृत वादिनः॥' —यु० का०४८/३-४

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जब मानव विपत्तियों में फंसा हुआ हो, तो वह अपने अतीत के स्वर्णिम दिनों को स्मरण करता है और उसके स्मृतिपटल पर भविष्यवक्ताओं द्वारा की गयी भविष्यवाणियां तथा महापुरुषों द्वारा प्रदत्त आशीर्वचन जाग उठते हैं। उनको स्मरण कर दुःख का आवेग तीव्र हो जाता है। यहां पर सीता की भी यही अवस्था है। जन्मकाल से ही सभी ने सीता को मंगलमयी माना था, किन्तु उसके जीवन में कितने अमंगल, हृदय विदारक प्रसंग उपस्थित हो गये हैं।

उपर्युक्त दो प्रसंग करुण रस की कष्टप्रद वेदना को प्रस्तुत करने तथा सीता की यातना को अति दारुण रूप में प्रकट करने के लिए प्रस्तुत किये हैं।

माया द्वारा निर्मित सीता के वध पर राम का शोक

राम एवं वानर-वीरों के महान उत्साह को नष्ट करने के लिए रावण ने माया द्वारा निर्मित सीता के वध का षड्यन्त्र बनाया। हनुमान से सीता-वध का समाचार पाकर राम असह्य शोक से व्यथित होकर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर जड़ से कटे हुए वृक्ष की भांति गिर पड़ते हैं—

'तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्च्छितः।
निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥' —यु० का० ८३/१०

लक्ष्मण की मूर्च्छा पर राम का शोक

लक्ष्मण की मूर्च्छा तथा लक्ष्मण शक्ति इन दोनों अवसरों पर राम की करुणा अत्यन्त मार्मिक रूप में मुखरित हुई है। युद्ध में राम और लक्ष्मण दोनों इन्द्रजित् के तीरों से मूर्च्छित हो गये थे। अपनी मूर्च्छा टूटने पर लक्ष्मण को मूर्च्छितावस्था में देखकर राम बिलख उठते हैं। लक्ष्मण बाणों से घायल होकर खून से लथपथ हुए पड़े हैं, उनका मुखचन्द्र निस्तेज हो गया है अतः राम आतुर होकर विलाप करने लगते हैं—

'किं नु मे सीतया कार्यं लब्धया जीवितेन वा।
शयानं योऽद्य पश्यामि भ्रातरं युधिनिर्जितम् ॥' —यु० का० ४९/५

सुमित्रानन्दन के जीवित न रहने पर राम अपने प्राणों का परित्याग कर देना चाहते हैं—

'परित्यक्ष्याम्यहं प्राणान् वानराणां तु पश्यताम्।
यदि पंचत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥'—यु० का० ४९/७

वे विलाप करते हुए कहते हैं कि इस मर्त्यलोक में ढूंढने पर सीता जैसी स्त्री तो मिल सकती है किन्तु लक्ष्मण जैसा भाई कहां मिलेगा ?—

'शक्या सीता समा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता।
न लक्ष्मण समो भ्राता सचिवः साम्यसायिकः ॥'—यु० का० ४९/६

राम को यह चिन्ता व्याकुल कर रही है कि जब वे लक्ष्मण के बिना अकेले अयोध्या लौटेंगे तो अपनी माता कौसल्या और कैकेयी को क्या उत्तर देंगे ? कुररी के समान रोती बिलखती माता सुमित्रा का धैर्य कैसे बंधायेंगे ?—

'किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां च मातरं किं नु कैकेयीम्।
कथमम्बां सुमित्रां च पुत्रदर्शनलालसाम् ॥
विवत्सां वेपमानां च वेपन्तीं कुररीमिव।
कथमाश्वासयिष्यामि यदि यास्यामि तं विना ॥'
—यु० का० ४९/८-९

राम के इन शब्दों में कितनी मार्मिक व्यथा है। राम का यह विलाप जिन वानरों ने सुना वे सब रो पड़े, उनकी आंखों से आंसू बहने लगे—

शुश्रुवुस्तथा ये सर्वे वानराः परिदेवितम्।
वर्त्तयांचक्रिरेऽश्रूणि नेत्रैः कृष्णेतरेक्षणाः।।'—यु० का० ४९/३१

यहां पर लक्ष्मण आलम्बन विभाव हैं। युद्ध भूमि में उनके मूर्च्छित शरीर को देखकर वीरता आदि का स्मरण उद्दीपन विभाव हैं। राम का विलाप करते हुए आंसू बहाना, वानरों के नेत्रों में से भी अश्रु प्रवाहित होना अनुभाव है। विषाद, मोह, चिन्ता दैन्य आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट राम के अन्तःकरण में स्थित शोक स्थायीभाव व्यंग्य है।

लक्ष्मण शक्ति-प्रसंग में करुण रस

रावण के कठोर प्रहारों से पुनः लक्ष्मण का मर्मस्थल बुरी तरह विदीर्ण हो गया था। वे भयानक वेदना से कराह रहे थे। युद्धभूमि में अपने प्रिय अनुज की इस गम्भीर अवस्था को देखकर राम शोक से कातर हो उठे। बहुत व्यथित होकर विलाप करते हुए कहने लगे—

लज्जतीव हि मे वीर्यं भ्रश्यतीव कराद् धनुः।
सायका व्यवसीदन्ति दृष्टिर्वाष्पवशं गता।।'—यु० का० १०१/६

राम के अंग शिथिल हुए जा रहे हैं, उनकी चिंता बढ़ रही है। अपने भाई को कराहता हुआ देखकर वे स्वयं मृत्यु का आलिंगन करने के लिए तत्पर हो जाते हैं—

'अवसीदन्ति गात्राणि स्वप्नयाने नृणामिव।
चिन्ता में वर्धते तीव्रा मुमूर्षापि च जायते।।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा रावणेन दुरात्मना।
विष्टनन्तं तु दुःखार्त्तं मर्मण्यभिहतं भृशम्।।'—यु० का० १०१/७-७

जैसे चान्द्रमसीज्योत्स्ना नेत्रहीन के मन को आह्लादित नहीं कर पाती है, उसी प्रकार युद्ध की विजय भी राम को निरर्थक जान पड़ती है—

'विजयोऽपि हि मे शूर न प्रियायोपकल्पते।
अचक्षुर्विषयश्चन्द्र कां प्रीतिं जनयिष्यति।।' यु० का० १०१/११

प्रत्येक देश में स्त्रियां मिल सकती हैं, बन्धु भी प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु ऐसा कोई देश राम को दिखाई नहीं देता जहां सहोदर भाई मिल सके—

'देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः।।'—यु० का० १०१/१५

राम को सर्वाधिक चिन्ता इस बात की है कि वे अकेले अयोध्या लौटेंगे तो लक्ष्मण के बिना पुत्रवत्सला माता सुमित्रा को क्या उत्तर देंगे ? भरत और शत्रुघ्न को कैसे मुंह दिखायेंगे ? वे मूर्च्छित लक्ष्मण को सम्बोधित कर अपना दुःख प्रकट करते हैं—

'हा भ्रातर्मनुजश्रेष्ठ शूराणां प्रवर प्रभो ।
एकाकी किं नु मां त्यक्त्वा परलोकाय गच्छसि ॥
विलपन्तं च मां भ्रातःकिमर्थं नावभाषसे ।
उत्तिष्ठ पश्य किं शेषे दीनं मां पश्य चक्षुषा ॥'
—यु० का० १०१/२०-२१

इन दोनों प्रसंगों में यह विशेष रूप से अवलोकनीय है कि राम को इन दुःखद स्थलों पर अपने अत्यन्त निकटस्थ आत्मीयजनों की स्मृति आती है। उन सब में सर्वाधिक व्याकुल करने वाली स्मृति होती है सीता की, जो कि रावण की बन्दिनी थी, जिसकी मुक्ति के लिए इतना भयानक युद्ध किया जा रहा था, उनके मन में बार-बार यह भाव उत्पन्न होता था कि कहीं ऐसा न हो स्त्री के लिए प्रियबन्धु का विनाश हो जाए। यदि ऐसा हो गया तो संसार क्या कहेगा ? लोकमर्यादा के प्रभाव में ही राम के मन में इस प्रकार के विचार उठते हैं। क्योंकि राम किसी भी कीमत पर मर्यादाओं का अतिक्रमण नहीं करते थे।

सीता-निर्वासन प्रसंग में करुण रस

लंका से लौट आने के पश्चात् राम ने अयोध्या के राजसिंहासन को सुशोभित किया। उनका सर्वप्रथम एवं सर्वप्रमुख कर्त्तव्य था—प्रजा का अनुरंजन। प्रजा की प्रसन्नता के लिए वे अपनी प्राणप्रिया सीता को भी छोड़ने के लिए उद्यत रहते थे। जो सीता सबके सम्मुख अग्नि-परीक्षा में अपने पावन-चरित्र का प्रमाण प्रस्तुत कर चुकी थीं, लोकापवाद के भय से राम उसी को निर्वासित कर देते हैं। सीता का निर्वासन साहित्येतिहास की एक अति दारुण घटना है। लक्ष्मण को इस कर्म के लिए सीता के साथ भेजा गया। कवि ने इसमें स्वाभाविकता उत्पन्न करने के लिए स्वयं सीता की ओर से वन-दर्शन की इच्छा प्रकट कराके, उसी को पूर्ण कराने के लिए वन जाने की बात कही है। सीता अत्यन्त आनन्दपूर्वक रथ पर आरूढ़ होकर लक्ष्मण के साथ वन जाती हैं। गंगातट पर पहुंचकर स्वयं लक्ष्मण अपने कार्य की गुरुता से कातर हो उठते हैं और उच्च स्वर से रोने लगते हैं। उनकी ग्लानि एवं वेदना इन शब्दों में फूट पड़ती है—

'श्रेयो हि मरणं मेऽद्य मृत्युर्वा यत्परं भवेत् ।
न चास्मिन्नीदृशे कार्ये नियोज्यो लोकनिन्दिते ॥' उ० का० ४७/५

लक्ष्मण के विलाप का कारण सीता की समझ में नहीं आ रहा था, किन्तु जब लक्ष्मण ने वास्तविकता का ज्ञान कराया तो सीता व्याकुल होकर एक क्षण में मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है—

> लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दारुणं जनकात्मजा ।
> परं विषादमागम्य वैदेही निपपात ह ।।' —उ० का० ४८/१

मूर्च्छा टूटने पर जब वह अपने वर्तमान और अतीत के विषय में सोचती हैं तो उन्हें, ऐसा प्रतीत होता है मानों कष्ट सहने के लिए ही विधाता ने उनका शरीर बनाया हो तभी तो सारे दुःखों का समूह मूर्त्तिमान होकर उनके सामने उपस्थित है । अपनी इस आन्तरिक वेदना को लक्ष्मण के सम्मुख करती प्रकट हुई वे कहती हैं—

> 'मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण ।
> धात्रा यस्यास्तया मेऽद्य दुःखमूर्तिप्रदृश्यते ।।' उ० का० ४८/३

वे इस बात से चिन्तित हैं कि अपने प्रियजनों से रहित उस आश्रम में अकेले कैसे निवास करेंगी ? किसके सम्मुख अपना दुःख कहेंगी ? और ऋषियों द्वारा परित्याग का कारण पूछने पर उन्हें क्या उत्तर देंगी ?—

> 'सा कथं ह्याश्रमे सौम्य वत्स्यामि विजनीकृता ।
> आख्यास्यामि च कस्याहं दुःखं दुःखपरायणा ।।
> किं नु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो ।
> कस्मिन् वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना ।।' —उ० का० ६-७

इस प्रसंग में जहां सीता के दारुण दुःख का मर्मस्पर्शी चित्रण आदिकवि ने किया है, वहां सीता के रूप में भारतीय नारी के उज्ज्वल चरित्र की पराकाष्ठा तथा पति के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पण कर सभी प्रकार के कष्टों का सहर्ष आलिंगन करते हुए भी पति के मंगल की ही कामना करने की पावन परम्परा को हृदयग्राही रूप में निरूपित किया है ।

काव्य अथवा नाटक में जो पात्र जितना अधिक गुण-सम्पन्न होगा, उसके कष्टों को देखकर सहृदयों को शोक की उतनी ही प्रबल अनुभूति होगी, यही कारण है कि जगद्वन्द्य राम और सीता के कष्टों के चित्रण में पाठक करुण-रसापगा में आकण्ठ निमग्न हो जाता है, सीता गंगा में डूबकर अपने प्राण त्याग सकती थी, किन्तु राम का राजवंश चलता रहना चाहिए, यह भाव उन्हें इस कार्य से रोक देता है । भयंकर दुःख के इन क्षणों में भी वे लक्ष्मण के सम्मुख अपने प्राण-वल्लभ के लिए जो संदेश देती हैं वह स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है । वे कहती हैं—

'पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धु पतिर्गुरुः ।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्त्तुःकार्यं विशेषतः ।।' —उ० का० ६८/१७

सीता के वचनों को सुनकर लक्ष्मण मर्माहत हो उठते हैं। उनकी वाणी अवरुद्ध हो जाती है । मुख से शब्द नहीं निकल पाता है । वे धरती पर अपना मस्तक रखकर सीता को प्रणाम कर वहां से चल देते हैं—

'मुहुर्मुहुः परावृत्य दृष्ट्वा सीतामनाथवत् ।
चेष्टन्तीं परतीरस्थां लक्ष्मणः प्रययावथ ।।' —उ० का० ४८/२४

लक्ष्मण जाते हुए गंगा के दूसरे तट पर अनाथ की तरह रोती हुई, भूमि पर लोटती हुई सीता को बार-बार मुख घुमाकर देखते हैं ।

सीता की उपर्युक्त उक्तियों में कितनी विवशता, वेदना तथा व्यंग्य भरा हुआ है । महर्षि की करुणा यहां सीता के रूप में मानों साकार हो गयी है ।

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति

बालि-वध पर तारा-विलाप—राम के कठोर प्रहारों से बालि धराशायी हो हो गए । अपने पति को मृतावस्था में देखकर तारा घोर विलाप करने लगी । उसके हृदय के दारुण दुःख को कवि ने अनुभावों तथा कातरता एवं आर्त्तनिवेदन द्वारा अत्यन्त मार्मिक रूप में अभिव्यक्त किया है ।

अनुभाव—शोक से व्याकुल हुई तारा रोती हुई अपने दोनों हाथों से सिर और छाती पीटती है—

'एवमुक्त्वा प्रदुद्राव रुदती शोकमूर्च्छिता ।
शिरश्चोरश्च बाहुभ्यां दुःखेन समभिघ्नती ।।' —कि० का० १९/२०

पति को मरा हुआ देखकर विकल और उद्विग्न होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है—

'तानतीत्य समासाद्य भर्त्तारं निहतं रणे ।
समीक्ष्य व्यथिता भूमौ सम्भ्रान्ता निपपात ह ।।' —कि० का० १९/२६

करुण विलाप करती हुई तारा पति के समीप बैठकर अन्न, जल त्यागकर प्राण-त्याग का निश्चय करती है—

'तथा तु तारा करुणं रुदन्ती, भर्त्तुः समीपे सह वानरीभिः ।
व्यवस्यत प्रायमनिन्द्यवर्णा, उपोपवेष्टुं भुवि यत्र बाली ।।'
—कि० का० २०/२६

कातरता तथा आर्त्त निवेदन

अनेक प्रकार से करुण-क्रन्दन करती हुई तारा अपने हृदय की शोकानुभूति को प्रकट करती हुई कहती है—

'रणेदा रुण विक्रान्त प्रवीर प्लवतां वर ।
किमिदानीं पुरोभागामद्य त्वं नाभिभाषसे ।।' —कि० का० २०/४

बाली महान् वीर थे। उनके जीवित रहते हुए तारा ने अपना जीवन सम्मानपूर्वक व्यतीत किया था। किन्तु अब पति के स्वर्ग चले जाने पर शोक सन्ताप से परिपूर्ण वैधव्य जीवन की दारुण पीड़ा उसके मन को व्यथित करती है—

'वैधव्यं शोक सन्तापं कृपणाकृपणा सती ।
अदुःखोपचिता पूर्वं वर्तयिष्याम्यनाथवत् ।।' —कि० का० २०/१६

ऐसे दुःखद समय में अपने इकलौते लाडले पुत्र अंगद को देखकर तारा के हृदय के दुःख का और अधिक तीव्र हो उठना स्वाभाविक है। क्योंकि जहां पति के न होने का दारुण दुःख उनकी पत्नी तारा को सहन करना था, वहां पिता के न होने पर अंगद भी तो अनाथ हो गया था। इसलिए तारा अपने दुःख से तो दुखित है ही, पुत्र को अनाथ हुआ देखकर उनका पुत्र वत्सल हृदय और भी अधिक पीड़ित हो रहा है। वे अपने लाडले बेटे अंगद के सम्मुख अपनी मनोव्यथा इस प्रकार प्रकट करती हैं—

'कुरुष्व पितरं पुत्र सुदृष्टं धर्मवत्सलम् ।
दुर्लभं दर्शनं तस्य तव वत्स भविष्यति ।।' —कि० का० २०/५८

पति को सम्बोधित करते हुए वह अपना दुःख प्रकट करते हुए कहती हैं—

'समाश्वासय पुत्रं त्वं सन्देशं संदिशस्व मे ।
मूर्घ्नि चैनं समाघ्राय प्रवासं प्रस्थितो ह्यसि ।।' —कि० का० २०/२२

तारा का विलाप सुनकर सम्पूर्ण वातावरण शोकमय हो जाता है। वहां पर विद्यमान वानर-पत्नियां भी अंगद को पकड़कर करुण-क्रन्दन करने लगती हैं—

'तस्याः विलपितं श्रुत्वा वानर्यः सर्वतश्च ताः ।
परिगृह्यांगदं दीना दुःखार्त्ताः प्रतिचुक्रुशुः ।।' —कि०का० २०/२३

तारा के विलाप में कवि ने करुण रस की सशक्त योजना की है। पति की मृत्यु पर उसका हृदय अत्यन्त व्याकुल है। वह अपने भाग्य को कोसने लगती है। पहले उसे वीर की पत्नी होना गौरवशाली प्रतीत होता था, किन्तु वह आज इसी गौरव को दुःख का कारण मानते हुए कहती है—

'शूराय न प्रदातव्या कन्या खलु विपश्चिता।
शूरभार्यां हतां पश्य सद्यो मां विधवां कृताम् ॥' —कि० का० २३/३

वह स्वयं को अगाध एवं विशाल शोक सागर में निमग्न समझ रही है। ऐसे समय में भी उसका हृदय शतधा विदीर्ण नहीं हो रहा है। इसलिए वह स्वयं को धिक्कारते हुए कहती है—

'अश्ममसारमयं नूनमिदं मे हृदयं दृढम्।
भर्त्तारं निहतं दृष्ट्वा यन्नाद्य शतधा कृतम् ॥' —कि० का० २३/११

माता के कहने पर अंगद अपने पिता के चरणों में पड़कर प्रणाम करते हुए कहते हैं—"पिता जी ! मैं अंगद हूं।" किन्तु बालि तो इस संसार से प्रयाण कर चुके थे, वे अपने पुत्र को आशीर्वाद कैसे देते ? इस दृश्य को देखकर तारा का शोक और तीव्र हो उठता है और विक्षिप्त-सा होकर वह अपने मृत पति से कहती हैं—

'अभिवादयमानं त्वामंगदं त्वं यथा पुरा।
दीर्घायुर्भव पुत्रेति किमर्थं नाभिभाषसे ॥' —कि० का० २३/२६

तारा का हृदय इतना अधिक शोक सन्तप्त है कि पति के बिना इस संसार में जीवित रहना भी अच्छा नहीं मानती और अपनी मृत्यु के लिए राम से प्रार्थना करती हैं—

'येनैव बाणेन हतःप्रियो मे, तेनैव बाणेन हिमां जहीहि।
हता गमिष्यामि समीपमस्य, न मां विना वीर रमेत वाली ॥'
—कि० का० २४/३३

यहां पर बालि करुण रस का आलम्बन विभाव है। उसके शूरता आदि गुण तथा युवावस्था में ही राम द्वारा किया गया वध, पुत्र अंगद द्वारा चरण-स्पर्श किये जाने पर भी आशीर्वाद न देना, वानर-स्त्रियों का करुण-क्रन्दन आदि उद्दीपन विभाव हैं। तारा का अपने पति के गुणों को स्मरण करना, बार-बार मूर्च्छित होना, अश्रु बहाना, पृथ्वी पर गिर पड़ना, भुजाओं से हृदय और मस्तक पीटना आदि अनुभाव हैं। विषाद, मोह, चिन्ता, दैन्य आदि संचारी भावों से परिपुष्ट तारा के अन्तःकरण में स्थित शोक स्थायी भाव व्यंग्य है।

बालि-वध पर सुग्रीव का शोक

यद्यपि बालि का वध सुग्रीव के साथ मित्रता होने पर राम ने अपना वचन पूर्ण करने के लिए किया था और राज सिंहासन सुग्रीव की प्रतीक्षा कर रहा था, किन्तु दुःसह शोक-समुद्र में डूबकर करुण-क्रन्दन करती हुई तारा तथा शोक-विह्वल बालि-पुत्र अंगद को दीन अवस्था में देखकर सुग्रीव का सहज भ्रातृप्रेम फूट पड़ता है

और उनके नेत्र भी आंसुओं की वर्षा करने लगते हैं। यह एक ध्रुव सत्य है कि जीवन भर भाई से कितनी ही शत्रुता क्यों न हो, भले ही भाई की मृत्यु का कारण भी स्वयं क्यों न हो, किन्तु सहोदर भ्राता को मृतावस्था में देखकर प्रस्तर हृदय भी द्रवित हो जाता है। मृत्यु जीवन की समस्त शत्रुता को क्षण भर में समाप्त कर देती है। सुग्रीव को परम ग्लानि होती है, उसी के कारण बालि का वध हुआ था। उसकी अन्तरात्मा उसे धिक्कारती है। वे स्वयं को कुल की हत्या का अपराधी मानते हुए स्वयं को जीवन धारण करने के अयोग्य समझते हैं—

'कृत्स्नं तुते सेत्स्यति कार्यमेतन्मय्यप्यतीते मनुजेन्द्रपुत्र।
कुलस्य हन्तारमजीवनार्हं रामानुजानीहि कृतागसं माम्॥'
—कि० का० २४/२३

शोक ऐसा स्थायी भाव है, जो दुःखद प्रसंग पर उपस्थित सभी के हृदयों पर अपना प्रभाव अंकित कर देता है। तारा के करुण विलाप तथा सुग्रीव के अत्यन्त आर्त्त निवेदन को सुनकर रघुकुल तिलक राम के नेत्रों में भी आंसू भर आते हैं—

'इत्येवमार्त्तस्य रघुप्रवीरः, श्रुत्वा वचो वालिजधन्यजस्य।
संजातवाष्पः परवीरहन्ता, रामो मुहूर्त्तं विमना बभूव॥'
—कि० का० २४/२४

इस प्रकार यह प्रसंग भी करुण रस की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

कुंभकर्ण और मेघनाद-वध पर रावण का शोक

महाकवि वाल्मीकि को जहां कहीं करुण रस को चित्रित करने का अवसर प्राप्त होता है, वे उसमें आकण्ठ निमग्न हो जाते हैं। उनके हृदय की करुणा ऐसे प्रसंगों में उन्मुक्त रूप में प्रवाहित होने लगती है, इसीलिए विपक्षी पात्रों के करुण विलाप का वर्णन करने में वे तनिक भी कृपणता प्रदर्शित नहीं करते अपितु उसका भी विशद वर्णन करते हैं।

रावण को राम के साथ होने वाले युद्ध में अपने भाई कुम्भकर्ण और मेघनाद पर बड़ी आशायें थीं, न जाने कितनी बार इन दोनों वीरों ने शत्रुओं का संहार कर विजयश्री रावण को समर्पित की थी। उन्हीं वीरवरों को युद्धभूमि में पृथ्वी का आलिंगन करते हुए देखकर रावण का हृदय फूट पड़ता है।

कुम्भकर्ण-वध पर रावण का शोक

कुम्भकर्ण-वध का समाचार सुनकर शोक-सन्तप्त रावण पृथ्वी पर गिर पड़ता है—

'श्रुत्वा विनिहतं संख्ये कुंभकर्णं महाबलम् ।
रावणः शोकसन्तप्तो मुमोह च पपात च ।।' —यु० का० ६८/६

अति दीन होकर रावण विलाप करने लगता है। उसकी समस्त इन्द्रियां शोक से व्याकुल हो उठती हैं—

'ततः कृच्छ्रात् समासाद्य संज्ञां राक्षसपुंगवः ।
कुम्भकर्णवधाद् दीनो विललापा कुलेन्द्रियः ।।' यु० का० ६८/२

भाई को युद्ध भूमि में मृतावस्था में देखकर रावण रो-रोकर उसके गुणों का स्मरण करते हुए कहते हैं—

'हा वीर रिपुदर्पघ्न कुम्भकर्ण महाबल ।
त्व मां विहाय वै दैवाद् यातोऽसि यमसादनम् ।।' —यु० का० ६८/१०

रावण को कुम्भकर्ण के बिना सारा संसार सारहीन प्रतीत होता है, उन्हें विरक्ति हो जाती है और आत्मग्लानि होने लगती है—

'राज्येन नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया ।
कुम्भकर्णविहीनस्य जीविते नास्ति मे मतिः ।।'
—यु० का० ६८/१७

कुम्भकर्ण के बिना जीवित रहना भी रावण को असम्भव प्रतीत हो रहा है। वह उसी स्थान पर जाने की कामना करता है, जहां उसका छोटा भाई गया है—

'अद्यैव तं गमिष्यामि देशं यत्रानुजो मम ।
नहि भ्रातृन् समुत्सृज्य क्षणं जीवितुमुत्सहे ।।' —यु० का० ६८/१६

रावण को अपने किए दुष्कर्मों का पश्चाताप होता है। विभीषण ने उसको अनेक प्रकार से समझाने का प्रयास किया था किन्तु अविवेकी रावण ने उसकी सारयुक्त बातों को न मानकर मानों स्वयं अपने पैरों पर कुठाराघात किया था। कुम्भकर्ण के मृत्यु रूपी दारुणशोकोत्पादक परिणाम को प्राप्त कर रावण स्वयं को धिक्कारता है—

'तस्यायं कर्मणः प्राप्तो विपाको मम शोकदः ।
यन्मया धार्मिकः श्रीमान् स निरस्तो विभीषणः ।।'
—यु० का० ६८/२३

मेघनाद-वध पर रावण का शोक

पिता के समक्ष तरुण वीर-पुत्र की मृत्यु सर्वाधिक दुःखद घटना है। मेघनाद की मृत्यु पर रावण का पितृ-हृदय शोक-सागर में डूब जाता है। वे मूर्च्छित हो जाते

हैं। रावण को अपने पुत्र के प्रति अत्यधिक स्नेह था। भविष्य की स्वर्णिम आशाओं का केन्द्र भी वही था। अनेक युद्धों में महान् वीरों को पराजित कर वह अपनी अदम्य वीरता का परिचय दे चुका था, ऐसे पुत्र के वध पर रावण उसके गुणों का स्मरण कर उच्च स्वर से विलाप करने लगता है—

'हा राक्षसचमूमुख्य मम वत्स महाबल।
जित्वेन्द्रं कथमद्य त्वं लक्ष्मणस्य वशं गतः॥
ननु त्वमिषुभिः क्रुद्धो भिन्द्याः कालान्तकावपि।
मन्दरस्यापि श्रृंगाणि किं पुनर्लक्ष्मणं युधि॥' —यु० का० ९२/११

रावण को मेघनाद के बिना तीनों लोक और वनों से युक्त यह समस्त वसुधा शून्य-सी प्रतीत होती है—

'अद्य लोकास्त्रयः कृत्स्ना पृथिवी च सकानना।
एकेनेन्द्रजिता हीना शून्येव प्रतिभाति मे॥' —यु० का० ९२/११

सामान्य व्यक्तियों की भांति विलाप करते हुए कह उठता है—

'यौवराज्यं च लंकां च रक्षांसि च परतंप।
मातरं मां च भार्याश्च क्व गतोऽसि विहायनः॥'
—यु० का० ९२/१३

मेघनाद को अपने पिता की मृत्यु पर उसका प्रेतकार्य करना चाहिए था, किन्तु मेघनाद के वध से यह क्रम विपरीत हो गया है, अब पिता को पुत्र का प्रेत-कार्य करना होगा। यह दुःख भी रावण के हृदय को व्यथित कर रहा है—

'मम नाम त्वया वीरगतस्य यमसादनम्।
प्रेतकार्याणि कार्याणि विपरीते हि वर्तसे॥' —यु० का० ९२/१४

यहां पर रावण के हृदय की शोकसरिता सघन रूप से प्रवाहित हो रही है। मेघनाद आलम्बन विभाव है। तरुणावस्था में मृत्यु को प्राप्त होना तथा उसके वीरतादि गुण उद्दीपन विभाव है। रावण का उसके गुणों को स्मरण कर बार-बार मूर्च्छित होना, आंसू बहाना, भूमि पर गिर पड़ना, विलाप करना तथा क्रोधाविष्ट हो जाना अनुभाव है। विषाद, मोह, चिन्ता, दैन्य आदि संचारी भावों से परिपुष्ट होकर आश्रय रावण के अन्तःकरण में स्थित शोक स्थायी भाव करुण रस की मार्मिक व्यंजना कर रहा है।

रावण वध पर विभीषण का शोक

राम-रावण का भयानक युद्ध और युद्ध में रावण की मृत्यु रामायण महाकाव्य की सर्वप्रमुख घटना है। यद्यपि सीता-हरण रूपी अपराध के कारण मृत्यु-दण्ड का

ही पात्र था, किन्तु रावण-वध से केवल एक राक्षस ही इस संसार से विदा नहीं हुआ अपितु महान् शक्तिशाली योद्धा, वेदवेदांग निष्णात विद्वान् स्वर्णमयी लंका का अधिपति इस संसार को छोड़कर सदा-सदा के लिए चला गया था। विभीषण ने बार-बार रावण को समझाया था किंतु जो भविष्य में होना था, उसे कौन टाल सकता था, वह होकर ही रहा। विभीषण रणभूमि में पड़े हुए भाई को देखकर दुःख से आहत होकर विलाप करने लगे। वे रावण के गुणों का स्मरण करते हुए कहते हैं—

'वीरविक्रान्त विख्यात प्रवीण नयकोविद।
महार्हशयनोपेत किं शेषे निहतो भुवि॥
निक्षिप्य दीर्घौ निश्चेष्टौ भुजावंगद भूषितौ।
मुकुटेनापवृत्तेन भास्कराकारवर्चसा॥' यु० का० १०९/२-३

रावण की मृत्यु पर विभीषण को ऐसा लगता है मानों यह वसुधा अनाथ सी हो गयी है। अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम गुणों का आश्रय नष्ट हो गया है—

'गतः सेतुः सुनीतानां गतो धर्मस्य विग्रहः।
गतः सत्त्वस्य संक्षेपः सुहस्तानां गतिर्गता॥
आदित्यः पतितो भूमौ मग्नस्तमसि चन्द्रमा।
चित्रभानुः प्रशान्तार्चिर्व्यवसायो निरुद्यमः॥' —यु० का० १०९/७-७

महाकवि वाल्मीकि ने विभीषण के विलाप का रूपक के माध्यम से अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन प्रस्तुत किया है।

धैर्य ही जिसके पर्ण थे, हठ ही सुन्दर पुष्प था, तपस्या ही बल और शौर्य ही मूल था, उस राक्षसराज रावण रूपी महान्वृक्ष को श्री राघवेन्द्र रूपी प्रचण्ड पवन नें रौंद डाला—

'धृतिप्रवालः प्रसभाग्यपुष्पस्तपो बलः शौर्य निबद्धमूलः।
रणे महान् राक्षसराजवृक्षः, सम्मर्दितो राघवमारुतेन॥'
—यु० का० १०९/९

तेज ही जिसके दांत थे, कुल परम्परा ही पृष्ठभाग थी, क्रोध ही नीचे के अंग थे ओर प्रसाद ही शुण्ड-दण्ड था, वह रावण रूपी गन्धगजराज आज इक्ष्वाकुवंशी राम रूपी सिंह के द्वारा शरीर के विदीर्ण कर दिये जाने से सदा के लिए पृथ्वी पर सो गया है—

'तेजोविषाणः कुलवंशवंशः, कोपप्रसादापरगात्रहस्तः ।
इक्ष्वाकुसिंहावगृहीतदेवः सुप्तः क्षितौ रावणगन्धहस्ती ॥'
—यु० का० १०९/१०

रावण ने विभीषण का घोर अपमान किया था, अपने राज्य से निष्कासित कर दिया था और विभीषण ने राम की शरण में जाकर रावण को पराजित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया था। इस प्रकार वह रावण का प्रबल शत्रु था किन्तु मृत्यु शत्रुता को समाप्त कराने वाला अमोघ साधन है। और फिर रक्त का सम्बन्ध तो इतना दृढ़ होता है कि एक भाई की विषादमय अवस्था को देखकर दूसरे भाई का हृदय स्वतः द्रवित हो जाता है। विभीषण की भी यही स्थिति है। कवि ने उनके विलाप में करुण रस की मार्मिक व्यंजना की है।

रावण की पत्नियों का शोक

रावण की मृत्यु पर समस्त लंका नगरी शोकमग्न हो गयी थी। रावण की पत्नियां इस दारुण समाचार को सुनकर अन्तःपुर से निकल पड़ीं। लोगों के बार-म्बार मना करने पर भी वे केश खोलकर भूमि की धूल में लोटने लगीं क्योंकि पति ही नारी का सर्वस्व होता है। उनके करुण विलाप को कवि ने इस प्रकार निरूपित किया है—

'आर्यपुत्रेति वादिन्यो हा नाथेति च सर्वशः ।
परिपेतुः कवन्धांका महीं शोणितकर्दमाम् ॥' —यु० का० ११०/४

उनके नेत्रों से अश्रु धारायें प्रवाहित हो रही हैं। अपने महापराक्रमी पति को रणभूमि की धूलि में पड़ा हुआ देखकर वे उसके अंगों पर इस तरह गिर पड़ती हैं, मानो वन की कटी हुई लतायें गिर पड़ी हों—

'ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं रणपांसुषु ।
निपेतुस्तस्य गात्रेषु च्छिन्ना वन लता इव ॥' —यु० का० ११०/७

यह प्रसंग अत्यन्त शोकोद्दीपक है। विलाप करती हुई उन स्त्रियों में से कुछ रावण के शरीर से लिपट जाती हैं, कुछ पैर पकड़कर और कुछ गले से लगकर रोने लगती हैं—

'बहुमानात् परिष्वज्य काचिदेनं रुरोद ह ।
चरणौ काचिदालम्ब्य काचित् कण्ठेऽवलम्ब्य च ॥'
—यु० का० ११०/८

यहां पर रावण आलम्बन विभाव है। युद्धभूमि की धूल में पड़ा हुआ उसका विशाल मृत-शरीर उद्दीपन विभाव है। रावण की स्त्रियों का धरती की धूल में

लोटना, केशों को खोल देना, 'हा आर्यपुत्र ! हा नाथ !' की पुकार मचाना, नेत्रों से आंसू बहाना, उसके शरीर पर गिर पड़ना, मूर्च्छित हो जाना, आदि अनुभाव हैं। विषाद, मोह, चिन्ता, दैन्य आदि संचारी भावों से परिपुष्ट होकर रावण की स्त्रियों के अन्तःकरणों में स्थित शोक स्थायी भाव करुण रस की व्यंजना कर रहा है।

महारानी मन्दोदरी का शोक

मन्दोदरी रावण की ज्येष्ठ एवं प्रिय पत्नी थी। रावण का वध होने पर उसके मस्तक पर दुःखों का पर्वत ही टूट पड़ा था। पति को उस अवस्था में देखकर वह अत्यन्त दीन एवं दुःखी हो जाती है।

आदिकवि मानव-मन के कुशल पारखी हैं। अतः उनके प्रत्येक शब्द में स्वाभाविकता के साथ मनोवैज्ञानिकता का पूर्ण समावेश है। कवि ने कहीं पर भी इस गुण की हत्या नहीं होने दी है। यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि किसी की भी मृत्यु हो जाने पर उसके प्रियजन उसके गुणों को स्मरण करके अपना दुःख प्रकट करते हैं, दोषों को भूल जाते हैं। विशेषतः पत्नी, पुत्र, पुत्री, भाई बहन आदि का सम्बन्ध तो ऐसा है कि अपने स्नेह-भाजन के एक-एक गुण को तथा अपने प्रति किए गए स्नेह एवं उपकार को स्मरण करके तड़पते हैं, रोते हैं, बिलखते हैं। यहाँ मन्दोदरी की यही अवस्था है। रावण संसार के लिए कितना ही दुष्ट क्यों न हो, मन्दोदरी का पति है, उसका जीवन-सर्वस्व है। वे अपने पति की वीरता का स्मरण करती हुई कहती है—

'ऋषयश्च महान्तोऽपि गन्धर्वाश्च यशस्विनः।
ननु नाम तपोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गताः॥

स त्वं मानुषमात्रेण रामेण युधि निर्जितः।
न व्यपत्रपसे राजन् किमिदं राक्षसेश्वर॥' —यु० का० १११/४-५

मन्दोदरी को रावण के साथ सुखपूर्वक व्यतीत किए स्वर्णिम दिनों की स्मृति आती है—

'कैलासे मन्दरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने,
देवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता त्वया
विमानेनानुरूपेण या याम्यतुलया श्रिया,
पश्यन्ति विविधान् देशांस्तांस्तांश्चित्रस्रगम्बरा।
भ्रंशिता कामभोगेभ्यः सास्मि वीर वधात् तव॥'
—यु० का० १११/३१-३२

मन्दोदरी अपने पति के क्षत-विक्षत अंग-प्रत्यंग को देख-देखकर व्याकुल होती है। उसने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी जो रावण मृत्यु की भी मृत्यु है, उसको भी कोई मार सकता है। वह निश्चय नहीं कर पाती है कि रावण का वध स्वप्न है या कटु सत्य है—

'हा स्वप्नः सत्यमेवेदं त्वं रामेण कथं हतः ।
त्वं मृत्योरपि मृत्युः स्याः कथं मृत्युवशंगतः ॥' —यु०का० १११/४७

महाकवि ने अत्यन्त विस्तार से अनेक पद्यों द्वारा करुण रस की सृष्टि की है, जिसमें मन्दोदरी का विलाप है, रावण के वीरतादि गुणों का स्मरण है, अतीत में भोगे हुए दिनों की मधुर स्मृतियाँ हैं, रावण के कृतकार्यों की आलोचना है और इन सब के साथ है भविष्य में आने वाले दुःखों की दारुण कल्पनाएं।

वह मृत-पति के चरणों में गिरकर आर्त्त निवेदन करते हुए कहती है—

'नय मामपि दुःखार्त्ता न वर्तिष्ये त्वया विना ।
कस्मात् त्वं मां विहायेह कृपणां गन्तुमिच्छसि ॥
दीनां विलपतीं मन्दां किं च मां नाभिभाषसे ।
दृष्ट्वा न खल्वभिक्रुद्धो मामिहानवगुण्ठिताम् ॥'
—यु० का० १११/६०-६१

मन्दोदरी अनेक प्रकार से विलाप करके अपने अन्तःकरण का दुःख प्रकट करती है। उन्मत्त-सी होकर पति से बार-बार निवेदन करती है कि अपनी प्रिया भार्या से बोलते क्यों नहीं ? उसे अपने गले से लगाते क्यों नहीं ? किन्तु वहां तो रावण का केवल शरीर था। प्राण-पक्षी तो शरीर को छोड़कर परलोक की यात्रा पर जा चुका था। मन्दोदरी का अन्तःकरण आत्मग्लानि से व्याकुल हो रहा है। वह स्वयं को धिक्कारती हुई कहती है—

'धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्रधा ।
त्वयि पंचत्वमापन्ने फलते शोकपीडितम् ॥' —यु० का० १११/५८

विलाप करती हुई मन्दोदरी के नेत्रों में अश्रु भर आते हैं। उसका हृदय स्नेह से द्रवीभूत हो रहा है। वह रोती हुई सहसा मूर्च्छित् हो जाती हैं और उसी अवस्था में रावण के वक्षस्थल पर गिर पड़ती है—

'इत्येवं विलपन्ती सा वाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
स्नेहोपस्कन्नहृदया तदा मोहमुपागमत् ॥
कश्मलाभिहता सन्ना बभौसा रावणोरसि ।
संध्यानुरक्ते जलदे दीप्ता विद्युदिवोज्ज्वला ॥' —यु० १११/८६-८७

इस प्रकार यहां पर रावण आलम्बन विभाव है। रावण का सुन्दर हृष्ट-पुष्ट शरीर जो तीव्र बाणों से आहत होकर रणभूमि की धूल में पड़ा है, उद्दीपन विभाव है। मन्दोदरी का रावण के वीरतादि गुणों को स्मरण करना, अश्रु प्रवाहित करना, अपने भाग्य को कोसना और मूर्च्छित हो जाना अनुभाव हैं। विषाद, मोह, चिन्ता, दैन्य, आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट होकर मन्दोदरी के अन्तःकरण में स्थित शोक स्थायी भाव व्यंजना द्वारा करुण रस की सरिता प्रवाहित कर रहा है।

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति में वर्णित उपर्युक्त प्रसंगों का अवलोकन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि महर्षि वाल्मीकि की दृष्टि में पक्ष और विपक्ष के करुण-रस के वर्णन में कोई अन्तर नहीं है। कवि ने पक्षान्तर्गत पात्रों की करुणा के वर्णन में जिस शब्दावली एवं पदावली का प्रयोग किया है, उतनी ही उदारता से विस्तारपूर्वक विपक्षी पात्रों की करुणा का वर्णन करते हुए किया है—

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि—

१. महर्षि वाल्मीकि प्रथम राम कथाकार एवं प्रथम महाकाव्यकार थे, अतः उनका प्रयास, वस्तु एवं अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों से उदाहरण रूप तथा अनेक दृष्टियों से आदर्श है।

२. यद्यपि कवि का दृष्टिकोण 'वीरवृत्त' का वर्णन है, किन्तु इस महाकृति का प्रेरणास्रोत 'करुणा' है। इसलिए वीरवृत्त में भी करुण रस की प्रमुखता है और इसीलिए इस महाकाव्य की कथा, करुण-कथा बन गई है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

३. वाल्मीकि ने शोक की सभी संभव स्थितियों, परिस्थितियों तथा अनुभूतियों का विस्तृत वर्णन किया है।

४. शोक की मार्मिकता के लिए कवि ने ऐसे स्थलों की भी योजना की है, जहां अभिव्यक्ति में भय और त्रास का सम्मिश्रण हो गया है।

५. कवि की दृष्टि अनुभावों की ओर विशेष रही है। अतः शोक के लिए अपेक्षित सभी अनुभाव इस महाकाव्य में उपलब्ध हैं।

६. कवि की शोकानुभूति का मूल प्रेरणा-स्रोत क्रौंच वनिता का विलाप है। अतः करुण-प्रसंगों में मार्मिकता का उद्घाटन कवि इस विलाप को उपमा देकर करता है।

७. आत्मग्लानि, परिताप तथा वियोगजन्य परिस्थितियों का कवि ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

८. पक्ष के पात्रों की शोकानुभूति के समान ही कवि ने विपक्ष के पात्रों की शोकानुभूति का वर्णन उत्साह पूर्वक किया है।

९. परिताप की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत कवि ने एक लम्बी सूची पाप-गतियों एवं दुर्गतियों की दी है, जो शोकजन्य ग्लानि के साथ तत्कालीन समाज की दशा पर भी प्रकाश डालती है।

१०. अन्त्येष्टियों की विभिन्न स्थितियों का वर्णन करते हुए इष्टनाश के अभाव की उत्तरोत्तर विकसित करुणाभूति का दिग्दर्शन कराया गया है।

११. शोकानुभूति के अन्तर्गत अपने प्रियजनों में से एक को दूसरे के नाश का कारण मानकर अप्रिय निन्दा की गयी है। जैसे लक्ष्मण शक्ति प्रसंग में सीता की उपेक्षा तथा नारी-मात्र की अवहेलना।

१२. कर्त्तव्यपरायणता तथा मर्यादा के साथ लोकनिन्दा एवं लोकापवाद से मुक्ति के प्रसंगों में अभिव्यक्ति सशक्त है।

१३. वियोगावस्था में चराचर जगत् से सहानुभूति प्रकट की गयी है। उपमानों का मानवीकरण किया गया है।

१४. शोक की चरम अभिव्यक्ति, आत्मघात के प्रयत्न एवं मृत्यु की याचना में प्रकट हुई है।

—०—

पंचम अध्याय

वाल्मीकि-रामायण में श्रृंगार-रस एवं वीर-रस का चित्रण

वाल्मीकि-रामायण में शृंगार-रस

रामकथा में राम और सीता का आदर्श प्रेम कथा का मुख्य आधार है। सीता का राम के साथ वनगमन, राम का सीता के लिये महायुद्ध और सीता के पारस्परिक प्रेम के उज्ज्वल प्रमाण हैं। जीवन में रति या प्रेम सबसे अधिक व्यापक भाव है और महाकाव्य में जीवन का विशद चित्र उपस्थित होने के कारण शृंगार रस का विशेष महत्व स्वाभाविक ही है। महाकाव्य की मुख्य घटना प्रेम और युद्ध से सम्बन्धित होती है और सौन्दर्य शौर्य का प्रेरक बनता है, जैसा कि रामायण में सीता को वीर्यशुल्का[1] कहे जाने से प्रकट होता है। शृंगार रस का उज्ज्वलतम और परिपूर्ण स्वरूप महापुरुष के महान् जीवन पर आधारित महाकाव्य में ही देखा जा सकता है।

रस के प्रथम आचार्य भरत मुनि ने शृंगार रस की जैसी आदर्श कल्पना की थी[2], वह रामायण में चरितार्थ हुई है। यह काव्य दाम्पत्य जीवन का महान् आदर्श प्रस्तुत करता है। रामायण में जीवन का सर्वांगीण चित्रण है, अतः दाम्पत्य जीवन के सुख-दुःख आदि का वर्णन इसमें उपलब्ध होता है।

दाम्पत्य जीवन का मूल रति या प्रेम भावना ही है, जो दो हृदयों को जोड़ती है। राम और सीता का दाम्पत्य जीवन आदर्श रूप था। अतः उनका प्रेम भी विशुद्ध एवं अनुकरणीय था, वासना की गन्ध का लेशमात्र भी ऐसे महापुरुषों के जीवन में नहीं हो सकता। इसीलिए इस काव्य में संयोग पक्ष का सीमित तथा धर्मभावना से नियन्त्रित रूप ही दिखाई देता है। शृंगार के विप्रलम्भ पक्ष का कवि ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। सम्भवतः राम सीता के ऐसे उदात्त प्रेम को दृष्टि में रखते हुए ही आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में यह मान्यता प्रस्तुत की थी—

---

१. 'वीर्यशुल्केति में कन्या स्थापितेयमयोनिजा ॥' —बा० का० ६६/१७

२. 'यत् किंचित् लोके शुचिमेध्यमुज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृंगारेणोमपीयते।' —ना० शा० भि०, पृ० ३००

'उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः श्रृंगार इष्यते ।'[1]

विप्रलम्भ शृंगार

श्रृंगार रस के भेदोपभेदों का निर्देश करते हुए पूर्वराग को श्रृंगार रस के विप्रलम्भ भेद का सर्वप्रथम उपभेद स्वीकार किया गया है । परस्पर गुण श्रवणादि से अनुराग युक्त होते हुए भी परतन्त्रता आदि के कारण इष्ट का समागम प्राप्त न कर पाने वाले नायक-नायिकाओं की समागम पूर्वकालीन काम-दशाओं के समाहार को पूर्वराग नाम से अभिहित किया गया है ।

आदिकवि को अपने महाकाव्य में राम को एक आदर्श-पुरुष के रूप में चित्रित करना अभीष्ट था । अतः उन्होंने सीता के प्रति राम के पूर्वानुराग का चित्रण नहीं किया है । वाल्मीकि ने राम और सीता का विवाह से पूर्व प्रेम प्रदर्शित न करके तत्कालीन सामाजिक धारणाओं को प्रकट किया । सम्भवतः उस समय के सामाजिक वर्ग को नायक के चरित्र का यह पक्ष अभीप्सित ही न हो और जनसमुदाय के विचारों को सत्कार प्रदान करते हुए आदिकवि ने अपने नायक को इस स्थिति में ही न आने दिया हो ।

कवि ने विवाह पर्यन्त दोनों को एक दूसरे से अपरिचित रखा है । पाणि-ग्रहण के समय ही दोनों एक-दूसरे के सम्मुख आते हैं । ऐसी स्थिति में राम और सीता के अनुराग, हर्ष एवं उल्लास जैसे मानसिक विकारों के उद्बुद्ध होने का प्रश्न ही नहीं उठता है । राम सीता का प्रेम सम्बन्ध विवाह के अनन्तर ही प्रारम्भ होता है । अतः रामायण में समागमोत्तरकालीन वियोग श्रृंगार का उदात्त एवं भव्य स्वरूप दर्शनीय है । राम का प्रेम संयोग की अपेक्षा वियोग में अधिक मुखरित होता है ।

विरह प्रेम की जाग्रत गति है और मिलन सुषुप्ति है । अलंकार-शास्त्र के आचार्य ने भी यह माना है कि विप्रलम्भ-श्रृंगार के बिना संयोग-श्रृंगार पूर्ण परिपोष को प्राप्त नहीं हो सकता—

'न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते[2] ।'

वाल्मीकि के राम यद्यपि मानवीय भावों से ही युक्त हैं, तथापि वे मर्यादाओं का पालन करने वाले हैं । अतः सीता के प्रति उनके हृदय में जो असीम स्नेह है उसे वे सबके समक्ष प्रकट नहीं करते हैं, अपितु जब भी अभिव्यक्ति के लिए एकान्त स्थान

---

१. सा० द० ३/१८३
२. सा० द० पृ० २५६

मिलता है उनका प्रेम गंगा की धारा के समान प्रवाहित होने लगता है। वन में जब वे स्वर्ण मृग का पीछा कर रहे थे, उस समय मृग के कृत्रिम स्वर को सुनकर सर्वप्रथम सीता के लिए ही चिन्तित होते हैं। क्योंकि 'अतिस्नेहः पापशंकी'[1] जहां अत्यधिक स्नेह होता है, वहां पाप की अर्थात् अनिष्ट की आशंका स्वतः उत्पन्न हो जाती है।

मार्ग में वे सीता के अनिष्ट की आशंका करते हुए, सोचते हैं— राक्षस लोग मिलकर सीता का वध अवश्य कर देना चाहते हैं। इसीलिए यह मारीच स्वर्ण-मृग बनकर मुझे आश्रम से दूर ले आया। वन में हम दोनों भाइयों के आश्रम से अलग हो जाने पर क्या सीता सकुशल रह सकेगी?—

'राक्षसैः सहितैर्नूनं सीतया ईप्सितो वधः।
कांचनं च मृगो भूत्वा व्यपनीयाश्रमात्तु माम्॥' —अर० का० ५७/७

उधर सीता का हृदय भी राम के प्रति प्रेम से लबालब भरा हुआ है। मायावी स्वर्ण-मृग द्वारा 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' की पुकार करने पर सीता का स्नेहसिक्त हृदय विह्वल हो उठता है, और वे लक्ष्मण से विपत्तिग्रस्त आर्त्तनाद करने वाले भाई की सहायतार्थ जाने का निवेदन करती है। सीता के कहने पर भी जब लक्ष्मण नहीं जाते तो राम के प्रेम में पागल-सी होकर वह लक्ष्मण पर मिथ्या दोषारोपण करने लगती है—

'तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा।
सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत्॥' —अर० का० ४५/५

लक्ष्मण जैसे भ्रातृभक्त पर दोषारोपण सीता के राम के प्रति असीम प्रेम का परिचायक है।

उस समय सीता की दशा भयभीत मृगी के समान हो जाती है। वे शोकमग्न होकर आंसू बहाने लगती हैं। राम के प्रति अपने अनन्य प्रेम को प्रकट करते हुए सीता कहती है—

'तन्न सिध्यति सौमित्रे तवापि भरतस्य वा।
कथमिन्दीवरश्यामं रामं पद्मनिभेक्षणम्॥
उपसंश्रित्य भर्त्तारं कामयेयं पृथग्जनं॥' —अर० का० ४५/२५

राम से बिछुड़कर सीता जीवित रहने की किंचिन्मात्र भी इच्छा नहीं रखती है। यदि राम जीवित लौटकर नहीं आये तो वह भी अपने प्राणों का परित्याग कर देने के लिए तत्पर है—

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, पृ० २३५

'गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि हीना रामेण लक्ष्मण ।
अबिन्धिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः ।।
पिबामि वा विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।
न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे ।।'

—अर० का० ४५/३६-३७

राम, लक्ष्मण को अपने सम्मुख देखकर सीता के लिए व्याकुल हो जाते हैं । उनके मन में यह आशंका उत्पन्न होती है कि जब लक्ष्मण सीता को एकाकी पर्णशाला में छोड़ आये हैं तो कहीं मायावी राक्षसों ने उसको समाप्त न कर दिया हो । वे सीता से रहित आश्रम में जाना नहीं चाहते और यदि सीता मर गयी तो वे भी अपने प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए तत्पर हैं—

'यदि जीवति वैदेही गमिष्याम्याश्रमं पुनः ।
संवृता यदि वृत्ता सा प्राणांस्त्यक्षामि लक्ष्मण ।।' —अर० का० ५८/६

पर्णशाला में पहुंचकर सीता के दर्शन न होने पर वे उद्विग्न हो जाते हैं । वे सीता के उन समस्त विहार स्थानों को देखते हैं जहां वे रमण करती थीं किन्तु वहां पर भी प्रिया को न पाकर उन विहार भूमियों में की गई प्रेम-क्रीड़ाओं को स्मरण कर उनका शरीर रोमांचित हो जाता है और वे व्याकुल हो उठते हैं ।

सीताहरण के पश्चात् राम-विलाप में वियोग श्रृंगार की सुन्दर व्यंजना हुई है । और वहीं से विरह-वर्णन में एक विशिष्ट मानसिक स्थिति अर्थात् उन्माद की दशा का चित्रण करने की परम्परा वाल्मीकि रामायण से आरम्भ होती हुई दिखाई देती है, जो परवर्त्ती साहित्य में रूढ़ हो गयी और आज तक उसका अनुसरण किया जा रहा है । तीव्र विरह में नायक या नायिका अपनी स्थिति को भूलकर जड़ पदार्थों एवं पशु पक्षियों से भी चेतन तथा सजातीय प्राणियों के समान व्यवहार तथा वार्तालाप करने लगते हैं—

'कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु[1] ।'

रामायण में इस मनःस्थिति का निरूपण अधिक विस्तार के साथ हुआ है । यहां पर कवि की शैली इतनी भावप्रवण एवं विप्रलम्भ श्रृंगार की मार्मिक व्यंजना करने वाली है कि इसको उपजीव्य बनाकर अनेक परवर्ती कवियों ने श्रेष्ठ विरह-काव्यों की रचना की है ।

शोक सागर में डूबे हुए राम विलाप करते हुए एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की ओर भागते हैं । पर्वतों, नदियों और नदों के किनारों पर घूमने लगते हैं—

---

१. कालिदास—पूर्वमेघ ५

'वृक्षाद् वृक्षं प्रधावन् स गिरींश्चापि नदीनदम् ।
बभ्राम विलपन् रामःशोकपंकार्णवलुप्तः ॥'

—अर० का० ६०/६१

वन का कोई वृक्ष कोई पुष्प और कोई पशु पक्षी ऐसा नहीं बचा, जिसका नाम लेकर राम ने सीता के विषय में न पूछा हो । यहां राम की दशा एक उन्मत्त सी हो गई है । वे सुध-बुध खोकर केवल सीता के ही ध्यान में निमग्न हैं । इससे अधिक प्रेम की प्रगाढ़ावस्था क्या हो सकती है ?

वन के प्राकृतिक पदार्थों वृक्षों, लताओं पशु-पक्षियों से सीता के सम्बन्ध में पूछते-पूछते उनकी विरह-वेदना और उत्कट रूप धारण कर लेती है । उन्हें ऐसा लगता है, मानो सीता उन्हीं के सम्मुख इधर-उधर भागकर कहीं छिपने का प्रयत्न कर रही है । तब वे उन्मत्त से होकर सीता को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

'किं धावसि प्रिये नूनं दृष्टामि कमलेक्षणे ।
वृक्षैराच्छाद्य चात्मानं किं मां न प्रतिभाषसे ॥
तिष्ठ तिष्ठ वरारोहे न तेऽस्ति करुणा मयि ।
नात्यर्थं हास्यशीलासि किमर्थं मामुपेक्षसे ॥'

—अर० का० ६०/२७-२८

राम को सीता प्राप्त नहीं होती । सीता तो वहां थी ही नहीं, वह तो केवल राम के मन की भ्रान्ति थी । जब उनको कहीं भी सीता के दर्शन नहीं होते तब वे कभी लक्ष्मण को और कभी सीता को सम्बोधित करके अपनी विरह-व्यथा प्रकट करते हैं—

'हा लक्ष्मण महाबाहो पश्यसे त्वं प्रियां क्वचित् ।
हा प्रिये क्व गता भद्रे हा सीतेति पुनः पुनः ॥'

—अर० का० ६०/३५

वे विलाप करते हुए एक वन से दूसरे वन में दौड़ने लगते हैं, और दौड़ते समय कहीं सीता की समानता पाकर उद्भ्रान्त हो जाते हैं और कहीं शोक की प्रबलता के कारण विभ्रान्त हो जाते हैं । सीता की खोज करते हुए वे पागल व्यक्तियों का सा व्यवहार करने लगते हैं । चारों ओर ढूंढ़ने पर भी जब सीता का कहीं पता न लगा, तब वे अपनी भुजाएं उठाकर जोर-जोर से सीता को पुकारना आरम्भ कर देते हैं—

'यैः परिक्रीडसे सीते विश्वस्तैर्मृगपोतकैः ।
एते हीनास्त्वया सौम्ये ध्यायन्त्यस्त्राविलेक्षणाः ॥'—अर० का० ६१/५

यहां पर सीता आलम्बन विभाव है । उनका अनवद्य सौन्दर्य, वन में उसके साथ व्यतीत किए हुए दिनों की मधुर स्मृतियाँ, सीता के अंगों से साम्य रखने वाले वृक्ष, लता, पुष्प, मृगादि तथा वन के रमणीय दृश्य उद्दीपन विभाव हैं । राम का सीता के सौन्दर्य एवं गुणों को बार-बार स्मरण करना, एक वन से दूसरे वन में घूमते समय उद्भ्रान्त हो जाना, उन्मत्त सा व्यवहार करना, सीता के वहाँ न होते हुए भी उसे सम्बोधित करना, अश्रु बहाना, वन-वृक्षों, लताओं से सीता का पता पूछना, दीर्घ श्वांस लेना आदि अनुभाव हैं । स्मृति, औत्सुक्य, विषाद तथा उन्मामदादि संचारी भावों से परिपुष्ट राम के अन्तःकरण में विद्यमान 'रति' स्थायी भाव व्यंग्य है ।

राम को सीता के यौवन सम्पन्न अंगों का स्मरण हो आता है, जिनका उन्होंने उपभोग किया था और जो सुन्दर-सुन्दर प्राकृतिक उपमानों द्वारा उपमेय थे । वहां उन्हीं प्राकृतिक उपमानों को देखकर राम को पुनः भ्रम हो जाता है कि सीता अपने अंगों को उन्हीं में छिपा रही है । वे सीता से कहते हैं—

'त्वमशोकस्य शाखाभिः पुष्पप्रियतरा प्रिये ।
आवृणोषि शरीरं ते मम शोकविवर्धनी ।।
कदली काण्डसदृशौ कदल्या संवृतावुभौ ।
ऊरू पश्यामि ते देवि नासि शक्ता निगूहितुम ।।'

—अर० का० ६२/३-४

राम सीता की खोज करते हुए मार्ग में सीता एवं राक्षसों के पदचिह्न धनुष, तरकश तथा रथ के टुकड़ों को देखकर भयभीत हो जाते हैं । प्रेम-भाजन के दूर होने पर उसके स्मृति-चिह्न, वस्त्र, आभूषणादि स्मृति को उद्दीप्त करते हैं । राम की भी यही दशा है जब वे सीता के आभूषणों में लगे सोने के घुंघरुओं को, जो बिखरे पड़े थे और रक्तिम भूमि को देखते हैं तो अनर्थ की आशंका से उनका मन सिहर उठता है ।

'रति' हृदय का एक ऐसा प्रमुख स्थायी भाव है, जो अन्य भावों को समय-समय पर उद्बुद्ध करता है । अपने स्नेह पात्र को विपत्तिग्रस्त जानकर उसके प्रति करुणा जागृत होती है और जो उस कष्ट का कारण है, उसके प्रति क्रोध उत्पन्न होता है, जिससे रौद्र रस की सृष्टि होती है और उस दुःख के कारणभूत शत्रु का संहार करने के लिए उत्साह जागृत होने पर वीर रस की व्यंजना होती है ।

इस दृश्य से राम इतने उद्विग्न हो जाते है कि वे समस्त लोकों का विनाश करने के लिए उद्यत दिखाई देते हैं । वे क्रोधित होकर लक्ष्मण से कहते—

निर्मर्यादानिमांल्लोकान् करिष्याम्यद्य सायकैः ।
हृतां मृतां वा सौमित्रे न दास्यन्ति ममेश्वराः ।।'

—अर० का० ६४/६६

'नाशयामि जगत् सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
यावद् दर्शनमस्या वै तापयामि च सायकैः ।।'

—अर० का० ६४/७१

प्रकृति द्वारा विरहोद्दीपन

प्रकृति द्वारा विरहोद्दीपन की प्रवृत्ति रामायण से ही प्रारम्भ हुई है, जो आज तक साहित्य जगत् में प्रचलित है । संस्कृत अथवा हिन्दी आदि अन्य भाषाओं में जहाँ कहीं विप्रलम्भ शृंगार की सशक्त-योजना की गयी है, वहाँ उन कवियों ने रति भाव को उद्दीप्त करने के लिए प्रकृति का आश्रय अवश्य लिया है । जो प्रकृति संयोगावस्था में आनन्द प्रदान करती है, वही वियोगावस्था में प्रेमी जनों को पीड़ित करती है ।

वाल्मीकि ने वसन्त, वर्षा और शरद ऋतुओं की पृष्ठभूमि पर राम के विरह का प्रसार किया है, जिसमें स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता और कलात्मकता का मनोहारी समन्वय दृष्टिगोचर होता है ।

राम को ऋतुओं की शोभा सीता के सौन्दर्य का स्मरण कराकर उनके सुखद सहवास के अभाव से पीड़ित करती है । रस-शास्त्रीय दृष्टि से विषाद, चिन्ता, ग्लानि, शंका उग्रता आदि संचारी भावों तथा स्मरण, प्रलाप, उन्माद आदि विविध अवस्थाओं का सन्निवेश इन वर्णनों में हुआ है ।

विरहोद्दीपक पम्पा-सरोवर

सरिताओं का वर्णन शृंगार-रस के निरूपण में अत्यन्त महत्त्व रखता है । सरोवर की रमणीयता को देखकर काम-पीड़ित व्यक्ति की काम भावनायें स्वतः उद्दीप्त हो जाती हैं । शान्ति प्राप्त करने की अभिलाषा से राम कमल-पुष्पों से आच्छादित स्फटिक मणि के समान स्वच्छ जल से युक्त, नाना प्रकार के सुन्दर-सुन्दर विहंगों से सनाघित पम्पा सरोवर के तट पर जाते हैं किन्तु वहां के रमणीय दृश्यों को देखकर उनके हृदय में सीता की वियोग-व्यथा उद्दीप्त हो उठती है और वे विलाप करने लगते हैं—

'स तां दृष्ट्वा ततः पम्पां रामः सौमित्रिणा सह ।
विललाप च तेजस्वी रामो दशरथात्मजः ।।'

—अर० का० ७५/२२

कमल उत्पल एवं मत्स्यों से युक्त पम्पा सरोवर पर पचकहुँर तथा उन कमल पुष्पों में सीता के नेत्र-मुख आदि का सादृश्य देखकर उनकी इन्द्रियाँ चंचल हो उठती हैं । मन में काम भाव प्रबल हो जाता है और सीता के दर्शन की उत्कट इच्छा जाग जाती है—

पम्पा सरोवर पर राम सीता के लिए व्याकुल हो उठते हैं। मन्द-मन्द बहने वाली सुखदायिनी हवा राम की काम भावनाओं को उद्दीप्त करती है—

'सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः ।
गन्धवान् सुरभिर्मासो जातपुष्पलद्रुमः ।।' —कि० का० १/१०

विरहोद्दीपक वसन्त

वसन्त को कामदेव का सखा कहा गया है। कामदेव अपने मित्र वसन्त के सहयोग से कामीजनों पर पुष्पवाण चलाया करता है, यह काव्य जगत् में प्रसिद्ध है। वसन्त ऋतुराज है। इस ऋतु में प्रकृति-नटी जब साज शृंगार धारण कर लेती है। वन-उपवन विविध प्रकार के पुष्पों से आच्छादित होकर सुशोभित हो उठते हैं। मानव-मन नव-स्फूर्ति और आनन्द का अनुभव करने लगता है। सुखद जलवायु और भावोद्दीपक वातावरण के कारण प्रेमी युगल का सहवास अत्यन्त मधुर हो जाता है। महाकवि वाल्मीकि ने रामायण में इस सुखद सहवास का चित्रण न कर विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन किया है। वियोग में वसन्त ऋतु के प्राकृतिक वातावरण और उससे प्रसूत राम की विरह-वेदना का मार्मिक चित्रण किया है। क्योंकि रमणीय प्रकृति विरही जनों के लिए अत्यन्त दुखदायी होती है।

सीता के विरह में प्रत्येक प्राकृतिक दृश्य राम की शोकाग्नि को प्रज्वलित करने वाला है। संयोग के समय जिन प्राकृतिक पदार्थों से जितना अधिक आनन्द प्राप्त होता है, विरह में वे उतना ही अधिक संतापकारी बन जाते हैं।

विरह में प्रकृति, पूर्व स्मृतियों को पुनः जागृत करने में बड़ी सहायक रहती है। संयोग के क्रीडा-स्थल अथवा प्राकृतिक पदार्थ विरह काल में स्मरण आने अथवा प्रत्यक्ष देखने पर विरह-व्यथित कर डालते हैं। क्योंकि उन स्थलों को तथा प्राकृतिक पदार्थों को देखने से संयोग के समय की सुखद क्रीडाएं एक साथ स्मरण हो आती हैं और विरही-जन को कचोटने लगती हैं।

पहले राम की प्रिय पत्नी सीता जलकुक्कुट की मधुर ध्वनि सुनकर आनन्दित हो जाया करती थी और राम को अपने निकट बुलाकर परम प्रसन्न होती थी, किन्तु आज सीता राम के समीप नहीं और वह शब्द कर रहा है, जिससे राम की विरहाग्नि प्रज्वलित हो उठती है—

'श्रुत्वैतस्य पुरा शब्दमाश्रमस्था मम प्रिया ।
मामाहूय प्रमुदिता परमं प्रत्यनन्दत ।।' —कि० का० १/२५

यहां पर सीता आलम्बन विभाव है। पम्पा सरोवर, रमणीय वन-प्रदेश, वसन्त का अपार वैभव, वन निर्झर से कोकिल मधुर ध्वनि आदि उद्दीपन विभाव हैं।

राम का व्याकुल होकर विलाप करना अनुभाव हैं। औत्सुक्य, स्मृति आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट राम के हृदय में स्थित 'रति' स्थायी भाव व्यंग्य है।

राम की विरहजन्य काम दशा

इस प्रसंग में कवि ने विरहजन्य काम दशाओं के अन्तर्गत राम की विरह-वेदना को अत्यन्त मार्मिक रूप में अभिव्यक्त किया है। राम व्याधि, जड़ता और मरण से तो ग्रस्त नहीं हुए हैं परन्तु शेष अभिलाषा, स्मृति, चिन्ता, गुणकथन, उद्वेग, उन्माद, प्रलापादि अवस्थाएं उन पर प्रकट होती हैं।

अभिलाषा—मधुर कलरव करने वाले नाना प्रकार के पक्षी, चारों ओर वृक्षों, झाड़ियों और लताओं पर जमा हैं। मादा पक्षी नर पक्षियों से संयुक्त होकर आनन्दित हो रही हैं। मयूरियों से घिरे हुए मयूर मदमस्त हो रहे हैं—

> 'एवं विचित्राः पतगा नानारावविराविणः ।
> वृक्षगुल्मलताः पश्य सम्पतन्ति समन्ततः ॥' —कि० का० १/२६

> 'शिखिनिभिः परिवृतास्त एते मद मूर्च्छिताः ।
> मन्मथाभिपरीतस्य मम मन्मथवर्धनाः ॥' — कि०का० १/३७

इस प्रकार के प्रेमोद्दीपक दृश्यों को देखकर राम के विरही हृदय में सीता मिलन की अभिलाषा तीव्र हो जाती है।

मृगलोचना सीता, चिन्ता और शोक से बलपूर्वक पीड़ित राम को और भी अधिक सन्ताप दे रही है, साथ ही वन में बहने वाला पवन भी उन्हें पीड़ित कर रहा है—

> 'मां हि सा मृगशावाक्षी चिन्ताशोकबलात्कृतम् ।
> संतापयति सौमित्रे क्रूरश्चैत्रवनानिलः ॥' —कि० का० १/३५

सर्वदा मर्यादा का पालन करने वाले राम का मन्मथावेग इन दृश्यों को देखकर फूट पड़ता है—

स्मृति—वसन्त के इस मोहक जाल में राम का हृदय सीता की स्मृति में डूब जाता है, पहले के किये गये प्रणय-व्यापार, केलि-क्रीडा नयनों के सामने थिरक उठते हैं। जब वे पशु-पक्षियों को परस्पर काम-भाव से अनुरक्त देखते हैं तो सीता की स्मृति तीव्र हो उठती है। पम्पा-सरोवर में आनन्दमग्न नाना प्रकार के पक्षिगण राम के सीता विषयक अनुराग को उद्दीप्त करते हैं, क्योंकि उनके मधुर कलरव को सुनकर राम को नूतन अवस्थावली, कमलनयनी, चन्द्रमुखी सीता का स्मरण हो आता है—

'दीपयन्तीव मे कामं विविधा मुदिता द्विजाः ।
श्यामां चन्द्रमुखीं स्मृत्वा प्रियां पद्मनिभेक्षणाम् ।।'
—कि० का० १/१००

गुणकथन—गुणकथन में विरही अथवा विरहिणी अपने प्रिय या प्रिया के गुणों का स्मरण करते हैं। यह नैसर्गिक मनोवैज्ञानिक सत्य भी है। वियोगावस्था में प्रेमी की मधुर स्मृतियां, उसके मन मोह लेने वाले गुण नेत्रों के समक्ष पैंगे भरने लगते हैं। राम भी सीता के अनेक गुणों का स्मरण कर व्याकुल हो जाते हैं। जानकी गुणों का निधान हैं, सुन्दरता की प्रतिमूर्ति है। उसके सुखद साहचर्य में राम ने वन के कष्टों को हँस-हँसकर सहन किया था। उस समय उसका एक-एक गुण राम के हृदय को व्यथित कर रहा है। सूक्ष्म बरौनियों वाली, सुन्दर केशों वाली और मधुर भाषिणी सीता के बिना राम को अपना जीवित रहना निष्प्रयोजन प्रतीत होता है—

'नहि तां सूक्ष्मपक्ष्माक्षीं सुकेशीं मृदुभाषिणीम् ।
अपश्यतो मे सौमित्रे जीवितेऽस्ति प्रयोजनम् ।।' —कि० का० १/३०

राम सीता के नेत्रों और मुख के सौन्दर्य की अनेक प्रकार से प्रशंसा करते हैं। कहीं वे सीता के नेत्रों की तुलना कमलदल से करते हैं, तो कभी मृग के नेत्रों से। और कमलकेसर का स्पर्श करके बहने वाले पवन की समता सीता के निःश्वास से करते हैं—

'पद्मपत्र विशालाक्षीं सततं प्रियपंकजाम् ।
अपश्यतो मे वैदेहीं जीवितं नाभिरोचते ।।' —कि० का० १/६७

'पद्मकेसर संसृष्टो वृक्षान्तरविनिःसृतः ।
निःश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः ।।' —कि० का० १/७२

उन्माद एवं प्रलाप—उन्माद में विरही की वेदना चरम सीमा पर पहुंच जाती है। उसका मानसिक सन्तुलन अव्यवस्थित हो जाता है शोकाग्नि उसकी वेदना को और भी अधिक उद्दीप्त कर देती है, जिससे विरही पर उन्माद सा छा जाता है। उसे अन्य वस्तुओं से अरुचि हो जाती है।

राम को भी वसन्त का वैभव दुःखदायी प्रतीत हो रहा है : उसको लगता है मानो वसन्त रूपी अग्नि उन्हें जला कर भस्म कर देगी—

'अशोकस्तवकांगारः षट्पदनिःस्वनः ।
मां हि पल्लवताम्रार्चिर्वसन्ताग्निः प्रधक्ष्यति ।।' —कि० का० १/२९

पर्वत शिखरों पर मृग अपनी मृगियों के साथ विचरण कर रहे हैं और राम

सीता से वियुक्त हैं। इधर-उधर विचरण करते हुए हिरण उनके चित्त को व्यथित कर देते हैं—

'पश्य सानुषु चित्रेषु मृगीभिः सहितान् मृगान्।
मां पुनर्मृगशावाक्ष्या वैदेह्या विरहीकृतम्॥' —कि० का० १/१०१

उद्वेग—यह वेदना की वह अवस्था है, जहां विरह-व्यथित का हृदय उद्वेलित हो उठता है। संयोग की सुखद वस्तुएं दुःखद वस्तुओं के रूप में परिणत हो जाती हैं। सादृश्यमूलक वस्तुओं का आरोप विरही को और भी अधिक उद्दीप्त कर देता है। राम को पल्लवों से लाल ज्वाला वाली वसन्ताग्नि उठती हुई दिखायी देती है, जिसको देखकर राम कहते हैं कि, यह मुझे अवश्य जलायेगी—

'मां हि पल्लवताम्रार्चिवसन्ताग्निः प्रधक्ष्यति।
न हि तां सूक्ष्मपक्ष्माक्षीं सुकेशीं मृदुभाषिणीम्॥ —कि० का० १/३०

हर्षयुक्त पक्षियों के झुंड इच्छानुसार कलरव करते हुए एक दूसरे को बुला रहे हैं, जिससे राम का प्रेमोन्माद बढ़ रहा है—

'नदन्ति कामं शकुना मुदिताः सङ्घशः कलम्।
आह्वयन्त इवान्योन्यं कामोन्मादकरा मम॥' —कि० का० १/४६

चिन्ता—चिन्ता के अन्तर्गत प्रेमी, प्रेमपात्र के विषय में चिन्तित तथा व्यग्र रहता है। अपनी अवस्था को देखकर वह यह सोचने लगता है कि, उसका प्रिय न जाने किस दशा में अपना समय व्यतीत कर रहा होगा, न जाने किन-किन दुःखों का सामना कर रहा होगा, न जाने कब मिलन होगा—यह सब सोचकर प्रेमीजन का हृदय उद्वेगपूर्ण हो जाता है, साथ ही चिन्ताग्रस्त होने के कारण उसकी बिरह-वेदना और भी अधिक वृद्धि को प्राप्त हो जाती है।

राम को अपने से अधिक सीता की चिन्ता है। बसन्त के अनुपम सौन्दर्य और कामोद्दीपक परिवेश से जब स्वयं राम ही बहुत प्रभावित हो रहे हैं, तो राम के हृदय को यह चिन्ता व्याकुल करती है कि जहां सीता निवास कर रही है, यदि वहां पर भी इस प्रकार वसन्तश्री व्याप्त हो रही होगी तो उसकी क्या दशा होगी—वह भी पराधीन होकर मेरी तरह शोक कर रही होगी—

'वसन्तो यदि तत्रापि यत्र मे वसति प्रिया।
नूनं परवशा सीता सापि शोचत्यहं यथा॥' —कि० का० १/४७

अन्त में चिन्ताजन्य उद्बोधन अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है। वहां का प्रत्येक रमणीय दृश्य राम के कामोन्माद को बढ़ा रहा है। पहले सीता के साथ रहते हुए जो सुरभित शीतल वायु राम को सदैव सुखकारी प्रतीत होती थी, सीता के विरह में वही अग्नि की तरह संताप दे रही है—

'एष पुष्पवहो वायुः सुखस्पर्शो हिमावहः।
तां विचिन्तयतः कान्तां पावकप्रतिमो मम॥' —कि० का० १/५३

प्रकृति में सहज भाव से होने वाली क्रियाओं में भी राम को काम-क्रीड़ाएं प्रतिभासित होती हैं।

पवन द्वारा सहसा हिलायी जाती हुई तिलक वृक्ष की कलिका पर बैठा हुआ मधुकर राम को ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो कोई प्रेमी काममद से कम्पित प्रेयसी से मिल रहा हो—

'विक्षिप्तां पवनेनैतामसौ तिलकमंजरीम्।
षट्पदः सहसाभ्येति मदोद्धतामिव प्रियाम्॥' —कि० का० १/५८

यहां पर वियोग शृंगार की स्रोतस्विनी प्रवाहित हो रही है। विभावादिकों की अत्यन्त रमणीय योजना करके कवि ने शृंगार रस को चरम सीमा पर पहुंचा दिया है।

यहां सीता आलम्बन विभाव है। बसन्त की अनुपम छटा, चारों ओर पक्षियों का मधुर कलरव, पशु-पक्षियों की मदमत्त होकर की गई काम-क्रीड़ाएं, मन्द-मन्द प्रवाहमान सुरभित पवन, वृक्ष और लताएं तथा उन पर विकसित सुमन आदि उद्दीपन विभाव हैं। राम का सीता के गुणों का कथन, प्रलाप, चिन्ता आदि अनुभाव हैं। औत्सुक्य, चिन्ता, स्मृति, विषाद आदि संचारी भावों से परिपुष्ट राम के हृदय में स्थित 'रति' स्थायी भाव व्यंग्य है।

जहां सीता का अद्वितीय लावण्य स्मरण कर राम का हृदय उसके विरह में व्यथित हो रहा है और पशु-पक्षियों के उन उन सुन्दर अंगों में सीता के सौन्दर्य की अनुभूति उनका कामोन्माद बढ़ाती है, वहां सीता द्वारा पतिव्रता नारी के रूप में प्रदर्शित, अद्भुत राज-वैभव को त्यागकर वन के दारुण कष्टों का सहर्ष आलिंगन, पति की सेवा में ही अपना सर्वस्व समर्पण, सुख दुःख में सदैव साथ रहने का अदम्य उत्साह, ये सीता के महान् गुण भी राम की विरह वेदना को द्विगुणित कर देते हैं। वे लक्ष्मण से कहते हैं—

'तया विहीनः कृपणः कथं लक्ष्मण धारये।
या मामनुगता राज्याद् भ्रष्टं विहतचेतसम्॥
तच्चार्वाचितपद्माक्षं सुगन्धि शुभमव्रणम्।
अपश्यतो मुखं तस्याः सीदतीव मतिर्मम॥'
—कि० का० १/१०८-१०९

राम के हृदय मे यह लालसा जागृत होती है कि सीता द्वारा मुस्कराकर कही गयी मधुर, हितकर एवं अतुलनीय बातें अब न जाने कब सुनने को मिलेंगी—

'स्मित ह्रास्यान्तरयुतं गुणवन्मधुरं हितम्।
वैदेह्या वाक्यमतुलं कदा श्रोष्यामि लक्ष्मण॥' कि० का० १/११०

इस प्रकार वसन्त-वर्णन में राम के हृदय में नैसर्गिक रूप से विद्यमान रति-भाव को जागृत करने वाली स्थिति का आभास हो रहा है। अनुभूति की सत्यता से

संवेदनाएं सजीव हो उठी हैं। वसन्त ने राम के भावों को उद्दीपन हेतु परिपार्श्व दिया है, जो कि अपने आप में भावपूर्ण है। वसन्त के माध्यम से विप्रलम्भ-शृंगार की सशक्त व्यंजना महाकवि ने की है।

प्रिय अथवा प्रिया के विरह में उसके वस्त्र, आभूषणादि को देखकर विरही मन व्याकुल हो उठता है। उनको देखकर स्मृति सजीव हो जाती है। राम की भी यही अवस्था है।

ऋष्यमूक पर्वत पर जब सुग्रीव राम को सीता के आभूषण तथा उत्तरीय देते हैं तो राम उन्हें ग्रहण करके विह्वल हो उठते हैं, उनके नेत्रों से बहती हुई अश्रु-धारा मुख और वक्षःस्थल को भिगो देती है, वे कुहासे से ढँके हुए चन्द्रमा के समान आंसुओं से अवरुद्ध हो जाते हैं। धैर्य छोड़कर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। पुनः उन आभूषणों को हृदय से लगाकर रोषयुक्त सर्प के समान जोर-जोर से निःश्वास लेने लगते हैं। उनके आंसुओं का वेग रुकता ही नहीं।

'ततो गृहीत्वा वासस्तु शुभान्याभरणानि च।
अभवद् बाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमा ॥' —कि० का० ६/१६
सीतास्नेह प्रवृत्तेन स तु बाष्पेण दूषितः।
हा प्रियेति रुदन् धैर्यमुत्सृज्य न्यपतत् क्षितौ ॥' —कि० का० ६/१७

विरहोद्दीपिका—वर्षा

वसन्त के समान वर्षा-ऋतु भी प्रेमभावनाओं को उद्दीप्त करती है। वर्षा में आकाश में व्याप्त धनपटली को देखकर विरही-जनों का सन्ताप अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाया करता है। जो मयूर, कोयल, मेंढक आदि की ध्वनि संयोगावस्था में सुख प्रदान करती है, वही वियोगियों को सन्तप्त कर देती है। सुखद जलवायु दुःखद बन जाता है। कालिदास का विरही यक्ष भी वर्षा ऋतु के प्रथम दिन मेघाच्छन्न गगनमण्डल को देखकर अपनी प्रिया यक्षिणी की तीव्र स्मृति में सुध-बुध खोकर अचेतन मेघ को ही सन्देश-वाहक बनाकर भेजने के लिए विवश हो जाता है।

बाली का वध और सुग्रीव का राज्यभिषेक करने के पश्चात् राम लक्ष्मण के साथ माल्यवान् पर्वत पर वर्षा-ऋतु का समय व्यतीत करते हैं। किन्तु उन्हें शान्ति नहीं मिल पाती, वर्षा भी राम की विरह-वेदना को अत्यधिक उद्दीप्त करती है।

'हृदि कृत्वा स बहुशस्तमलंकारमुत्तमम्।
निःश्वास भृशं सर्पो विलस्थ इव रोषितः॥
अविच्छिन्नाश्रुवेगस्तु सौमित्रिं प्रेक्ष्य पार्श्वतः।
परिदेवयितुं दीनं रामः समुपचक्रमे ॥'

—कि० का० ६/१८-१९

कामपीड़ित प्राणी को संसार की प्रत्येक वस्तु कामभावना से युक्त दिखायी देती है। सीता के वियोग में राम की भी ऐसी दशा हो गयी है। उन्हें प्रकृति में होने वाली प्रत्येक चेष्टा में सीता का ही आभास होता है। समस्त संसार राम को सीतामय प्रतीत होता है। वर्षा-ऋतु में अपनी काम-भावना को वे लक्ष्मण के सम्मुख प्रकट करते हैं।

पर्वत शिखरों पर खिले हुए कुटज पुष्प प्रिया-विरह के शोक से पीड़ित राम की कामाग्नि को उद्दीप्त कर रहे हैं—

'कुटजान् पश्य सौमित्रे पुष्पितान् गिरिसानुषु।
मम शोकाभिभूतस्य काम संदीपनान् स्थितान्॥'

—कि० का० २८/१४

राम को अपने चारों ओर होने वाली विविध क्रियाओं में शृंगारिक चेष्टाओं की ही अनुभूति हो रही है। निद्रा धीरे-धीरे विष्णु के पास आ रही है। सरिता द्रुत गति से अपने पति सागर की ओर जा रही है। प्रसन्न बलाका मेघ की ओर जा रही है, तथा प्रियतमा काम भावना से युक्त होकर अपने प्रियतम की सेवा में उपस्थित हो रही है—

'निद्रा शनैः केशवमभ्युपैति, द्रुतं नदीसागरमभ्युपैति।
हृष्टा बलाका घनमभ्युपैति, कान्ता सकामा प्रियमभ्युपैति॥'

— कि० का० २८/२५

कवि ने नदियों में कामातुर युवतियों की चेष्टाओं का आरोप करते हुए समासोक्ति अलंकार के माध्यम से शृंगार की मार्मिक व्यंजना की है।

मदभरी (कामातुर युवतियों की तरह) नदियां अपने वक्ष पर (कुचों के स्थान पर) चक्रवाकों को वहन करती हैं और मर्यादा के रखने वाले जीर्ण-शीर्ण तटों को नष्ट कर व सुमन आदि उपहार लेकर अपने प्रियतम समुद्र के समीप पूर्ण भोग के लिए वेगपूर्वक चली जा रही है।

'नद्यः समुद्वाहित चक्रवाकास्तटानि शीर्णान्यपवाहयित्वा।
दृप्ता नवप्रावृतपूर्ण भोगा, दृतं स्वभर्तारमुपोपयान्ति॥'

—कि० का० २८/२९

ऐसे गुदगुदा देने वाले दृश्य को देखकर राम का विरही-हृदय और अधिक सन्तप्त हो उठता है।

वन में सर्वत्र जल की अनुपम धारायें सब ओर गिर रही हैं, ऐसे लग रहा है मानो सुरत-क्रीड़ा के समय होने वाले अंगों के मर्दन से टूटे हुए देवांगनाओं के मोतियों के हार हों—

'सुरतमर्दविच्छिन्नाःस्वर्गस्त्रीहार मौक्तिकाः ।
पतन्ति चातुला दिक्षु तोयधाराः समन्ततः ।।'
—कि० का० २८/५१

इस प्रकरण में श्रृंगार रस की धारा वर्षा-ऋतु में तटों को तोड़कर स्वच्छन्द रूप से प्रवाहित होने वाली सरिता की धारा के समान प्रवाहित हो रही है। कवि ने यहां मर्यादा के बन्धन को थोड़ी देर के लिए पृथक् कर दिया है। राम को समस्त प्रकृति में काम-भावना का साम्राज्य स्थापित हुआ सा प्रतीत हो रहा है।

यहां पर सीता आलम्बन विभाव है। मेघ तथा मेघों में विद्युत-स्फुरण, वर्षा की धारायें, कोयल, चक्रवाक, मयूर आदि पक्षियों का मधुर संगीत, समुद्र की ओर बहने वाली नदियों की कलकल निनाद करती हुई धारायें, कुटज के पुष्प, मेघों की ओर जाने वाली बलाका आदि उद्दीपन विभाव है। राम का व्याकुल होना, विलाप करना, समस्त पदार्थों में कामभावनाओं को ही देखना अनुभाव है। औत्सुक्य, स्मृति, चिन्ता, विषाद आदि संचारी भावों से परिपुष्ट राम के हृदय में स्थित 'रति' स्थायी-भाव व्यंग्य है।

सुग्रीव अपनी पत्नी के साथ वर्षा के इन कामवर्धक दिनों को सानन्द व्यतीत कर रहा है और राम अपने राज्य से भी भ्रष्ट हो गये हैं, उनकी प्रियतमा भी उनसे हर ली गयी है। इसलिए वे जल से गले हुए नदी के तट के समान कष्ट का अनुभव कर रहे हैं—

'अहं तु हृतदारश्च राज्याच्च महतश्च्युतः ।
नदी कूलामिव क्लिन्नमवसीदामि लक्ष्मण ।।' —कि० का० २८/५८

इस प्रकार वर्षा के माध्यम से वियोग-श्रृंगार की सुन्दर व्यंजना करने में वाल्मीकि को पूर्ण सफलता मिली है।

विरहोद्दीपक—शरद्

प्राकृतिक सुषमा में अतिशयता उत्पन्न करने में शरद्-ऋतु का स्थान भी महत्वपूर्ण है। क्योंकि शरद् में आकाश-मण्डल स्वच्छ हो जाता है। चन्द्रिका पूर्ण कान्ति के साथ चमकती है, जलवायु सुखद बन जाते हैं। ये सभी रमणीय दृश्य विरही-जनों की काम-भावनाओं को स्वाभाविक रूप से उद्दीप्त करते हैं।

सुग्रीव अपनी राजधानी के सुखों में आसक्त होकर सानन्द समय व्यतीत कर रहा है। जानकी का अभी तक कहीं पता नहीं चल पाया है। वर्षा बीत गई है। प्रकृति-नटी शरद्-ऋतु का रूप धारण कर इठला रही है। आकाश निर्मल हो गया है। विभावरी के अंगों पर चांदनी का अंगराग लगा हुआ है, ऐसे मादक वातावरण में पर्वत-शिखर पर विराजमान राम मन ही मन अपनी प्रिया सीता का ध्यान करने लगते हैं।

शरद्-ऋतु में काम भाव से युक्त वन्य पशु-पक्षियों की चेष्टाएं भी राम की विरह-वेदना को तीव्र कर रही हैं। कामासक्त तीव्र अनुरागवती मन्द-मन्दगामिनी-हथिनी वन में जाते हुए, अपने मदमत्त गजराज को घेरकर उसका अनुगमन कर रही हैं। जिससे राम का प्रेमोन्माद वृद्धि को प्राप्त हो रहा है—

'समन्मथा तीव्रतरानुरागा,
कुलान्विता मन्दगतिः करेणुः।
मदान्वितं सम्परिवार्य यान्तं,
वनेषु भर्त्तारमभिप्रयाति ॥' —कि० का० ३०/३९

यहां पर सीता आलम्बन-विभाव है। शरद-ऋतु की अनुपम शोभा, निरभ्र गगन-मण्डल, सारसों एवं कल हंसों की मधुर ध्वनि, विकसित असन के वृक्ष, मन्द-मन्द प्रवाहमान नदियां, कामासक्त हाथी एवं हथनियां आदि उद्दीपन-विभाव हैं। राम का इन सब उद्दीप्त करने वाले दृश्यों को देखकर कामाभिभूत हो जाना, विलाप करना, चिन्ता करना आदि अनुभाव हैं। स्मृति, चिन्ता, औत्सुक्य, दैन्य, विषाद आदि संचारी-भावों से परिपुष्ट राम के अन्तःकरण में स्थित 'रति' स्थायी भाव व्यंग्य है।

चांदनी की चादर ओढ़े हुए शरत्कालीन रजनी, शुभ्र शाटिका से आच्छादित अंगों वाली सुन्दरी के समान सुशोभित हो रही है। उदित हुआ शशि ही उसका सौम्य बदन है और तारे उसके मनोहर नेत्र हैं—

'रात्रिः शशांकोदितसौम्यवक्त्रम,
तारागणोन्मीलित चारूनेत्रा।
ज्योत्स्नांशुकाऽवरणा विभाति।
नारीव शुक्लांशुकसंवृतांगी ॥' —कि० का० ३०/४६

जैसे लज्जा भाव से युक्त नवयुवतियां प्रथम समागम के समय धीरे-धीरे अपने जघन-स्थल को दिखाती हैं, उसी तरह से शरद्-ऋतु की नदी-स्वरूपा नायिकाएं धीरे-धीरे जल के हटने से अपने नग्न-तट रूपी जघनों को दिखा रही हैं—

'दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैः शनैः।
नवसंगमसव्रीडा जघनानीव योषितः ॥' —कि० का० ३०/५८

इस प्रकार शरद् विभावरी, मन्द-मन्द प्रवहमान सरितायें राम के अन्तःकरण में स्थित 'रति' स्थायी-भाव को उद्दीप्त कर श्रृंगार रस की सशक्त व्यंजना में अत्यन्त सहयोगी सिद्ध होते हैं।

सम्भोग श्रृंगार के ये रमणीय मांसल दृश्य राम की काम-भावनाओं को तीव्र रूप से उद्दीप्त करते हैं। राम को सारी प्रकृति प्रेम-रस में डूबी हुई दिखाई देती है।

सीता को न देखने के कारण वे शोक-संतप्त हो रहे हैं। वर्षा के चार मास उन्हें सौ वर्षों के समान जान पड़ते हैं—

'चत्वारो वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमा ।
मम शोकाभितप्तस्य तथा सीतामपश्यतः ॥' —कि० का० ३०/६४

सीता के विरह में राम अपने शरीर की सुध-बुध खो बैठते हैं। राम के लिए सीता का वियोग असह्य है। उनकी इस अवस्था का वर्णन महाकवि ने अशोक-वाटिका में स्थित सीता के समक्ष वीर हनुमान द्वारा राम की विरह दशा के कथन में किया है। हनुमान सीता से कहते हैं—

देवि ! जब ऋष्यमूक पर्वत पर गिराये हुए आप के आभूषण जब मैंने राम को दिये तो वे उन्हें अपनी गोद में लेकर अचेत-से हो गए थे। उन अलंकारों को अपने हृदय से लगाकर देवपुरुष राम बहुत विलाप करते रहे। उन आभूषणों को देखकर उनकी शोकाग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी और उस दुःख से पीड़ित हो राम बहुत समय तक मूर्च्छितावस्था में पड़े रहे।

'तेन देव प्रकाशेन देवेन परिदेवितम् ।
पश्यतस्तानि रुदतस्ताम्यतश्च पुनः पुनः ॥
प्रादीपयद् दाशरथेस्तदा शोकहुताशनम् ।
शायितं च चिरं तेन दुःखार्तेन महात्मना ।
मयापि विविधैर्वाक्यैः कृच्छादुत्थापितः पुनः ॥'
——सु० का० २५/४१-४३

राम आप में इतने दत्तचित्त रहते हैं कि अपने शरीर से डांस, मच्छर, कीड़ों और सर्पों को भी नहीं हटाते हैं। आपके प्रेम के वशीभूत राम सदा आपका ही ध्यान करते हैं और निरन्तर आपके ही विरह-शोक में मग्न रहते हैं। आपको छोड़कर अन्य कोई बात सोचते ही नहीं हैं—

'नैव दंशान् न मशकान् न कीटान् न सरीसृपान् ।
राघवोऽपनयेद् गात्रात् त्वद् गतेनान्तरात्मना ॥
नित्यं ध्यानपरो रामो नित्यं शोकपरायणः ।
नान्यच्चिन्तयते किंचित् स तु कामवशं गतः ॥'
——सु० का० ३६/४२-४३

हनुमान सीता से आगे कहते हैं कि राम आपकी चिन्ता के कारण कभी सुख-पूर्वक नहीं सोते हैं। और यदि कभी आंख लग भी जाती है तो 'सीता सीता' इस मधुर वाणी का उच्चारण करने हुए जाग जाते हैं—

'अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः ।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन् प्रतिबुध्यते ॥' —सु० का० ३६/४४

किसी फल-फूल अथवा स्त्रियों के मन को लुभाने वाली दूसरी वस्तु को जब वे देखते हैं, तब दीर्घ निःश्वास लेकर बारम्बार 'हा प्रिये ! हा प्रिये !' कहते हुए आपको पुकारने लगते हैं—

'दृष्ट्वा फलं वा पुष्पं व यच्चान्यत् स्त्रीमनोहरम् ।
बहुशो हा प्रियेत्येवं श्वसंस्त्वामभिभाषते ।।'

—सु० का० ३६/४५

अशोक-वाटिका में सीता से मिलकर हनुमान राम के समीप लौटकर सीता द्वारा दिए गए सन्देशों और उसकी विरहावस्था का विस्तार से वर्णन करते हैं। वे सीता का चूड़ामणि राम के कर-कमलों से समर्पित करते हैं। राम उस मणि को अपने हृदय से लगाकर रोने लगते हैं। उनको रोते हुए देखकर लक्ष्मण के नेत्र भी अश्रु प्रवाहित करने लगते हैं—

'एवमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः ।
तं मणिं हृदये कृत्वा रुरोद सहलक्ष्मणः ।।' —सु० का० ६६/१

जैसे बछड़े को देखकर पुत्रवत्सला धेनु के स्तनों से दुग्ध धाराएँ झरने लगती हैं, उसी प्रकार उस उत्तम मणि को देखकर राम का हृदय भी द्रवित हो जाता है—

'यथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद्र वत्सस्य वत्सला ।
तथा ममापि हृदयं मणिश्रेष्ठस्य दर्शनात् ।।' —सु० का० ६६/३

सीता को स्मरण कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से वे सुग्रीव से कहते हैं—

'अयं हि शोभते तस्याः प्रियाया मूर्धिन मे मणिः ।
अद्यास्य दर्शनेनाहं प्राप्तां तामिव चिन्तये ।।' —सु० का० ६६/७

हनुमान ने राम से यह कहा था कि सीता ने केवल एक मास तक जीवित रहने की बात कही है। इस पर राम कहते हैं कि मैं तो कजरारे नेत्रों वाली सीता के बिना क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता—

'चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धरिष्यति ।
क्षणं वीर न जीवेयं बिना तामसितेक्षणाम् ।।' —सु०का० ६६/१०

सीता का समाचार पाकर वे पल भर भी वहां नहीं रहना चाहते और हनुमान से कहते हैं कि मुझे वहीं ले चलो जहां मेरी प्रिया को तुमने देखा है—

'नय मामपि तं देशं यत्र दृष्टा मम प्रिया ।
न तिष्ठेयं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च ।।' —सु० का० ६६/११

उनको यह चिन्ता होती है कि भोली-भाली सीता भयानक राक्षसों के बीच में कैसे रहती होगी—

'कथं सा मम सुश्रोणी भीरू-भीरु सती तदा ।
भयावहानां घोराणां मध्ये तिष्ठति रक्षसाम् ।।' ---सु० का० ६६/१२

जब कोई व्यक्ति अपने अत्यन्त निकटस्थ आत्मीय जन से मिलकर आता है, जिससे मिलने के लिए हृदय व्याकुल हो रहा हो तो उस आगन्तुक के द्वारा अपने प्रियजन द्वारा कथित स्नेह-भरी बातों और प्यार भरे सन्देशों को सुनने के लिए मन व्यथित हो उठता है । अपने प्रिय द्वारा भेजा गया सन्देश संगम की अपेक्षा कुछ ही शून्य होता है । वे हनुमान से बार-बार जानकी द्वारा कहे गये प्यार भरे सन्देशों को सुनाने का आग्रह करते हैं —

'मधुरा मधुरालापा किमाह मम भामिनी ।
मद्विहीना वरारोहा हनुमन् कथयस्व मे ।।
दुःखाद्दुःखतरं प्राप्य कथं जीवति जानकी ।।' —सु० का० ६६/१५

यहां पर सीता आलम्बन विभाव है । हनुमान द्वारा राम के कर-कमलों में सीता द्वारा प्रदत्त मणि प्राप्त करना उद्दीपन विभाव है । राम का आंसू बहाना, चिन्ता करना, बार-बार सीता के सन्देश को सुनाने का आग्रह करना आदि अनुभाव हैं । स्मृति, चिन्ता, दैन्य, औत्सुक्य आदि संचारी भावों से परिपुष्ट राम के अन्तःकरण में स्थित 'रति' स्थायी भाव व्यंग्य है ।

यह ज्ञात होने पर कि सीता लंका में रावण की कारा में बन्दिनी है । लंका पर आक्रमण की तैयारियां आरम्भ हो जाती हैं । समस्त वानर सेना समुद्र तट पर पड़ाव डाले हुए है । उस समय राम का पत्नी-शोक पुनः प्रदीप्त हो उठता है । अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए वे लक्ष्मण से कहने लगते हैं—

'न मे दुःखं प्रिया दूरे न मे दुःखं हृतेति च ।
एतदेवानुशोचामि वयोऽस्या ह्यति वर्तते ।।' —यु० का० ५/५

टीकाकारों ने इस श्लोक में 'प्रयुक्तं वयः' शब्द के विभिन्न अर्थ किए हैं । तिलक तथा शिरोमणि टीकाकार ने इसका अर्थ सीता द्वारा कथित निश्चित अवधि माना है । तत्वदीपिका टीकाकार ने इसका अर्थ उपभोग की आयु किया है[1] ।

अंग्रेजी अनुवाद में इसका अर्थ यौवन (youth) किया है[2] ।

गोविन्द टीकाकार के अनुसार—'वयोऽतिवर्तते' का अर्थ है—आयु व्यर्थ ही

१. मद भोगसाधनमस्या वयोऽतिवर्तत इत्येतदेवानुशोचामि—तत्वदीपिका ।
२. हरिप्रसाद शास्त्री—द रामायण आफ वाल्मीकि, जिल्द ३, पृ० १५

जा रही है और यह कथन सीता के मानवी रूप की दृष्टि से किया गया है[1]।

भाव यह है कि मानवी रूप में ही सीता की आयु व्यर्थ हो सकती है दिव्य रूप में नहीं।

इसी अवसर पर राम ने वायु को सम्बोधित करके जो हृदयस्पर्शी शब्द कहे हैं, उनमें आदिकवि ने अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति का सौन्दर्य उँड़ेल दिया है। परवर्ती संस्कृत एवं हिन्दी काव्यों में जो इस प्रकार के मार्मिक प्रसंग कवियों ने चित्रित किए हैं, उनकी भाव-भूमि का प्रेरणा स्रोत यही वर्णन रहा होगा।

वायु सर्वत्र प्रवाहित होता है। जो वायु लंका में सीता के शरीर का स्पर्श करता होगा, वह बहता हुआ यदि राम के शरीर का स्पर्श करे तो उस वायु के स्पर्श से राम उस सुख की कल्पना करते हैं, जो सीता का आलिंगन करने से प्राप्त हो सकता है। वायु को सम्बोधित कर राम ने अपनी इस मनोदशा को अभिव्यक्त किया है, जिससे विरह की तीव्र अभिव्यंजना हो रही है—

'वाहि वात! यतः कान्ता तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृश।
त्वयि मे गात्र संस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टि समागमः॥' —यु०का० ५/६

इस प्रसंग से राम की वियोगान्तर्गत विभिन्न कामदशाओं का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है—

स्मृति—रावण द्वारा अपहरण करने पर सीता ने जो 'हा नाथ!' कहकर पुकारा था, उसका वह करुण क्रन्दन, पीये हुए उदरस्थित विष की भांति राम के समस्त अंगों को जला रहा है—

'तन्मे दहति गात्राणि विषं पीतमिवाशये।
हा नाथेति प्रिया सा मां ह्रियमाणा यदब्रवीत्॥' यु० का० ५/७

उद्वेग—प्रिया सीता का वियोग ही जिसका ईंधन है, उसकी चिन्ता ही जिसकी जाज्वल्यमान शिखायें हैं, वह प्रेमाग्नि राम के शरीर को अहर्निश जलाती रहती है—

'तद्वियोगेन्धनवता तच्चिन्ताविमलार्चिषा।
रात्रिं दिवं शरीरं मे दह्यते मदनाग्निना॥' —यु० का० ५/८

सीता के विरह में राम कामाग्नि से इतने सन्तप्त हो जाते हैं कि वे समुद्र में प्रवेश करके अपनी इस कामाग्नि को शान्त करने का कथन करते हैं—

---

१. वयोऽतिवर्तते, व्यर्थतयैव यातीति भावः।
मानुषभावानुसारेण चेदं वचनम्।
—यु० का० ५/५, गोविन्द टीका

'अवगाह्यार्णवं स्वप्स्ये सौमित्रे भवता विना ।
एवं च प्रज्वलन् कामो न मा सुप्तं जले दहेत् ।।' —यु० का० ५/६

विरही व्यक्ति किसी न किसी तरह अपने आप को सान्त्वना देकर आशा रूपी लता के आश्रय से जीवन धारण करता है, राम भी विरह में जैसे जल से भरी हुई क्यारी के सम्पर्क से बिना जल की क्यारी का ध्यान भी जीवित रहता हैं, सूखता नहीं है, उसी प्रकार सीता अभी इस भूमण्डल पर जीवित है, यह सोचकर जी रहे हैं—

'केदारस्येव केदार: सोदकस्य निरुदक: ।
उपस्नेहेन जीवामि जीवन्ती यच्छृणोमि ताम् ।।' —यु० का० ५/११

अभिलाषा—उनका वियोगी हृदय इस अभिलाषा से ललक उठता है कि कब आएगा वह दिन जब मैं शत्रु को पराजित कर समृद्धशालिनी राज्यलक्ष्मी के समान कमललोचना सीता को देखूंगा—

'कदा नु खलु सुश्रोणीं शतपत्रायतेक्षणाम् ।
विजित्य शत्रून् द्रक्ष्यामि सीतां स्फीतामिव श्रियम् ।।'—यु०का० ५/१२

वे अभिलाषापूर्वक सोचते हैं कि सुन्दर दांतों और बिम्बफल के समान सुन्दर ओठों से युक्त जानकी के प्रफुल्लारविंद जैसे मुख को थोड़ा सा ऊपर उठाकर उसी प्रकार कब चूमूंगा जैसे रोगी रसायन का पान करता है—

'कदा सुचारुदन्तोष्ठं तस्या: पद्ममिवाननम् ।
ईषदुन्नाम्य पास्यामि रसायनमिवातुर: ।।' —यु० का० ५/१३

सीता के अनवद्य सौन्दर्य से मण्डित, रति-क्रीड़ा में अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाले अंग-प्रत्यंगों का स्मरण कर राम का अन्तःकरण उन अंगों के आलिंगन के लिए लालायित हो उठता है—

'तौ तस्या: सहितौ पीनौ स्तनौ तालफलोपमौ ।
कदा नु खलु सोत्कम्पौ श्लिष्यन्त्या मां भविष्यत: ।।'
—यु० का० ५/१४

चिन्ता—उन्हें चिन्ता है कि वह सती-साध्वी सीता, जिसका मैं नाथ हूं, आज अनाथवत् राक्षसों के मध्य पड़कर निश्चय ही कोई रक्षक नहीं पा रही होगी—

'सा नूनमसितापांगी रक्षोमध्यगता सती ।
मन्नाथा नाथहीनेव त्रातारं नाधिगच्छति ।।' —यु० का० ५/१५

किस क्षण देवकन्या के समान सुन्दरी सीता उत्कण्ठापूर्वक गले से लगकर अपने नेत्रों से आनन्दाश्रु बहायेगी, यह सोचकर राम व्याकुल हैं—

'कदा नु खलु मे साध्वी सीतामरसुतोपमा ।
सोत्कण्ठा कण्ठमालम्ब्य मोक्ष्यत्यानन्दजं जलम् ।।' —युo काo ५/२०

इस प्रकार राम के विलाप करते हुए ही सूर्यास्त हो जाता है। सीता के पास पहुंचने में बाधक समुद्र को सुखाने के लिए भी वे उद्यत हो जाते हैं—

'चापमानय सौमित्रे शरांश्चाशीविषोपमान् ।
समुद्रं शोषयिष्यामि पद्भ्यां यान्तु प्लवंगमाः ।।' —युo काo २१/२२

राम सुवेल पर्वत से विचित्र ध्वजपताकाओं से अलंकृत लंका को देखकर सीता के लिए चिन्तातुर हो जाते हैं। मन ही मन सीता का स्मरण करते हुए, सोचने लगते हैं कि इसी लंका में मृगनयनी सीता मेरे लिए शोक-सन्तप्त होकर पीड़ा सहन करती है और भूमि पर सोती है—

'अत्र सा मृगशावाक्षी मत्कृते जनकात्मजा ।
पीड्यते शोकसन्तप्ता कृशा स्थण्डिलशायिनी ।।' —युo काo ४२/८

राक्षसियों द्वारा पीड़ित सीता का बारम्बार चिन्तन करते हुए वे तत्काल सेना को आक्रमण करने का आदेश देते हैं—वे केवल सीता के लिये ही रावण से युद्ध करते हैं। इसकी पुष्टि अंगद द्वारा रावण को भेजे गये इस सन्देश से हो जाती है—

'अराक्षसमिमं लोकं कर्त्तास्मि निशितैः शरैः ।
न चेच्छरणमभ्येषि तामादाय तु मैथिलीम् ।।' —युo काo ४१/६७

राम का पत्नी-प्रेम उस समय अपनी पराकाष्ठा पर दिखाई देता है जब वे हनुमान से इन्द्रजित् द्वारा सीता के वध का समाचार पाकर मूर्च्छित हो जाते हैं—

'तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्च्छितः ।
निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ।।' —युo काo ८३/१०

उन्हें तभी चेतना आती है जब विभीषण उन्हें आश्वासन दिलाता है कि दुरात्मा रावण सीता का विनाश नहीं करेगा।

लंका से लौटकर अयोध्या में राज्याभिषेक के पश्चात् लोकापवाद को सुनकर तथा सीता के पुनः होने वाले वियोग का चिन्तन करके राम के नेत्र अश्रुओं से भींग जाते हैं, उनका मुख शोभाहीन हो जाता है—

'वाष्पपूर्णे च नयने दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ।
हतशोभं यथा पद्मं मुखं वीक्ष्य च तस्यते ।।' —उo काo ४४/१६

सीता को वन में भेजकर वे अत्यन्त दुःखी होते हैं। उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होती है—

'स दृष्ट्वा राधवं दीनमासीनं परमासने ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां ददर्शाग्रजमग्रतः ।।' —उ० का० ५२/६

अन्त में, सीता के पृथ्वी में समा जाने पर राम व्याकुल हो उठते हैं । वे सीता के साथ ही रहने की इच्छा प्रकट करते हैं ।

अशोक-वाटिका में स्थित सीता की वियोगावस्था

जहां सीता के वियोग में राम की विभिन्न विरहावस्थाओं के मार्मिक चित्र प्रस्तुत करके विप्रलम्भ शृंगार का मनोमुग्धकारी स्वरूप आदिकवि ने चित्रित किया है, वहां राम के विरह में अशोक-वाटिका में स्थित सीता की दयनीय अवस्था एवं विलाप में भी विप्रलम्भ शृंगार की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है ।

पवनपुत्र हनुमान ने अशोक-वाटिका में राक्षसियों से घिरी हुई सीता को अत्यन्त दीन एवं व्याकुलावस्था में देखा । राम के विरह में उनकी जो अवस्था हो गई थी, उसका चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है—

वह मलिन वस्त्र धारण कर राक्षसियों से घिरी हुई बैठी थी । उपवास के कारण अत्यन्त दुर्बल एवं दीन दिखाई देती थी तथा बार-बार सिसक रही थी । वह शुक्लपक्ष के प्रारम्भ में निर्मल और कृश चन्द्रमा के समान प्रतीत होती थी—

'ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम् ।
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ।
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् ।।'
—सु० का० १५/१८-१९

धुंधली-सी स्मृति के आधार पर पहचाने जाने वाले अपने रूप से वे सुन्दर कान्ति विकीर्ण कर रही थीं और धूम्राच्छादित अग्निशिखा के समान प्रतीत होती थीं—

'मन्दप्रख्यायमानेन रूपेण रुचिरप्रभाम् ।
पिनद्धां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ।।' —सु० का० १५/२०

पीतवर्ण के एक ही पुराने रेशमी वस्त्र से उसका शरीर आच्छादित था । वह मलिन, अलंकार रहित होने के कारण कमलहीन पुष्करिणी के समान प्रभाहीन दिखाई देती थीं—

'पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा ।
सपंकामनलंकारां विपद्मामिव पद्मनीम् ।।' —सु० का० १५/२१

उपवास से दुःखिता उस सीता के मुख पर अश्रुओं की धारा प्रवाहित हो रही थी । शोक और चिन्ता में डूबी हुई वह दीन दशा में पड़ी हुई थी—

'अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च ।
शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम् ।।' --सु० का० १५/२३

उसे अपना कोई प्रियजन दृष्टिगोचर नहीं होता था । दिखाई देता था, केवल राक्षसियों का समूह । अतः उनकी दशा ऐसी हो रही थी जैसे कोई मृगी अपने यूथ से बिछुड़कर कुत्तों के समूह से घिर गई हो—

'प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम् ।
स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणेनावृतामिव ।।' —सु० का० १५/२४

राम के विरह में वे संदिग्ध अर्थ वाली स्मृति, पृथ्वी पर गिरी हुई ऋद्धि, टूटी हुई श्रद्धा, भग्न हुई आशा, विघ्नयुक्त सिद्धि, कलुषित बुद्धि और मिथ्या कलंक से भ्रष्ट हुई कीर्ति के समान प्रतीत होती थी—

'तां स्मृतिमिव संदिग्धामृद्धिं निपतितामिव ।
विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव ।
सोपसर्गां यथा सिद्धिं बुद्धिं सकलुषामिव ।
अभूतेनापवादेन कीर्तिं निपतितामिव ।।'
—सु० का० १५/३३-३४

उनके शरीर पर मैल जम गया था । वे दीनता की मूर्ति बनी बैठी थी तथा अलंकार धारण करने योग्य होने पर भी आभूषणरहित थीं । इसलिए काले मेघों से आच्छादित चन्द्रमा की प्रभा के सदृश जान पड़ती थीं--

'मलपंकधरां दीनां मण्डनार्हाममण्डिताम् ।
प्रभां नक्षत्राराजस्य कालमेघैरिवावृताम् ।।' —सु० का० १५/३७

जैसे अनभ्यास से विस्मृत विद्या क्षीण हो जाती है, उसी प्रकार विरह में सीता भी अत्यन्त दुर्बल हो गयीं थीं, जिन्हें देखकर हनुमान की बुद्धि सन्देहयुक्त हो रही थी—

'तस्य संदिदिहे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च ।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव ।।' —सु० का० १५/३८

जैसे व्याकरणादि संस्कार से युक्त न होने पर वाणी अन्य अर्थ को प्राप्त होने से पहचानी नहीं जाती । उसी प्रकार आभूषण एवं स्नान-अनुलेपन आदि अंग संस्कार से शून्य सीता को हनुमान बड़े कष्ट से पहचान पाए—

'दुःखेन बुबुधे सीता हनुमानमलंकृताम् ।
संस्कारेण तथा हीनां वाचमर्थान्तिरगताम् ।।' —सु० का० १५/३९

आदिकवि ने मालोपलंकार के माध्यम से अनेक प्रकार की उपमाओं की योजना करके सीता की विरहावस्था का अत्यन्त मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है ।

कवि ने ऐसे अनुभावों का प्रयोग किया है, जिनसे सीता विरह की साक्षात् प्रतिमा जान पड़ती हैं।

सीता की इस दीनावस्था को देखकर हनुमान अपने मन में सोचने लगते हैं कि यही वह सीता है जिसके लिए राम इस संसार में करुणा, दया, शोक और प्रेम से सन्तप्त होते हैं—

'इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिरिह तप्यते।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च॥' —सु० का० १५/४९

सीता रावण की कठोर व्यवस्था में रहते हुए भी न तो कभी राक्षसियों की ओर देखती है और न फल-फूल वाले वृक्षों पर दृष्टिपात करती है, वह तो सदैव एकाग्रचित्त हो मन की आंखों से केवल राम के ही दर्शन करती है—

'नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान् पुष्पफलद्रुमान्।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति॥' —सु० का० १६/२५

संयोगावस्था में सुख प्रदान करने वाला अशोक वृक्ष, शीतल रश्मियों वाला चन्द्रमा दोनों सीता के हृदय में शोक उत्पन्न करते हैं तथा सूर्य के समान सन्तप्त करते हैं—

'अस्या हि पुष्पावनताग्रशाखः,
शोकं दृढं वै जनयन्त्यशोकाः।
हिमव्यपायेन च शीतरश्मि
रभ्युत्थितो नैकसहस्ररश्मि॥'
—सु० का० १६/३१

जैसे नागराज की वधू (नागिन) मणि-मन्त्रादि से अभिभूत हो छटपटाने लगती है, उसी प्रकार सीता भी पति-वियोग में तड़प रही हैं—

'चेष्टमानामथाविष्टां पन्नगेन्द्रवधूमिव।
धूप्यमानां ग्रहेणेव रोहिणीं धूमकेतुना॥' —सु० का० १९/९

इस सर्ग में वाल्मीकि ने अनेक प्रकार की उपमाओं की झड़ी लगा दी है। इन उपमाओं में जहां सीता की विरहावस्था प्रखर रूप में अभिव्यंजित हो रही है, वहां सीता का निष्पाप सौन्दर्य एवं वन्दनीय चरित्र भी मुखरित हो उठा है।

वे क्षीण हुई विशाल कीर्ति, तिरस्कृत हुई श्रद्धा, ह्रास को प्राप्त हुई बुद्धि, टूटी हुई आशा, नष्ट हुए भविष्य, उल्लंघित हुई राजाज्ञा, उत्पातकाल में जलती हुई दिशा, विनष्ट हुई देवपूजा, चन्द्र ग्रहण से मलिन हुई पूर्णिमा की विभावरी, तुषारपात से ध्वस्त हुई कमलिनी, जिसका शूरवीर पति मारा गया हो ऐसी सेना, अन्धकार से नष्ट हुई प्रभा, सूखी हुई नदी, अपावन प्राणियों के स्पर्श से अपवित्र वेदी

और शान्त अग्निशिखा के समान प्रतीत हो रही थीं--

'सन्नामिव महाकीर्त्ति श्रद्धामिव विमानिताम् '
प्रज्ञामिव परिक्षीणामाशां प्रतिहतामिव ।।
आयतीमिव विध्वस्तामाज्ञां प्रतिहतामिव ।
दीप्तामिव दिशं काले पूजामपहतामिव ।
पौर्णमासीमिव निशां तमोग्रस्तेन्द्रमण्डलाम् ।
पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव ।।
प्रभामिव तमोध्वस्तामपक्षीणामिवापगाम् ।
वेदीमिव परामृष्टां शान्तामग्निशिखामिव ।।'

—सु० का० १६/११-१४

विरहिणी नायिकायें सुन्दर-सुन्दर वस्त्रालंकारों का परित्याग कर देती हैं तथा एक ही वेणी धारण करती हैं। सीता भी अपने पति राम के वियोग में बिना प्रयत्न के गुंथी हुई एक ही लम्बी वेणी धारण कर रही है—

'एकया दीर्घया वेण्या शोभमानामयत्नतः ।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ।।' —सु० का० १६/१६

इस प्रकार सीता की विरहावस्था के हृदयहारी वर्णन में अनेकानेक मूर्त्त एवं अमूर्त्त उपमानों का प्रयोग करके कवि ने वियोग शृंगार की मार्मिक व्यंजना की है।

जैसे सीता के वियोग में राम व्याकुल थे, उसी प्रकार सीता भी राम के वियोग का एक-एक क्षण बड़ी कठिनाई से व्यतीत कर पाती हैं। राम के बिना एक मुहूर्त्त जीवित रहना भी उनको अप्रिय लगता है। स्वयं को धिक्कारती हुई वे कहती हैं—

'अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम् ।
हृदयं मम येनेदं न दुःखेन विशीर्यते ।।' —सु० का० २६/६

राम से पृथक् रहकर भी जो मैं इस पापी जीवन को धारण कर रही हूं, ऐसी अनार्या और असती मुझको धिक्कार है—

'धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता ।
मुहूर्त्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका ।।' —सु० का० २६/७

पति-विरह में विलाप करती हुई सीता की वियोगावस्था की चरमावस्था उस समय परिलक्षित होती है, जब वह अपने प्राणों का परित्याग करने के लिए उद्यत हो जाती हैं। वह अपने प्राण-प्यारे पति को, परम स्नेही देवर लक्ष्मण को और आदरणीया माताओं को याद करती हुई कहती हैं--

'हा राम हा लक्ष्मण हा सुमित्रे,
हा राममातः सह मे जनन्यः ।
एषा विपद्याम्यहमल्पभाग्या,
महार्णवे नौरिव मूढवाता ।।' —सु० का० २८/८

संयोग-श्रृंगार

नायक-नायिका की परस्पर प्रत्यक्ष रूप में जो शारीरिक और मानसिक चेष्टायें होती हैं, उनका निरूपण संयोग-श्रृंगार के अन्तर्गत किया जाता है। इसे श्रृंगार रस का शारीरिक, स्थूल या ऐन्द्रिय पक्ष भी कहा जा सकता है। चूंकि रामायण के नायक मर्यादा-पुरुषोत्तम-राम हैं और नायिका जगद्वन्द्या, निखिलशील-सम्पन्ना सीता हैं, अतः इसमें इस प्रकार के वर्णन अत्यन्त सीमित, संक्षिप्त और सांकेतिक ही हैं। सीता जैसे आदर्श पात्रों में और वह भी वाल्मीकि सदृश ऋषि प्रणीत काव्य में उद्दाम वासना का प्रवाह तो हो ही नहीं सकता।

राम और सीता के प्रेम-व्यापार का वर्णन भव्य राजप्रासादों में न होकर तपोवनों के सुरम्य, सात्विक, प्राकृतिक वातावरण में हुआ है। प्रबन्ध सौष्ठव की दृष्टि से कवि के लिए इसका अवकाश अयोध्या के राजमहलों में नहीं था तथा परिस्थिति के विचार से वन में भी संयोग श्रृंगार की मर्यादा आवश्यक थी। 'सम्भोग' शब्द का तो प्रयोग ही इन पूज्य-पात्रों के विषय में नहीं किया जा सकता। फिर भी ऐन्द्रिय और स्थूल पक्ष का सर्वथा अभाव भी नहीं है। महाकाव्य में सभी रस और जीवन की सभी परिस्थितियों के सन्निवेश की आवश्यकता की दृष्टि से ये प्रसंग भी आवश्यक थे।

जब राम चौदह वर्ष के वनवास के लिए प्रस्थान की तैयारियां करते हैं, और सीता द्वारा वन-गमन की इच्छा प्रकट करने पर वन के कष्टों का वर्णन करके वनवास के विचार से निवृत्त करने का प्रयास करते हैं तो अद्भुत पति-प्रेम का परिचय देते हुए सीता कहती हैं—मुझे आपके पीछे-पीछे वनमार्ग पर चलने में कोई कष्ट नहीं होगा, जैसे उपवन में घूमने और पलंग पर सोने में नहीं होता है—

'न च मे भविता तत्र कश्चित् पथि परिश्रमः ।
पृष्ठतस्तव गच्छन्त्या विहारशयनेष्विव ।।'
—अयो० का० ३०/११

मार्ग में जो कुश, कास, सरकंडे, सींक और कांटेदार वृक्ष मिलेंगे, उनका स्पर्श मुझे और आपके साथ रहने से रुई और मृगचर्म के समान सुखकर प्रतीत होगा—

'कुशकाशशरेणीका ये च कण्टकिनो द्रुमाः ।
तूलाजिनसमस्पर्शा मार्गे मम सह त्वया ।।' —अयो० का० ३०/१२

भयंकर आंधी से उड़कर शरीर पर पड़ने वाली धूल को भी वह चन्दन के समान समझने के लिए तैयार हैं—

'महावातसमुद्भूतं यन्मामवकरिष्यति ।
रजो रमण तन्मध्ये परार्ध्यमिव चन्दनम् ।।' —अयो० का० ३०/१३

कवि ने राम और सीता के चित्रकूट तथा मन्दाकिनी-विहार का जो वर्णन किया है, वह यद्यपि संक्षिप्त है, किन्तु संयोग श्रृंगार की सुन्दर अभिव्यंजना करता है ।

चित्रकूट-पर्वत के रमणीय दृश्य राम और सीता की काम भावनाओं को उद्दीप्त करते हैं । विलासी जनों द्वारा सेवित उन दृश्यों को देखकर सीता के साथ राम को चौदह वर्ष का दीर्घ समय वहां व्यतीत करना सुखकर प्रतीत होता है । वहां का प्रत्येक प्राकृतिक दृश्य राम के अन्तःकरण को प्रफुल्लित करने वाला है । उस चित्रकूट पर विलासीजनों ने जो श्रृंगारिक चेष्टायें की थी, वे भी राम का ध्यान आकृष्ट करती हैं । राम सीता से कहते हैं—

'मृदिताश्चापविद्धाश्च दृश्यन्ते कमलस्रजः ।
कामिभिर्वनिते पश्य फलानि विविधानि च ।।'
—अयो० का० ९४/९५

चित्रकूट पर्वत के सुन्दर-सुन्दर दृश्यों का अवलोकन करने के पश्चात् राम सीता को मन्दाकिनी के मनोहारी दर्शन कराते हैं । राम और सीता एक सुन्दर शिला पर बैठकर वन की शोभा देख रहे हैं । अयोध्या के राजमहलों का सुख उसके समक्ष तुच्छ है । मन्दाकिनी का वर्णन करते हुए राजीवलोचन राम चन्द्रमुखी सीता से कहते हैं—

'मारुतोद्भूत शिखरैः प्रनृत्त इव पर्वतः ।
पादपैः पुष्पपत्राणि सृजद्भिरभितो नदीम् ।।' —अयो० का० ९५/८

क्रौंच-युगल का परस्पर प्रगाढ़ प्रेम साहित्य-जगत् में प्रसिद्ध है । मधुर कलरव के साथ काम-क्रीड़ा में संलग्न चक्रवाक पक्षी राम का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं—

पश्यैतद्वल्गुवचसो रथांगह्वयना द्विजाः ।
अधिरोहन्ति कल्याणि निष्कूजन्तः शुभा गिरः ।।'
—अयो० का० ९५/११

मन्दाकिनी का परम पावन-पानीय राम के हृदय में सीता के साथ जलावगाहन कर जल-विहारजन्य सुख की प्रबल कामना जागृत कर देता है। वे जल-विहार का प्रस्ताव रखते हुए कहते हैं—

'सखीवच्च विगाहस्व सीते मन्दाकिनीं नदीम्।
कमलान्यवमज्जन्ती पुष्कराणि च भामिनि ॥'

—अयो० का० ९५/१४

प्रिया सीता के साथ तीनों कालों में मन्दाकिनी नदी में स्नान करके मधुर फल-फूल का आहार करना राम को इतना सुखकर प्रतीत होता है कि न तो अयोध्या जाने की इच्छा होती है और न ही राज्य-प्राप्ति की—

'उपस्पृशंस्त्रिषवणं मधुमूलफलाशनः।
नायोध्यायै न राज्याय स्पृहये च त्वया सह ॥' —अयो०का० ९५/१७

इस प्रकार मन्दाकिनी वर्णन के प्रसंग में संयत भाषा में ही क्यों न हो, राम सीता के प्रेमालाप के माध्यम से संयोग शृंगार का सुन्दर स्वरूप अभिव्यंजित हुआ है। इस अवसर पर राम द्वारा सीता के लिए प्रयुक्त सम्बोधन विशाल-लोचने, तनुमध्यमे, कल्याणि, शोभने, कामिनी, आदि भी संयोग-शृंगार की पुष्टि करने वाले हैं[1]।

संयोग-शृंगार का एक ओर उत्कृष्ट एवं अत्यन्त मार्मिक चित्र उस समय दिखाई देता है, जब राम खरदूषण और उनकी सेना का वध करके लौटते हैं। और सीता सुन्दरी का दृष्टि-प्रसाद उनके समस्त श्रम और क्लान्ति को क्षण भर में दूर कर देता है—

'तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम्।
बभूव हृष्टा वैदेही भर्त्तारं परिषस्वजे ॥' —अर० का० ३०/३९

प्रसन्नता भरे महातमा मुनि जिन राम की प्रशंसा कर रहे थे तथा जिन्होंने राक्षसों के समूह को कुचल दिया था ऐसे अपने प्राण प्रिय राम का बार-बार आलिंगन करके उस समय सीता बहुत हर्षित होती है। उनका मुख-कमल प्रसन्नता से खिल उठता है—

'ततस्तु तं राक्षससंघमर्दनं
सप्पूज्यमानं मुदितैर्महातमभिः।
पुनः परिष्वज्य मुदान्वितानना
बभूव हृष्टा जनकातमजा तदा ॥' —अर० का० ३०/४१

---

१. अयो० का० ९५/७, १०, ११, १२, १४

यहां पर राम शृंगार रस के आलम्बन विभाव हैं। राम द्वारा राक्षसों की सेना को कुचल देना, मुनियों द्वारा उनकी प्रशंसा उद्दीपन विभाव है। सीता का बार-बार आलिंगन करना और प्रसन्नता से सीता के मुख-कमल का प्रफुल्लित हो जाना अनुभाव है। औत्सुक्य, हर्ष, लज्जा, आदि संचारी भाव से परिपुष्ट सीता के अन्तःकरण में विद्यमान 'रति' स्थायी भाव व्यंग्य है, जिससे संयोग-शृंगार की सरस अभिव्यंजना हो रही है।

अपने वीर पति की ऐसी अद्भुत विजय देखकर पति को ही सर्वस्व समझने वाली प्रिया के उदात्त प्रेम का सुन्दर चित्रण कर आदिकवि ने संयोग शृंगार का गौरवान्वित रूप यहां प्रकट किया है। यदि उदात्त तत्व को रस का प्रमुख गुण मानकर देखा जाये तो यह प्रसंग राम और सीता के संयोग-शृंगार की पराकाष्ठा है।

सीता-हरण के पश्चात् राम के विरह-वर्णन में सीता के नख-शिखादि के वर्णन द्वारा भी संयोग-शृंगार सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त हुआ है। वे सीता के पीन पयोधरों की तुलना बिल्व से करते हुए बिल्व वृक्ष से कहते हैं--

'शंसस्व यदि सा दृष्टा बिल्व बिल्वोपमस्तनी ।।' —अर०का० ६०/१३

राम ककुभ वृक्ष में सीता की जंघाओं की समता देखते हुए कहते हैं—

ककुभः ककुभोरुं तां व्यक्तं जानाति मैथिलीम् ।।' —अर० का०६०/१५

सीता के पयोधरों की तुलना तालवृक्ष के पके हुए फलों से करते हुए राम कहते हैं—

'यदि ताल त्वया दृष्टा पक्व तालोपमस्तनी ।।' अर० का० ६०/१८

मृगों की चंचल चितवन में राम को सीता के नेत्रों की समता प्रतीत होती है—

'अथवा मृग शावाक्षीं मृग जानासि मैथिलीम् ।
मृगविप्रेक्षणी कान्ता मृगीभिः सहिता भवेत् ।।'

—अर० का० ६०/२३

महर्षि वाल्मीकि ने जिस प्रकार करुण, वीर आदि रसों की हृदयग्राही योजना की है, उसी प्रकार वियोग-शृंगार की योजना भी विस्तार से एवं मार्मिक रूप से की है किन्तु राम ओर सीता के प्रेम-वर्णन द्वारा संयोग-शृंगार की व्यंजना कवि ने संयत भाषा में एवं अपेक्षाकृत अल्प मात्रा में की है।

राम और सीता के अतिरिक्त अन्य पात्रों में उन्होंने इसकी पूर्ति की है। लंका की ललनाओं के सौन्दर्य तथा उनकी विभिन्न प्रकार की कामुक-चेष्टाओं के वर्णन में कवि ने प्रकारान्तर से शृंगार-रस को मुखरित किया है। किन्तु अनेक स्थानों पर वह शृंगाराभास सा प्रतीत होता है। कहीं-कहीं साधारण वासना का प्रवाह भी परिलक्षित होने लगता है।

लंका युद्ध की समाप्ति पर राम-सीता के मिलन में संयोग-शृंगार

लंका के युद्ध की समाप्ति के अनन्तर जब राम की आज्ञा से विभीषण सीता को लेकर उपस्थित होते हैं, उस प्रसंग में भी मर्यादित उज्ज्वल शृंगार की मनोरम व्यंजना हुई है।

मिलन की आशा के अत्यन्त धूमिल हो जाने के पश्चात् प्रिया-मिलन में जो आनन्द, जो तृप्ति होती है, उसको वाणी अभिव्यक्त नहीं कर सकती। वह आनन्द केवल अनुभूतिगम्य है। जिस प्रकार नवोढा नायिका प्रथम संगम के अवसर पर लज्जा की प्रतिमूर्ति बनी रहती है, वैसी ही स्थिति सीता की भी है। न जाने कितने आशा, निराशा के झूलों में झूलकर अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करके आज सीता अपने प्राणवल्लभ के समक्ष उपस्थित हुई है। मानों यह सर्वथा नवीन मिलन हो। कवि ने थोड़े शब्दों में संयोग-शृंगार की मार्मिक व्यंजना की है—

'लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली।
विभीषणेनानुगता भर्त्तारं साभ्यवर्तते॥' —यु० का० ११४/३४

यहां पर राम आलम्बन-विभाव हैं। अपनी महान् वीरता प्रदर्शित कर विजयी वीर के रूप में खड़े होना उद्दीपन विभाव है। सीता का लज्जित होना अनुभाव है। लज्जा, हर्ष, औत्सुक्य आदि संचारी भावों से परिपुष्ट सीता के अन्तःकरण में स्थित 'रति' स्थायी-भाव व्यंग्य है।

विरहाग्नि में तपकर प्रेम रूपी सुवर्ण कुन्दन बन जाता है। अपने प्रिय के प्रति जो अपार स्नेह होता है, उसका उपभोग न हो सकने के कारण वह प्रेम राशि हो जाता है। राम और सीता के प्रेम की भी यही स्थिति है। अपने पति के जिस मुख चन्द्र को देखने के लिए सीता ने अनेक रात्रियां जाग-जागकर व्यतीत की थीं, वही पतिदेव सम्मुख उपस्थित थे। सीता, विस्मय, हर्ष और स्नेह से अपने स्वामी के मनोहर मुख को देखती हैं—

'विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता।
उदैक्षत मुखं भर्त्तुः सौम्यं सौम्यतरानना॥' —यु० का० ११४/३५

इतने दीर्घकालीन विरह के पश्चात् मिलन की सुखद बेला आई थी, वियोग के क्षणों में दोनों के हृदय एक दूसरे से मिलने के लिए न जाने किस-किस प्रकार से व्याकुल हुए थे। आज संयोग का यह मनभावन क्षण दोनों के हृदय-कमलों को कितना प्रफुल्लित कर रहा होगा। दीर्घ वियोग, और वह भी ऐसा जिसमें मिलन होगा कि नहीं, यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता था। उसके पश्चात् राम और सीता के उस अद्भुत संयोग का वर्णन यद्यपि शब्दों में सम्भव नहीं था, फिर भी आदिकवि ने संक्षिप्त किन्तु मार्मिक रूप से उस संयोगावस्था का वर्णन इस प्रकार किया है—

'अथ समपनुदन्मनः क्लमंसा,
सुचिरमदृष्टमुदीक्ष्य वैप्रियस्य ।
वदनमुदितपूर्ण चन्द्रकान्तं,
विमलशशांक निभानना तदाऽसीत् ।।'
—यु० का० ११४/३६

यहां पर राम और सीता दोनों शृंगार रस के आलम्बन-विभाव हैं तथा एक दूसरे के हृदय में स्थित 'रति' भाव को उद्दीप्त करने से एक दूसरे के प्रति उद्दीपन-विभाव है। सीता का हर्षित होना, एकाग्र दृष्टि से पति के मुख को देखना, लज्जित होना आदि अनुभाव है। हर्ष, औत्सुक्य, लज्जा, विस्मय आदि संचारी भावों से परिपुष्ट 'रति' स्थायी भाव व्यंग्य है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि, वाल्मीकि-रामायण में शृंगार-रस का अत्यन्त उज्ज्वल एवं हृदयावर्जक रूप विद्यमान है। कवि ने सर्वत्र उदात्तता का निर्वाह करते हुए स्वाभाविक रूप में शृंगार-रस का व्यापक प्रसार किया है।

वाल्मीकि-रामायण में वीर-रस

रामकथा मूल रूप में एक वीर-आख्यान था, जिसे सर्वप्रथम इक्ष्वाकुवंश के चारणों ने अपने जातीय नेता को अमर बनाने के लिए गाया था—

'इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम् ।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम् ।।' —बा० का० ५/३

अतः उसमें कथा की मूल भावना बहुत अंशों तक सुरक्षित है अर्थात् वह केवल एक वीर-पुरुष के वीर-कृत्यों की काव्यमयी गाथा है, जिसकी मुख्य घटना है—राम-रावण-युद्ध अन्य सभी घटनाएं इसी घटना की ओर उन्मुख हैं। रामायण के अन्त में राम-राज्य के रूप में धर्म की स्थापना हुई, दिखाई पड़ती है। परन्तु रावण का वध केवल इसके लिए नहीं किया गया था। इसके और भी उद्देश्य थे--सीता का उद्धार, अपमान का बदला और अपनी कुल-प्रतिष्ठा की रक्षा।

रामायण में राम का चरित्र महान्, अकुतोभय वीर का चरित्र है। राम एक वीर-नायक हैं। उनकी वीरता एकांगी नहीं है। उसमें बर्बर भुजबल का प्राधान्य नहीं है, अपितु कर्तव्य की रक्षा के लिए सत्व-रस अथवा आतमबल का प्राधान्य है। राम की वीरता केवल समर-शौर्य में सीमित नहीं थी, अपितु वीरता के सूक्ष्म आत्मिक गुणों से संगठित थी। उसके अवयव थे—त्याग, साहस, क्षमा, औदार्य, सहिष्णुता और अपार प्रेम-शक्ति।

लक्षण-ग्रन्थों में वीर-रस चार प्रकार के माने गये हैं—युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर एवं दयावीर। रामायण में हमें वीर-रस के ये चारों प्रकार अपनी सम्पूर्ण उत्कृष्टता तथा विशालता के साथ दिखाई देते हैं। यद्यपि-रावण-विजेता राम मुख्य रूप से युद्धवीर ही हैं परन्तु विभीषण को लंका का राज्य समर्पित करते हुए उनका दानवीर रूप पूर्ण गरिमा के साथ दीप्त हो रहा है। पिता की आज्ञा से राजवैभव त्यागकर, वनगमन में उनकी धर्मवीरता दिखाई देती है तो अनेक अवसरों पर उनका दयावीर रूप भी महनीय है। रामायण में राम के जिस धर्मवीरत्व का वर्णन किया है, आगे चलकर यही राम को भगवान बनाने में सहायक हुआ और वीरत्व के प्रेरणा-स्रोत राम-भक्ति के प्रेरक बन गए और केवल राम ही नहीं, अपितु लक्ष्मण, भरत, हनुमान आदि पक्ष के पात्रों में एवं मेघनाद, कुम्भकर्ण, रावणादि विपक्षी पात्रों में भी वीर-रस की सशक्त अभिव्यक्ति आदिकवि ने की है।

वीर-रस का जैसा सुन्दर एवं भव्य रूप रामायण में है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

युद्धवीर

वीर-रस का यह सर्वसम्मत एवं प्रमुख प्रकार है क्योंकि कर्म की विविधता, परिस्थितियों की प्रचुरता, सभी प्रकार के संचारी-भावों, अनुभावों, उद्दीपनों आदि के दर्शन सबसे अधिक इसी में पाए जाते हैं। यही एक ऐसा भेद है, जो विस्तार में शृंगार-रस से टक्कर ले सकता है। युद्धवीर में लड़ने की प्रवृत्ति रहती है। शरीर, बुद्धि, धन, मन इत्यादि सभी प्रकार की शक्तियों का प्रदर्शन इसमें होता है। और भेदों में यहां लोग मृत्यु के वरण में उत्साह प्रदर्शित करते हैं, वहां युद्धवीर में मृत्यु को जीतने में उत्साह दिखाते हैं। यही इसकी विशिष्टता है, जिसकी छाप हृदय पर सबसे गहरी पड़ती है।

रामायण में वीर के इस भेद की विस्तृत योजना है। राम, लक्ष्मण ने ताड़का, सुबाहु, विराध आदि अनेक बलवान् राक्षसों का वध करके अपनी वीरता अनेक स्थानों पर प्रदर्शित की है, जहां वीर-रस की सशक्त अभिव्यक्ति कवि ने की है।

विराध-वध में राम की वीरता

राम, लक्ष्मण और सीता वन में ऋषि-मुनियों की सेवा करते हुए अपना समय शान्तिपूर्वक व्यतीत कर रहे थे। भयानक वन में घूमते हुए सीता के साथ राम ने एक नरभक्षी राक्षस को देखा, जिसकी आकृति बहुत भयावह थी। वह विराध नामक राक्षस राम, लक्ष्मण के देखते-देखते सीता को गोद में उठाकर ले जाने लगा।

राम लक्ष्मण उस विराध का संहार कर सीता की रक्षा कर पाते, इससे पूर्व ही वह भयंकर राक्षस अपनी दोनों भुजाओं में उन दोनों वीरों को उठाकर ले जाने लगा, किन्तु राम लक्ष्मण ने अदम्य वीरता का प्रदर्शन करते हुए उस राक्षस का वध करके जानकी को बन्धन-मुक्त कर दिया। राम और लक्ष्मण की अद्भुत वीरता का वर्णन कविवर इस प्रकार करते हैं—

'ततस्तु तौ कांचनचित्रकार्मुकौ
निहत्य रक्षः परिगृह्य मैथिलीम्।
विजहृतुस्तौ मुदितौ महावने
दिवि स्थितौ चन्द्रदिवाकराविव ॥' —अ० का० ४/३४

यहां पर वीर-रस के आलम्बन के रूप में राम और लक्ष्मण का चित्रण दर्शनीय है।

खरादि-राक्षसों के वध में राम की वीरता

राम की वीरता के दर्शन खर द्वारा भेजे गये राक्षसों के वध के प्रसंग में भी होते हैं। राम ने सूर्य तुल्य तेजस्वी तीरों का प्रहार उन राक्षसों पर किया। वे बाण बड़े वेग से उन राक्षसों के वक्षस्थलों को छेदकर रक्त में डूबे हुए निकले और बांबी से बाहर आये हुए सर्पों की भांति तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़े। उन बाणों से हृदय विदीर्ण हो जाने के कारण वे राक्षस जड़ से कटे वृक्षों की भांति धराशायी हो गये—

'ते भित्वा रक्षसां वेगाद् वक्षांसि रुधिरप्लुताः।
विनिष्पेतुस्तदा भूमौ वल्मीकादिव पन्नगाः ॥
तैर्भग्नहृदया भूमौ छिन्नमूला इव द्रुमाः।
निपेतुः शोणितस्नाताविकृता विगतासवः ॥'
—अ० का० २०/२०—२१

राक्षसों के वध से अत्यन्त कुपित होकर खर अपनी विशाल सेना के साथ पुनः राम पर आक्रमण कर देते हैं। क्रूर दृष्टि वाले उन राक्षसों से घिरे हुए राम ऐसे लगते हैं, मानों प्रदोष तिथियों में पार्षद-गणों से घिरे हुए भगवान् शिव हों—

'सर्वैःपरिवृतो रामो राक्षसैः क्रूरदर्शनैः।
तिथिष्विव महादेवो वृतः परिषदां गणैः ॥' —अ० का० २५/१२

राम राक्षसों के छोड़े हुए उन अस्त्र-वस्त्रों को उसी प्रकार ग्रस लेते हैं, जैसे समुद्र नदियों के जल को आत्मसात् कर लेता है—

'तानि मुक्तानि शस्त्राणि यातुधानैः स राघवः ।
प्रतिजग्राह विशिखैर्नद्योधानिव सागरः ।।'

—अ० का० २५/१२

उनके समस्त अंगों में अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से घाव हो गये हैं। शरीर से रक्त बह रहा है। उस समय वे सन्ध्याकाल के मेघों से घिरे हुए सूर्यदेव के समान सुशोभित हो रहे हैं—

'स विद्धः क्षतजादिग्धः सर्वगात्रेषु राघवः ।
बभूव रामः संध्याभ्रैर्दिवाकर इवावृतः ।।' —अर० का० २५/१४

राम अत्यन्त कुपित होकर बाणों की वर्षा प्रारम्भ कर देते हैं। उन बाणों द्वारा शत्रुओं के सैकड़ों, हजारों धनुष, ध्वजाओं के अग्र भाग, ढाल, कवच, भुजाएँ एवं जाघें कटने लगती हैं—

'तैर्धनूंषि ध्वाजग्राणि चर्माणि कवचानि च ।
बाहून् सहस्ताभरणानूरुन् करिकरोपमान् ।
विच्छेद रामः समरे शतशोऽथ सहस्रशः ।।'

—अर० का० २५/२१– २२

चौदह सहस्र राक्षसों एवं त्रिशिरा के वध से अत्यधिक क्षुब्ध होकर खर राम के साथ भयानक युद्ध प्रारम्भ कर देता है। उस समय दोनों वीर भयंकर तीरों की वर्षा से आकाश को ढँक देते हैं। युद्ध करते-करते राम थके हुए—से लगते हैं, किन्तु जैसे छोटे से मृग को देखकर सिंह भयभीत नहीं होता, उसी प्रकार खर की वीरता को देखकर राम उद्विग्न नहीं होते—

'तं सिंहमिव विक्रांतं सिंहविक्रान्त गामिनम् ।
दृष्ट्वा नोद्विजते रामः सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ।।'

—अर० का० २८/१३

राम एक अग्नि के समान तेजस्वी बाण के प्रहार से उस निशाचर को धराशायी कर देते हैं। देवता और चारण भी राम की इस अद्भुत वीरता की प्रशंसा करते हुए पुष्पवर्षा करते हुए—

'अहो बत महत्कर्म रामस्य विदितात्मनः ।
अहो वीर्यमहो दाढर्यं विष्णोरिव हि दृश्यते ।।' —अर० का० ३०/१३

यहां राम वीर-रस के उत्कृष्ट आलम्बन है। खरादी राक्षसों का शस्त्र-प्रहार करना उद्दीपन विभाव है। राम का अद्भुत शौर्य प्रदर्शित करना, कुपित होकर भयंकर तीरों की वर्षा से आकाश को ढक देना अनुभाव है। औत्सुक्य, आवेग आदि संचारी भावों से परिपुष्ट 'उत्साह' स्थायी भाव व्यंग्य है।

कवि ने यहां वीर-रस की इतनी सशक्त अभिव्यक्ति की है कि राम वीर-रस की साक्षात् प्रतिमा जान पड़ते हैं।

खरादि राक्षसों के वधोपरान्त अकम्पन नामक राक्षस ने लंका में रावण के समक्ष उपस्थित होकर राम की वीरता का जो वर्णन किया है, वह भी दर्शनीय है—

'असाध्यः कुपितो रामो विक्रमेण महायशाः ।
आपगायास्तु पूर्णाया वेगं परिहरेच्छरैः ।।
सताराग्रहनक्षत्रं नर्भचाप्यवसादयेत् ।
असौ रामस्तु सीदन्तीं श्रीमानभ्युद्धरेन्महीम् ।।
भित्वा वेलां समुद्रस्य लोकानाप्लावेयद् विभुः ।
वेगं वापि समुद्रस्य वायुं वा विधमेच्छरैः ।।
संहृत्य वा पुनर्लोकान् विक्रमेग महायशाः ।
सक्तः श्रेष्ठः स पुरुषः स्रष्टुं पुनरपि प्रजाः ।।'
—अर० का० ३१/२३-२६

राम की वीरता का रूपक अलंकार के माध्यम से किया गया चित्रण भी अत्यन्त हृदयग्राही है—

राघवेन्द्र वह गन्धयुक्त गजराज हैं, जिसकी गन्ध सूंघकर ही हस्ती रूपी योद्धा दूर भाग जाते हैं। विशुद्ध कुल में जन्म ही उस राघव रूपी गजराज का शुण्ड-दण्ड है, प्रताप ही मद है और सुडौल भुजायें ही दोनों दांत हैं। युद्धस्थल में उनकी ओर देखना भी उचित नहीं है, फिर युद्ध करने की तो बात क्या है?—

'विशुद्धवंशाभिजनाग्रहस्त-
स्तेजोमदः संस्थितदोर्विषाणः
उदीक्षितुं रावणेनेह युक्तः
स संयुगे राघवगन्धहस्ती ।।' —अर० का० ३१/४६

राम मनुष्य के रूप में सिंह है। रणभूमि में स्थित होना ही उनके अंगों की सन्धियां तथा बाल हैं। वह सिंह चतुर राक्षस रूपी मृगों का वध करने वाला है। वाणरूपी अंगों से परिपूर्ण है तथा तलवारें ही उसकी तीक्ष्ण दाढें हैं—

'असौ रणान्तः स्थितिसंधिवालो,
विदग्धरक्षोमृतहा नृसिंहः ।
सुप्तस्त्वया बोधयितुं न शक्यः,
शरांगपूर्णो निशितासिदंष्ट्रः ।।' —अर० का० ३१/४७

सुग्रीव के साथ राम की मित्रता स्थापित हुई। राम ने अपने वचन का पालन करते हुए बाली का वध किया और सुग्रीव को राज्य प्रदान किया, किन्तु

वैभव को पाकर वह विलासिता में डूबकर अपने कर्तव्य को भूल बैठा। राम के लिए सीता का वियोग प्रतिक्षण असह्य हो रहा था। उन्होंने लक्ष्मण द्वारा सुग्रीव को सन्देश भेजते हुए जो वचन कहे, वे वीर-रस की मार्मिक अभिव्यक्ति करते हैं--

'न स संकुचितःपन्था येन बाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगाः ॥' —कि० का० ३०/८१

अक्षयकुमार से युद्ध में हनुमान की वीरता

वीर हनुमान विशाल सागर को पारकर सीता की खोज करते हुए लंका नगरी में पहुंचे। वहां पहुंचकर वीरता का प्रदर्शन करते हुए उन्होंने अनेक राक्षसों को मृत्यु के मुख में पहुंचाया। रावण का संकेत पाकर अक्षयकुमार युद्ध के लिए तैयार हुआ और अश्व, हाथी और बड़े-बड़े रथों की भयंकर ध्वनि से पर्वतों सहित पृथ्वी तथा आकाश को गुंजाता हुआ विशाल सेना के साथ वाटिका के द्वार पर बैठे हुए वीर-हनुमान के पास पहुंचा।

वहां वीर हनुमान एवं अक्षयकुमार का जो भयानक युद्ध हुआ, उसकी कहीं तुलना नहीं थी। उनका युद्ध देवताओं और असुरों के मन में भी भय उत्पन्न करने वाला था—

'तयोर्वभूवाप्रतिमः समागमः।
सुरासुराणामपि सम्भ्रमप्रदः ॥' —सुन्दर का० ४७/१२

उन वीरवरों के युद्ध का वर्णन करते हुए वाल्मीकि की वाणी ओज गुण से दीप्त हो उठती है। हनुमान और अक्षयकुमार का वह युद्ध इतना भयानक है कि उसको देखकर भूतल के सभी प्राणी चीख उठते हैं। सूर्य का ताप कम हो जाता है। वायु की गति रुक जाती है। पर्वत हिलने लगते हैं। आकाश में भयंकर शब्द होने लगता है और समुद्र में तूफान आ जाता है।

'ररास भूमिर्न तताप भानुमान्
बवौ न वायुः प्रचचाल चाचल।
कमेः कुमारस्य च वीर्यसंयुगं,
ननाद च द्यौरुदधिश्च चुक्षुभे ॥' —सु० का० ४७/१३

वे वीर एक दूसरे पर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा कर रहे थे। शरीरों से रक्त की धारायें प्रवाहित हों रहीं थीं। अक्षयकुमार द्वारा बलपूर्वक चलाये गये बाणों से विद्ध होकर हनुमान ने तत्क्षण उत्साहपूर्वक आकाश को विदीर्ण करते हुए मेघ के समान गम्भीर स्वर से गर्जना की। उस समय दोनों भुजाओं और जांघों को चलाने के कारण वे बड़े भयंकर दिखाई देते हैं—

'स तेन बाणैः प्रसभं निपातितैः,
चकार नादं घननादनिःस्वनः ।
समुत्साहेनाशु नभः समारुजन्,
भुजोरुविक्षेपणघोरदर्शनः ॥' —सु० का० ४७/२१

उन्हें आकाश में उछलते देख अक्षयकुमार ने बाणों की वर्षा करते हुए उनका पीछा किया । उस समय वह ऐसा जान पड़ता था, मानों कोई मेघ किसी पर्वत पर ओले और पत्थरों की वर्षा कर रहा हो—

'तमुत्पतन्तं समभिद्रवद् बली,
स राक्षसानां प्रवरः प्रतापवान् ।
रथी रथश्रेष्ठतरः किरञ्छरैः
पयोधरः शैलमिवाश्मवृष्टिभिः ॥' —सु० का० ४७/२२

अन्त में हनुमान के प्रचण्डाघातों से रावण पुत्र अक्षयकुमार मारा जाता है । इस प्रसंग में हनुमान की वीरता अत्यन्त उच्चकोटि की दिखाई देती है ।

यहां पर हनुमान वीररस के आलम्बन विभाव हैं । हनुमान और अक्षयकुमार का एक दूसरे पर भयानक शस्त्रों की वर्षा करना उद्दीपन विभाव है । हनुमान का मेघ के समान गम्भीर गर्जना करना, युद्ध को देखकर भूतल के प्राणियों का चीख उठना, सूर्य का निस्तेज हो जाना, वायु का वेग अवरुद्ध हो जाना, पर्वतों का प्रकम्पित हो जाना, समुद्र में तूफान आ जाना आदि अनुभाव है । औत्सुक्य' आवेग, गर्व, अमर्ष आदि संचारी भावों से परिपुष्ट 'उत्साह' स्थायी भाव व्यंग्य है ।

अक्षयकुमार का वध करके हनुमान अपनी वीरता और अदम्य उत्साह का प्रथम परिचय देने के पश्चात् अशोक-वाटिका के द्वार पर पहुंच जाते हैं ।

हनुमान लंका में अनेक भयंकर राक्षसों का संहार कर अपने पराक्रम की मोहर लगा चुके हैं । यद्यपि रावण की आज्ञा से उनकी पूंछ में आग लगा दी जाती है किन्तु उनका उत्साह कम नहीं होता । अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन करते हुए वे लंका में इतस्ततः विचरण करते रहे । आदिकवि ने यमक अलंकार के माध्यम से हनुमान की वीरता का कितना अच्छा वर्णन किया है—

'स तान् निहत्वा रणचण्डविक्रमः,
समीक्षमाणः पुनरेव लंकाम् ।
प्रदीप्तलांगूल कृतार्चिमाली,
प्रकाशितादित्य इवार्चिमाली ॥' —सु० का० ५३/४४

यहां पर हनुमान उत्साह के साकार रूप प्रतीत होते हैं । भय, शंका, ग्लानि आदि भाव उनको दूर-दूर तक छू नहीं पा रहे हैं ।

उन्होंने सम्पूर्ण लंका में आग लगा दी। गगनचुम्बी अट्टालिकाएं धूं-धूं कर जलने लगीं, चारों ओर हाहाकार मच गया। लंका करुण क्रन्दन करने लगी। पवन-पुत्र हनुमान उत्तमोत्तम वृक्षों से सुशोभित वन को उखाड़कर, युद्ध में बड़े-बड़े राक्षसों को मारकर तथा सुन्दर भवनों से अलंकृत लंकापुरी को जलाकर शान्त हो गये—

'भङ्क्त्वा वनं पादपरत्नसंकुलं,
हत्वा तु रक्षांसि महान्ति संयुगे।
दग्ध्वा पुरीं तां गृहरत्नमालिनीं,
तस्थौ हनुमान् पवनात्मजः कपि॥' —सु० का० ५४/४३

लंका युद्ध में वीर-रस

महाकवि ने वीर-रस के प्रमुख प्रकार युद्धवीर की सुन्दरतम छटा रामायण के युद्धकाण्ड में प्रदर्शित की है। राम रावण आदि का भयानक युद्ध न केवल भारतीय इतिहास की अपितु विश्व इतिहास की रोमांचकारी अविस्मरणीय घटना है। युद्धों का वर्णन वाल्मीकि ने बड़ी तन्मयता के साथ किया है। इस प्रकरण 'युद्धकाण्ड' का पृथक् नाम देकर कवि ने इसकी श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। सम्पूर्ण काण्ड में वीर-रस के विभाव अनुभावादिकों की मार्मिक योजना की गयी है, जिससे सर्वत्र वीरता का संचार होता हुआ दिखाई देता है। राम का महान योद्धा का दिव्य रूप, जो सबके हृदयों को उद्वेलित करता है, इसी प्रसंग में प्रकट हुआ है। वास्तव में यह वर्णन वीरता का शंखनाद करने वाला है।

राक्षसराज रावण को कुम्भकर्ण, मेघनाद तथा अपनी सेना एवं अपनी वीरता पर बहुत गर्व था। वह राम की वीरता का उचित मूल्यांकन नहीं कर पा रहा था, किन्तु विभीषण राम के पराक्रम को भली भांति जानते थे। वे रावण को युद्ध के मार्ग से हटाने के लिए उसके समक्ष राम की वीरता का वर्णन करते हुए कहते हैं—

'यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणाः
रामेरिताः राक्षसपुंगवानाम्।
वज्रोपमा वायुसमानवेगाः,
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली॥' —यु० का० १४/४

कुम्भकर्ण और मेघनाद की तो बात ही क्या है, सूर्य, इन्द्र, वायु, यम आदि देवता भी राम के हाथ से रावण को बचा नहीं सकते—

'जीवंस्तु रामस्य न मोक्ष्यसे त्वं,
गुप्तः सवित्राप्यथवा मरुद्भिः।

न वासवस्यांकगतो न मृत्यो-
नंभो न पातालमनुप्रविष्टः ।।' —यु० का० १४/५

रावण और सुग्रीव के मल्लयुद्ध में वीर-रस

युद्ध का बिगुल बज गया। सर्वप्रथम रावण और सुग्रीव के मल्ल युद्ध द्वारा सहृदयों के हृदयों में वीर-रस का संचार करते हुए कवि अपनी ओजस्वी वाणी में कहता है—

'इत्युक्त्वोत्थाय तं क्षिप्रं बाहुभ्यामक्षिपत् तले ।
कन्दुवत् स समुत्थाय बाहुभ्यामक्षिपद्धरिः ।।' —यु० का० ४०/१३

दोनों के शरीर पसीने से तर और खून से लथ-पथ हो जाते हैं तथा दोनों ही एक दूसरे की पकड़ में आने के कारण निश्चेष्ट होकर खिले हुए सेमल ओर पलाश वृक्षों के समान दिखाई देते हैं—

'परस्परं स्वेदविदिग्धगात्रौ, परस्परं शोणितरक्तदेहौ ।
परस्परं श्लिष्टनिरुद्धचेष्टौ, परस्परं शाल्मलिकिंशुकाविव ।।'
—यु० का० ४०/१४

वे दोनों महाबली वीर घूंसे, थप्पड़, कोहनी और पंजों की मार के साथ असह्य युद्ध करने लगते हैं—

'मुष्टिप्रहारैश्च तलप्रहारै—
ररत्निघातैश्च कराग्रघातैः ।
तौ चक्रतुर्युद्धमसह्यरूपं,
महाबलौ राक्षसवानरेन्द्रौ ।।' —यु० का० ४०/१५

बाघ और सिंह के बच्चों तथा परस्पर लड़ते हुए गजराज के छौनों के समान वे दो वीर अपने वक्षस्थल में एक दूसरे को दबाते और हाथों से परस्पर शक्ति-परीक्षण करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं—

'शार्दूलसिंहाविव जातदंष्ट्रौ, गजेन्द्रपोताविव सम्प्रयुक्तौ ।
संहत्य संवेद्य च तौ कराभ्यां, तौ पेततुर्वे युगपद् धरायाम् ।।'
—यु० का० ४०/६

मतवाले हाथियों के समान सुग्रीव और रावण बलिष्ठ भुजदण्डों द्वारा एक-दूसरे के दांव को रोकते हुए बहुत समय तक बड़े आवेश के साथ युद्ध करते रहें। एक दूसरे को मार डालने का प्रयत्न करते रहे। मल्ल युद्ध के विभिन्न दांव-पेचों का प्रयोग करते रहे, और अन्त में सुग्रीव ने रावण को थकाकर अपनी वानर सेना में प्रवेश किया, जहां सभी ने सुग्रीव की वीरता का अभिनन्दन किया।

यहां पर सुग्रीव एवं रावण आलम्बन विभाव है। दोनों का एक दूसरे को ललकारना, युद्धभूमि में पटकना आदि उद्दीपन विभाव है। दोनों का पसीने में लथ-पथ हो जाना, निश्चेष्ट होकर विकसित सेमल और पलाश के वृक्षों के समान दिखाई देना, क्रोधित होना आदि अनुभाव है। उत्साह, आवेग, गर्व, अमर्ष आदि संचारी भावों से परिपुष्ट 'उत्साह' स्थायी-भाव व्यंग्य है।

वानरसेना ने लंका पर आक्रमण कर दिया, घनघोर युद्ध प्रारम्भ हो गया वीरों की गगनभेदी गर्जनाओं से समस्त युद्धभूमि व्याप्त हो गई। अस्त्र-शस्त्रों की झंकार कर्णकुहरों में प्रविष्ट होने लगी। वानर-सिंहों के सिंहनाद से छोटे-बड़े शिखरों और कन्दराओं सहित मलय-पर्वत गूंज उठा।

हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, रथों के पहियों की घर्घराहट तथा राक्षसों के मुख से निकली ध्वनि के साथ ही शंख और दुन्दुभियों के शब्द तथा वानरों के निनाद से पृथ्वी, आकाश और समुद्र निनादित हो उठे। देवासुर संग्राम की भांति राक्षसों और वानरों में घोर युद्ध होने लगा। राक्षस दमकती हुई गदाओं तथा शक्ति, शूल और फरसों से समस्त वानरों को मारने एवं अपने पराक्रम की घोषणा करने लगे। विशालकाय वानर भी राक्षसों पर बड़े-बड़े वृक्षों, पर्वत-शिखरों, नखों और दांतों से प्रहार करने लगे। और राक्षसों के शरीरों से रक्त की नदियां बहने लगीं—

> 'हरिराक्षसदेवेभ्यः प्रभूताः केशशाद्वलाः।
> शरीर संघाटवहाः प्रससुः शोणितापगाः॥' —यु० का० ४३/१७

रात्रि में भी उन वीरों का भयानक युद्ध होता रहा। सेना में सब ओर वीरों की गर्जनाएं गुंजित होती रहीं—

> 'हत दारय चेहीति कथं विद्रवसीति च।
> एवं सुतुमुलः शब्दस्तस्मिन् सैन्ये तु शुश्रुवे॥' —यु० का० ४४/४

बलवान् वानरों ने युद्ध में राक्षस सेना के भीतर हलचल मचा दी थी। वे क्रोध से पागल हुए जा रहे थे। अतः हाथियों एवं हाथी-सवारों को तथा पताकाओं से सुशोभित रथों को भी खींच लेते और दांतों से काट-काटकर क्षत-विक्षत कर रहे थे—

> वानरा बलिनो युद्धे क्षोभयन् राक्षसीम् चमूम्।
> कुंजरान् कुंजरारोहान् पताका ध्वजिनो रथान्।
> चकर्षुश्च ददंशुश्च दशनैः क्रोधमूर्च्छिता॥' —यु० का० ४४/८

अश्वों की टाप से चूर्ण होकर रथ के पहियों से उड़ाई गई भूमि की धूल योद्धाओं के कान नाक बन्द कर देती थी—

'तुरंगखुरविध्वस्तं रथनेमि समुत्थितम् ।
रुरोध कर्णनेत्राणि युध्यतां धरणीरजः ।।' —यु० का० ४४/१०

युद्धकाण्ड के ५८ वें सर्ग में रूपकालंकार के माध्यम से युद्ध भूमि के वर्णन में वीर-रस का मनोहारी प्रयोग है, जिसमें युद्धभूमि की भयानकता एवं जुगुप्सा का समावेश भी हो गया है—

मृत वीरों की लाशें ही जिसके दोनों किनारे थे, शोणित का प्रवाह ही जिसकी महान् तोय-राशि थी । टूटे-फूटे अस्त्र-शस्त्र ही जिसके तटवर्ती विशाल पादपों के समान थे । जो यमलोक रूपी सागर से मिली हुई थी । सैनिकों के यकृत और प्लीहा जिसके महान् पंक थे । निकली हुई आंतें जहां सेवार के समान थीं । कटे हुए मस्तक और धड़ जहां मछली-से लगते थे । शरीर के छोटे-छोटे अवयव एवं केश जिसमें मांस का भ्रम उत्पन्न कर रहे थे । जहां गृध्र ही हंस बने हुए थे । कंक रूपी सारसों से जो सेवित थी । मेदे ही जहां फेन बनकर चारों ओर फैले थे । पीड़ितों की कराह जिसकी कल-कल ध्वनि थी और कायरों के लिए जिसे पार करना अत्यन्त कठिन था, उस युद्धभूमिरूपिणी नदी को प्रवाहित करके राक्षस और श्रेष्ठ वानर वर्षा के अन्त में सारसों और हंसों से सेवित नदी के समान उस दुर्लंध्य सरिता को उसी प्रकार पार कर रहे थे, जैसे गजयूथपति कमलों के पराग से आच्छादित किसी पुष्करिणी को पार करते हैं—

'हतवीरौघवप्रां तु भग्नायुधमहाद्रुमाम् ।
शोणितौघमहातोयां यमसागरगामिनीम् ।।
यकृत्प्लीहमहापंकां विनिकीर्णान्त्रशैवलाम् ।
भिन्नकाय शिरोमीनामंगावयवशाद्रलाम् ।।
गृध्रहंसवराकीर्णा कंकसारससेविताम् ।
भेदः फेन समाकीर्णामार्तस्तनितनिःस्वनाम् ।।
तां कापुरुषदुस्तारां युद्धभूमिमयीं नदीम् ।
नदीमिव धनापाये हंससारससेविताम् ।।
राक्षसाः कपिमुख्यास्ते तेरुस्तां दुस्तरां नदीम् ।
यथा पद्मरजोध्वस्तां नलिनीं गजयूथपाः ।।'
—यु० का० ५८/२९-३३

यहां पर वीर रस की मन्दाकिनी उद्दाम रूप में प्रवाहित हो रही है । कवि का प्रत्येक शब्द वीर-रस को पुष्ट करने वाला है । दोनों ओर की सेनायें आलम्बन विभाव हैं । उनकी वीरतायुक्त चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं । वीरों का सिंहनाद, शंख एवं दुन्दुभी आदि की गर्जना, उनके शरीरों से प्रवाहित होती हुई रक्त की धारायें

अनुभाव हैं। अमर्ष, आवेग, गर्व, औत्सुक्य आदि संचारी भावों से पुष्ट 'उत्साह' स्थायी भाव व्यंग्य है, जिससे वीर-रस की अभिव्यंजना होती है।

युद्ध में एक ओर नील के नेतृत्व में वानर-सेना भीषण प्रहार कर रही थी, दूसरी ओर प्रहस्त तीरों की वर्षा कर रहा था। उस दुरात्मा प्रहस्त के तीरों का निवारण करने में असमर्थ होकर नील आंखें बन्द कर लेता है। वह उसके प्रहारों को चुपचाप सह लेता है। नील भारी शिला के प्रहार से प्रहस्त के मस्तक को विदीर्ण कर देता है। उसके प्राण-पखेरु उड़ जाते हैं। वह राक्षस जड़ से कटे हुए वृक्ष की भांति भूमि पर गिर पड़ता है—

'स गतासुर्गतश्रीको गतसत्वो गतेन्द्रियः।
पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः॥' —यु० का० ५८/५५

हनुमान एवं रावण के मल्ल-युद्ध में वीर-रस

राक्षस एवं वानर-सेना के वीर एक-दूसरे के रक्त के प्यासे होकर युद्धभूमि में भयानक युद्ध करके अपना उत्साह प्रदर्शित कर रहे हैं। सब ओर उत्साह का सागर हिलौरे मार रहा है। हनुमान एवं रावण पुनः एक दूसरे का आह्वान करने लगते हैं। रावण हनुमान की छाती पर एक तमाचा जड़ देता है। उस प्रहार से हनुमान इधर-उधर चक्कर काटने लगते हैं। किन्तु कुछ ही क्षणों में वे सम्भल कर खड़े हो जाते हैं तथा कुपित होकर उस राक्षस पर थप्पड़ का प्रहार करते हैं। हनुमान का मुष्टि-प्रहार इतना भयानक है कि रावण मार खाकर उसी प्रकार कांप उठता है, जिस प्रकार भूकम्प आने पर पर्वत हिलने लगते हैं—

'स्थितो मुहूर्त्तं तेजस्वी स्थैर्यं कृत्वा महामतिः।
आवघान च संक्रुद्धस्तलेनैवामरद्विषम्॥
ततःस तेनाभिहतो वानरेण महात्मना।
दशग्रीवः समाधूतो यथा भूमितलेऽचलः॥'
—यु० का० ५९/६१-६२

हनुमान की इस वीरता की प्रशंसा करते हुए स्वयं रावण कहता है—

'साधु वानर वीर्येण श्लाधनीयोऽसि मेरिपुः॥' —यु० का० ५९/६५

रावण जैसा शत्रु भी जिसकी प्रशंसा कर रहा हो, उसकी वीरता वास्तव में अद्भुत है। रावण और हनुमान का यह भीषण युद्ध चल ही रहा था कि अग्निपुत्र नील रावण से घमासान युद्ध करने लगता है, यद्यपि नील के प्रहारों से रावण भयभीत हो जाता है, किन्तु आग्नेयास्त्र के आघात से नील मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है, तब लक्ष्मण युद्ध के लिए रावण के सम्मुख उपस्थित हो जाते हैं। दोनो वीरों की सिंह-गर्जनाओं और धनुषों की टंकार से युद्ध भूमि निनादित हो उठती

है। वे दोनों महावीर एक दूसरे पर भयंकर प्रहार करते हैं और दूसरे के प्रहार को निष्फल कर देते हैं। रावण निरुपाय होकर ब्रह्मा द्वारा दी हुई दिव्य शक्ति का प्रयोग कर लक्ष्मण को मूर्च्छित कर देता है—

'स तां सधूमानलसंनिकाशां, वित्रासनां संयति वानरानाम्।
चिक्षेप शक्तिं तरसा ज्वलन्तीं, सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथः॥'
—यु० का० ५६/१०८

लक्ष्मण को मूर्च्छितावस्था में देखकर हनुमान का क्रोध चरम सीमा पर पहुंच जाता है। क्रोधाविष्ट हनुमान दौड़ते हुए रावण की ओर जाते हैं और रावण के कठोर वक्षस्थल पर वज्रसम कठोर मुक्के का ऐसा भयंकर प्रहार करते हैं कि वह महाबली रावण धरती पर घुटने टेक देता है। उसका शरीर थर-थर कांपने लगता है और वह भूमि पर गिर पड़ता है। उसके अंगों से रक्त बहने लगता है—

'तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः।
जानुभ्यामगद् भूमौ चचाल च पपात च॥
आस्यैश्च नेत्रैः श्रवणैः पपात रुधिरं बहु।
विघूर्णमानो निश्चेष्टो रथोपस्थ उपाविशत्॥'
—यु० का० ५६/११५-११६

मूर्च्छित हुआ रावण युद्ध भूमि में तड़पता रहा, छटपटाता रहा और ऋषि, देवता तथा वानर हर्षनाद करने लगे।

यहां पर हनुमान, लक्ष्मण, नील, रावण वीर-रस के आलम्बन विभाव हैं। वीर-गर्जनाएं, युद्ध भूमि का भयावह वातावरण, वीरों का अदम्य उत्साह उद्दीपन विभाव हैं। नील, लक्ष्मण एवं रावण का मूर्च्छित होना, रावण के मुख नेत्र और कानों से रक्त बहना, हनुमानादि के कानों से रक्त बहना, हनुमान आदि का अत्यन्त क्रोधित होना आदि अनुभाव हैं। आवेग, मद, गर्व, अमर्ष, औत्सुक्य, श्रम आदि संचारी भावों से परिपुष्ट होकर 'उत्साह' स्थायी भाव वीर-रस की मार्मिक अभिव्यंजना करता है।

कुछ ही समय पश्चात् वह पुनः अपने रथ पर आरूढ़ हो जाता है। उसको रथ पर बैठा हुआ देखकर राम उसकी ओर ऐसे दौड़ते हैं जैसे कुपित हुए भगवान् विष्णु अपना चक्र उठाये विरोचनकुमार बलि पर टूट पड़े थे—

'तमालोक्य महातेजाः प्रदुद्राव स रावणम्।
वैरोचमिव क्रुद्धो विष्णुरभ्युद्यतायुधः॥' —यु० का० ५६/१२७

दोनों वीर भयानक अस्त्रों का प्रहार करते हैं। राम, रावण के कठोर प्रहारों

को निष्फल कर देते हैं और अपने तेजस्वी बाणों से रावण की विशाल छाती में प्रहार कर देते हैं—

'अथेन्द्रशत्रुं तरसा जघान, बाणेन वज्राशनिसंनिमेन ।
भुजान्तरे व्यूढजातरुपे, वज्रेण मेरुं भगवानिवेन्द्रः ।।'
—यु० का० ५६/१३२

जो रावण वज्र और अशनि के प्रहार से भी कभी क्षुब्ध एवं विचलित नहीं हुआ था, वही वीर राम के बाणों से घायल होकर अत्यन्त आर्त्त एवं कम्पित हो उठता है और उसके हाथ से धनुष टूटकर गिर पड़ता है—

'यौ वज्रपाताशनि संनिपातान्न
चुक्षुभे नापि चचाल राजा ।
स राम बाणाभिहतो भृशार्त्त-
श्चचाल चापं न मुमोच वीरः ।।' --यु० का० ५६/१३६

राम के एक चमचमाते हुए अर्ध चन्द्राकार बाण से राक्षसराज रावण का सूर्य के समान चमकता हुआ मुकुट कट जाता है—

'तं विह्वलन्तं प्रसमीक्ष्य रामः,
समाददे दीप्तमयार्धचन्द्रम् ।
तेनार्कवर्ण सहसा किरीटं,
चिच्छेद रक्षोधिपतेर्महात्मा ।।' —यु० का० ५६/१४०

इस प्रसंग में अनुभावों की इतनी सुन्दर योजना की गई है कि वीर-रस की सरिता सबको आप्यायित कर रही है ।

राम और कुम्भकर्ण के युद्ध में वीर-रस

राम और कुम्भकर्ण का भयानक युद्ध भी रामायण का वीर-रसोत्पादक प्रसंग है । कुम्भकर्ण ने युद्ध भूमि में आकर सहस्रो वानर-वीरों को धराशायी कर दिया । जो वीर उसके समक्ष आता, वह उसका संहार करता आ रहा था । वाल्मीकि ने युद्ध-वर्णनों के अवसर पर कहीं पर भी विपक्षी पात्रों की वीरता वर्णित करने में कृपणता नहीं दिखाई है । क्योंकि रामादि की सच्ची वीरता तभी प्रकट होती है जब वे महान् बलशाली राक्षस वीरों को पराजित करते हैं । किसी साधारण व्यक्ति को पराजित कर देने में वीरता का महनीय रूप प्रकट नहीं होता ।

जब कुम्भकर्ण रक्त की नदियां प्रवाहित करता हुआ आगे बढ़ रहा था, तब वायु-पुत्र हनुमान पर्वत-शिखर हाथ में लेकर कुम्भकर्ण पर बड़े वेग से प्रहार कर देते हैं । उस मार से कुम्भकर्ण व्याकुल हो उठता है और उसका सम्पूर्ण शरीर रक्त से भीग जाता है—

'स कुम्भकर्ण कुपितो जघान, वेगेन शैलोत्तम भीमकायम् ।
संचुक्षुभे तेन तदाभिभूतो, मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसक्तः ।।'

—यु० का० ६७/१८

कुम्भकर्ण भी बिजली के समान चमकते हुए शूल का प्रहार हनुमान के वक्ष-स्थल पर करता है, जैसे कार्तिकेय ने अपनी भयानक शक्ति से क्रौंच पर्वत को आहत कर दिया था—

'स शूलमाविध्य तडितत्प्रकाशं,
गिरिं यथा प्रज्ज्वलिताग्निशृंगम् ।
बाह्वन्तरे मारुतिमाजधान,
गुहोऽचलं क्रौंचमिवोग्रशक्त्या ।।' —यु० का० ६७/१९

उस शूल के आघात से हनुमान का वक्षस्थल विदीर्ण हो जाता है, उनके मुख से रक्त बहने लगता है । उस समय पीड़ा के कारण उन्होंने जो भयानक आर्त्तनाद किया वह प्रलयाकालीन मेघ-गर्जना के समान प्रतीत हो रहा था—

'स शूलनिर्भिन्न महाभुजान्तरः
प्रविह्वलः शोणितमुद्वहन् मुखात् ।
ननाद भीमं हनुमान् महाहवे,
युगान्तमेघस्तनितस्वनोपमम् ।।' —यु० का० ६७/२०

उस समय हाथ में शूल लेकर युद्धभूमि में विचरण करता हुआ महाबली कुम्भकर्ण वज्रधारी इन्द्र एवं पाशधारी यमराज के समान दिखाई दे रहा था—

'वज्रहस्तो यथा शक्रः पाशहस्त इवान्तकः ।
शूलहस्तो बभौ युद्धे कुम्भकर्णो महाबलः ।।' —यु० का० ६७/३८

राम-सेना के अनेक महारथियों को अपने प्रचण्ड आघातों से घायल करता हुआ वह राक्षस अन्त में पुनः परम वीर राम के समक्ष आता है । वह जल की धारा के समान राम की बाण वर्षा को अपने शरीर से पीता है । और भयानक मुद्गर को घुमा घुमाकर उनके बाणों के महान् वेग को नष्ट करता है—

'स वारिधारा इव सायकांस्तान्, पिबञ्शरीरेण महेन्द्रशत्रुः ।
जघान रामस्य शरप्रवेगं, व्याविध्य तं मुद्गरवेग्रम् ।।'

—यु० का० ६७/१५३

राम वायव्य नामक अस्त्र का प्रहार करके, उस निशाचर की दाहिनी भुजा काट देते हैं । तथा ऐन्द्रास्त्र से अभिमन्त्रित दूसरे स्वर्णजटित बाण द्वारा उसकी दूसरी भुजा भी काट देते हैं । उसके दोनों पैर भी काट देते हैं । अपनी दोनों भुजाओं और पैरों के कट जाने पर वह राक्षस विकराल मुख फैलाकर जैसे राहु आकाश में

चन्द्रमा को ग्रस लेता है, वैसे ही वह राम को ग्रसने के लिए भयानक गर्जना करता हुआ उन पर टूट पड़ता है—

'निवृत्तबाहुर्विनिकृत्तपादो, विदार्य वक्त्रं वडवाग्रमुखाभम् ।
दुद्राव राम सहसाभिगर्जन्, राहुर्यथा चन्द्रमिवान्तरिक्षे ।।'
—यु० का० ६७/१६३

राम स्वर्णभूषित तेज बाणों से उसका मुख भर देते हैं। मुख भर जाने पर बोलने में असमर्थ वह आर्त्तनाद करता हुआ मूर्च्छित हो जाता है—

'अपूरयत् तस्य मुखं शिताग्रै, रामः शरैर्हेम पिनद्धपुंखैः ।
सम्पूर्णवक्त्रो न शशाक वक्तुं, चुकूज कृच्छ्रेण मुमूर्च्छ चापि ।।'
—यु० का० ६७/१६४

दिव्य शक्ति सम्पन्न बाण के प्रहार से कुम्भकर्ण का मस्तक धड़ से अलग होकर भूमि पर गिर पड़ता है। उसके मर जाने पर पृथ्वी हिलने लगती है। पर्वत भी हिलने लगते हैं और सम्पूर्ण देवता आनन्द-विभोर होकर तुमुलनाद करते हैं। राक्षस करुण चीत्कार करते हैं। यहां पर राम का वीर रूप दर्शनीय है—

'स देवलोकस्य तमो निहत्य,
सूर्यो यथा राहुमुखाद् विमुक्तः ।
तथा व्यभासीद्धरिसैन्य मध्ये,
निहत्य रामो युधि कुम्भकर्णम् ।।' —यु० का० ६७/१७५

वीर-रस की दृष्टि से यह प्रसंग अत्यन्त मार्मिक है। यहां पर राम और कुम्भकर्ण आलम्बन विभाव हैं। उनकी वीरोचित चेष्टायें, एक दूसरे पर किए गए कठोर प्रहारादि उद्दीपन विभाव हैं। कुम्भकर्ण के अंग-प्रत्यंगों का कट-कटकर युद्धभूमि में गिर पड़ना, मूर्च्छित होकर गिर जाना और मृत्यु को प्राप्त हो जाना, देवताओं का हर्षनाद और राक्षसों का करुण-क्रन्दन आदि अनुभाव हैं। औत्सुक्य, गर्व, अमर्ष, विषाद, मूर्च्छा आदि संचारी भावों से परिपुष्ट 'उत्साह' स्थायी भाव वीर-रस की अभिव्यंजना करता है।

लक्ष्मण-इन्द्रजित् युद्ध में वीर रस

लंका के युद्ध में जहां राम, रावण के प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी योद्धा के रूप में वर्णित है, वहां लक्ष्मण इन्द्रजित् को भी परस्पर प्रतिद्वन्द्वी के रूप में चित्रित किया गया है। दोनों ही महान् पराक्रमी योद्धा थे, जो कभी रण क्षेत्र में पराजित नहीं हुए थे, वे रोषपूर्ण वचन कहते हुए एक दूसरे पर भयानक अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करते हैं। इन्द्रजित् सांप के समान विषैले वेगशाली बाणों के प्रहार से लक्ष्मण को घायल कर देता है। बाणों से उनका शरीर क्षत-विक्षत हो जाता है। वे रक्त से नहा उठते हैं—

'स शरैरतिविद्धांगो रुधिरेण समुक्षितः ।
शुशुभे लक्ष्मणः श्रीमान् विधूम इव पावकः ।।' —यु० का० ८८/२०

इन्द्रजित् पुनः लक्ष्मण से कठोर वचन कहने लगता है । उसके कठोर वचनों से लक्ष्मण कुपित हो जाते हैं और पुनः उन महावीरों का भीषण युद्ध प्रारम्भ हो जाता है ।

एक ओर पुरुषसिंह लक्ष्मण हैं तो दूसरी ओर राक्षससिंह इन्द्रजित् । दोनों युद्धभूमि में एक दूसरे पर विजय पाना चाहते थे । उन दोनों का वह तुमुल संग्राम भयंकर था—

'स बभूव महाभीमो नरराक्षससिंहयोः
विमर्दस्तुमुलो युद्धे परस्पर जयैषिणोः ।।' —यु० का० ८८/३३

वे दोनों वीर पराक्रमी, बलसम्पन्न, विक्रमशाली तथा अनुपम बल और तेज से युक्त होने के कारण अत्यन्त दुर्जय थे । वे दोनों परस्पर इस तरह जूझ रहे थे, मानों आकाश में दो ग्रह टकरा गये हों—

'विक्रान्तौ बलसम्पन्नावुभौ विक्रमशालिनौ ।
उभौ परम दुर्जेयावतुल्यबलतेजसौ ।।
युयुधाते तदावीरौ ग्रहाविव नभोगतौ ।
बलवृत्राविव हि तौ युधि वै दुष्प्रधर्षणौ ।।' यु० का० ८८/३४-३५

युद्ध भूमि में एक दूसरे पर भयंकर बाणों की वर्षा करते हुए उन वीरों की तुलना आपस में लड़ते हुए दो सिंहों से करते हुए कवि कहते हैं—

'युयुधाते महात्मानौ तदा केसरिणाविव ।
बहूनवसृजन्तौ हि मार्गणौधानवस्थितौ ।
नरराक्षसमुख्यौ तौ प्रहृष्टावभ्ययुध्यताम् ।।' —यु० का० ८८/३६

दोनों के शरीर बाण-समूहों से व्याप्त थे । दोनों के ही कवच और ध्वज कट गये थे । उनके शरीर से गरम-गरम रक्त उसी प्रकार बह रहा था, जैसे दो झरने जल बहा रहे हों—

'तौ शरौघैस्तयाकीर्णौ निकृत्तकवचध्वजौ ।
सृजन्तौरुधिरं चोष्णं जलं प्रस्रवणाविव ।।' —यु० का० ८८/६०

बाण चलाते समय दोनों की हथेली और प्रत्यंचा की भयंकर ध्वनि पृथक्-पृथक् सुनाई देती थी, जो भयंकर वज्र प्रहार की आवाज के समान हृदय में कम्प उत्पन्न कर रही थी ।

कवि ने उन दोनों वीरों के क्षत-विक्षत रक्तस्नात शरीरों की तुलना पत्रहीन एवं रक्त वर्ण के पलाश और सेमल के वृक्षों से की है—

'तयोः कृतव्रणो देहौ शुशुभाते महात्मनोः ।
सुपुष्पाविव निष्पत्रौ वने किंशुकशाल्मली ।।' —यु० का० ८८/७१

आदि कवि ने इन वीरों के युद्धों का चित्रण इतनी कुशलता से किया है कि रणभूमि का सम्पूर्ण दृश्य नेत्रों के समक्ष नर्तन करने लगता है—

अगले दिन पुनः वे दोनों वीर परस्पर युद्ध करने लगते हैं। एक दूसरे पर भयंकर आघात करते हुए वे वीर लड़ने के लिए निकले हुए गजराजों के समान प्रतीत हो रहे थे। उनके बाणों की टक्कर से अग्नि चमक उठती थी—

'संनिपातस्तयोश्चासीच्छरयोर्घोर रूपयोः ।
सधूमविस्फुलिंगश्च तज्जोऽग्निर्दारुणोऽभवत् ।।' —यु०का० ९०/५२

लक्ष्मण के ऐन्द्रास्त्र से संयुक्त अति शक्ति सम्पन्न बाण से इन्द्रजित् का शिरस्त्राणासहित दीप्तिमान् मस्तक धड़ से कटकर भूमि पर गिर पड़ता है।

राक्षसपुत्र का रक्त से लथपथ वह विशाल सिर भूमि पर सुवर्ण के समान दिखाई देने लगता है—

'तद् राक्षसतनूजस्य भिन्नस्कन्धं शिरो महत् ।
तपनीयनिभं भूमौ ददृशे रुधिरोक्षितम् ।।' —यु० का० ९०/७२

इन्द्रजित् के धराशायी होते ही राक्षस सम्पूर्ण दिशाओं में भागने लगते हैं जैसे सूर्यास्त होने पर उसकी रश्मियां नहीं ठहरती हैं—

'यथास्तंगत आदित्ये नावतिष्ठन्ति रश्मयः ।
तथा तस्मिन् निपतिते राक्षसास्ते गता दिशः ।।' —यु० का० ९०/८१

यहां पर भी लक्ष्मण और इन्द्रजित् का वर्णन करते हुए अनुभावों की इतनी सुन्दर योजना की गयी है कि सहृदय वीर-रस की सरिता में आकण्ठ निमग्न हो जाता है।

राम-रावण युद्ध में वीर रस

पुत्र वध से सन्तप्त होकर राक्षसराज रावण अपनी सेना के साथ राम की सेना पर टूट पड़ता है। रणभूमि में रक्त की नदियां बहने लगती हैं। वानर-वीर यद्यपि बहुत बलवान् थे, किन्तु वे रावण की मार सहन न कर सकने के कारण करुण-क्रन्दन करते हुए शरणागत-वत्सल राम की शरण में चले जाते हैं। तब महा-तेजस्वी राम धनुष लेकर राक्षस सेना पर बाणों की वृष्टि करने लगते हैं और जैसे तपते हुए सूर्य पर बादल आक्रमण नहीं कर सकते, उसी प्रकार अपने बाण रूपी

अग्नि से राक्षस सेना को दग्ध करते हुए राम पर वे क्रूर राक्षस आक्रमण नहीं कर पाते—

'प्रविष्टं तु तदा रामं मेघाः सूर्यमिवाम्बरे ।
नाधिजग्मुर्महाघोरा निर्दहन्तं शराग्निना ।।' —यु०का० ९३/१९

राम के प्रहार से राक्षस इतने भयभीत हो गये हैं कि कभी उनको हजार राम दिखाई देते हैं तो कभी एक ही राम के दर्शन होते हैं—

'ते तु राम सहस्राणि रणे पश्यन्ति राक्षसाः ।
पुनः पश्यन्ति काकुत्स्थमेकमेव महाहवे ।।' —यु० का० ९३/२७

एक-एक करके रावण के सभी पराक्रमी वीर राम के बलवान् योद्धाओं द्वारा मारे जा रहे थे । रावण का दृश्य हाहाकार करने लगता है । उसकी क्रोधाग्नि धधक उठती है और वह कहने लगता है—

'रामवृक्षं रणे हन्मि सीतापुष्पफलप्रदम् ।
प्रशाखा यस्य सुग्रीवो जाम्ववान् कुमुदो नलः ।।'—यु०का० ९९/४

रावण द्वारा अत्यन्त क्रोधपूर्वक रूपकालंकार के माध्यम से कहे गये ये शब्द वीर-रस की सशक्त अभिव्यक्ति कर रहे हैं ।

वह अपने रथ की घर्घराहट से दशों दिशाओं को गुंजाता हुआ बड़ी तेजी से राम की ओर बढ़ता है । उसके रथ की ध्वनि से नदी, पर्वत एवं वनों सहित वहां की भूमि गूंज उठती है । धरती हिलने लगती है । और पशु-पक्षी भय से थर्रा उठते हैं ।

रावण एक अमोघ शत्रुघातिनी शक्ति को जो अपने तेज से प्रज्ज्वलित हो रही थी, लक्ष्मण की ओर प्रचण्ड वेग से चला देता है । उस शक्ति से हृदय विदीर्ण हो जाने के कारण लक्ष्मण पृथ्वी पर गिर पड़ता है । राम उस शक्ति को लक्ष्मण के वक्षसे निकालने में संग्लन हैं और रावण उन बाणों की वर्षा करता रहता है । राम अपने दोनों हाथों से उस शक्ति को लक्ष्मण के शरीर से बाहर निकाल देते हैं और क्रोधित होकर उसे हाथों से तोड़ देते हैं । राम का क्रोध चरम सीमा पर पहुंच जाता है। वे पल भर में पृथ्वी को राक्षस रहित कर देना चाहते हैं । वानर सेना को सम्बोधित कर कहे गये राम के ओजस्वी शब्दों में उनकी परम वीरता परिलक्षित हो रही है । वे कहते हैं—

'अस्मिन् मुहूर्ते नाचिरात् सत्यंप्रतिशृणोमि वः ।
अरावणमरामं वा जगद् द्रक्ष्यथ वानराः ।।' —यु० का० १००/४८

'अध पश्यन्तु रामस्य रामत्वं मम संयुगे ।
त्रयो लोकाः सगन्धर्वाः सदेवाः सर्षिचारणाः ।।'—यु० का० १००/५५

राम आज युद्ध में ऐसा वीर-कर्म प्रदर्शित करने की घोषणा करते हैं, जिसे जब तक यह वसुधा स्थिर रहेगी, चराचर जगत् के प्राणी और देवता भी स्मरण करते रहेंगे —

'अथ कर्म करिष्यामि यल्लोकाः सचराचराः ।
सदेवाः कथयिष्यन्ति यावद् भूमिर्धरिष्यति ।
समागम्य सदा लोके यथा युद्धं प्रवर्तितम् ।।' —यु० का १००/५६

राम जैसे परमवीर के मुख से निकले ये शब्द वीर-रस की योजना में अत्यन्त प्रभावपूर्ण हैं । राम रावण पर उसी तरह बाणों की वर्षा करने लगते हैं जैसे मेघ जल की वर्षा करता है । प्रहार करते हुए उन वीरों के बाणों के परस्पर टकराने से और धनुष की प्रत्यंचा की टंकार की ध्वनि से समस्त प्राणियों के अन्तःकरण प्रकम्पित हो उठते हैं—

'तयोर्ज्यातलनिर्घोषो रामरावणयोर्महान् ।
त्रासनः सर्वभूतानां सम्बभूवाद्भूतोपमः ।।' —यु० का० १००/६१

राम के भीषण प्रहारों से भयभीत होकर रावण युद्धभूमि से भाग जाता है ।

राम और रावण का यह भयानक युद्ध कई दिनों तक चलता रहा । दोनों ओर की सेना का संहार होता रहा और युद्ध का वह अन्तिम दिन भी आ गया, इतिहास जिसकी प्रतीक्षा कर रहा था । आदिकवि की ओजस्वी वाणी जिसका वर्णन करने के लिए लालायित हो रही थी जिसको चराचर सम्पूर्ण जगत् देख रहा था, जो वीर-रस का सर्वश्रेष्ठ प्रसंग बना । इस युद्ध का वर्णन कवि ने बड़ी तन्मयता एवं विस्तृत रूप में किया है ।

राम और रावण के युद्ध को देखकर समस्त वसुन्धरा कांप उठती है। सूर्य की प्रभा निस्तेज हो जाती है और पवन की गति भी अवरुद्ध हो जाती है—

'चकम्पे मेदिनी कृत्स्ना सशैलवन कानना ।
भास्करो निष्प्रभश्चासीत् वनौ चापि मारुतः ।।'
—यु० का० १०७/४७

देवता, गन्धर्व एवं अप्सरायें भी उस महान् युद्ध को उत्सुकतापूर्वक देख रहे थे । उनके मुख से सहसा ही ये शब्द निकल पड़ते हैं—

'गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः ।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ।।' —यु० का० १०९/५१

राम और रावण का युद्ध इतना अद्भुत था कि कवि के पास उपमानों का अनन्त वैभव होते हुए भी उनके युद्ध के वर्णन के लिए कोई उपनाम नहीं हैं । इससे

अधिक वीरता का और युद्ध का वर्णन क्या हो सकता है। जैसा उन वीरों का युद्ध महान् था, वैसा ही प्रभावशाली वर्णन कवि ने किया है।

रघुकुल तिलक राम एक विषधर सर्प के समान बाण का सन्धान करके जगमगाते कुण्डलों से युक्त रावण का सुन्दर मस्तक काट डालते हैं किन्तु उसके स्थान पर वैसा ही दूसरा नया सिर उत्पन्न हो जाता है। यह क्रम चलता रहा। राम रावण के एक-एक मस्तक को काटते रहे और उसके स्थान पर दूसरा मस्तक उत्पन्न होता रहा।

राम और रावण का वह युद्ध न रात में बन्द होता था और न दिन में। दो घड़ी अथवा एक क्षण के लिए भी उसका विराम नहीं हुआ—

> नैव रात्रि न दिवसं न मुहूर्त्तं न च क्षणम्।
> रामरावणयोर्युद्धं विराममुपगच्छति ॥' —यु० का० १०७/६६

जब राम ने अगस्त्य ऋषि द्वारा प्रदत्त ब्रह्मास्त्र को वेदोक्त पद्धति से अभिमन्त्रित कर उसका सन्धान किया, तब सभी प्राणी थर्रा उठे और धरती डोलने लगी। कुपित होकर बड़े यत्न के साथ वह मर्मभेदी बाण राम ने रावण पर चला दिया। उस बाण से रावण प्राणहीन हो वज्र से मारे हुए वृत्रासुर के समान रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा—

> 'गतासुर्भीमवेगस्तु नैर्ऋतेन्द्रो महाद्युतिः।
> पपात स्पन्दनाद् भूमौ वृत्रो वज्रहतो यथा ॥' —यु० का० १०८/२२

उस समय आकाश में देवता मधुर स्वर में दुन्दुभी बजाने लगे। दिव्य सुवर्ण विकीर्ण करने वाला पवन मन्द गति से प्रवाहित होने लगा। चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। और इस ऐतिहासिक युद्ध की समाप्ति पर समस्त दिशायें प्रसन्न हो गयीं। उनमें प्रकाश व्याप्त हो गया, आकाश निर्मल हो गया। पृथ्वी का कांपना बन्द हुआ, वायु स्वाभाविक गति से चलने लगी तथा सूर्य की प्रभा स्थिर हो गयी—

> 'ततः प्रजग्मुः प्रशमं मरुद्गणा
> दिशः प्रसेदुर्विमलं नभोऽभवत्।
> मही चकम्पे न च मारुतो ववौ,
> स्थिरप्रभश्चाप्यभवद् दिवाकरः ॥' —यु० का० १०८/३२

दानवीर

दानवीर वही कहा जाता है जो दान करने में उत्साह दिखाता है। यों तो सभी कुछ न कुछ दान करते हैं, किन्तु सभी को दानवीर नहीं कहा जाता। दान करने

में ही जिसे प्रसन्नता होती है और उससे बड़े से बड़े कष्ट को सहने में जिसे दुःख का अनुभव नहीं होता, वही सच्चा दानवीर कहा जाता है। ऐसे प्रसंग में ही वीर रस के 'दानवीर' नामक भेद की सुन्दर अभिव्यक्ति होती है।

वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार की व्यंजना विशद एवं मनोहारी रूप से की गयी है। कवि ने रामादि महनीय चरित्रों में दान विषयक उत्साह की सुन्दर योजना की है।

दशरथ की दानवीरता

यदि बालकाण्ड को प्रक्षिप्त न माना जाए तो रामायण में सर्वप्रथम इसी काण्ड में दशरथ की दानवीरता दिखाई देती है। सरयू नदी के तट पर वेदवेदांग-निष्णात विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न कराया गया। दशरथ ने दान रूप में होता को अयोध्या से पूर्व दिशा का सारा राज्य सौंप दिया, अध्वर्यु को पश्चिम दिशा तथा ब्रह्मा को दक्षिण दिशा का राज्य दे दिया। उद्गाता को उत्तर दिशा की सारी भूमि दे दी। राजा दशरथ ने ऋत्विजों को समस्त पृथ्वी दान कर दी—

'प्राचीं होत्रे ददौ राजा दिशं स्वकुलवर्धनः।
अध्वर्यवे प्रतीचीं तु ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम्॥
उद्गात्रे तु तयोदीचीं दक्षिणैषा विनिर्मिता।
अश्वमेद्ये महायज्ञे स्वयंभुविहिते पुरा॥'
—बा० का० १४/४३-४४

ऋत्विजों को इस प्रकार दान देकर दशरथ परम हर्ष अनुभव कर रहे थे, किन्तु ऋत्विजों ने कहा—'राजन् इस पृथ्वी की रक्षा करने में केवल आप अकेले ही समर्थ हैं, वेदादि के स्वाध्याय में ही रत रहने वाले हम ब्राह्मणों द्वारा वसुधा की रक्षा असम्भव है, आप इस भूमि का कुछ मूल्य ही हमें दे दीजिए।'

उनके ऐसा कहने पर राजा ने उन्हें दस लाख गौएं प्रदान की। दस करोड़ स्वर्ण मुद्रायें तथा उससे चौगुनी रजत मुद्रायें भी अर्पित कीं—

'गवा शतसहस्राणि दश तेभ्यो ददौ नृपः।
दशकोटिं सुवर्णस्य रजतस्य चतुर्गुणम्॥' —बा० का० १४/५०

राम की दानवीरता

पिता की आज्ञा से राम चौदह वर्ष के वनवास के लिए प्रस्थान की तैयारी कर रहे हैं। अनुज लक्ष्मण एवं पत्नी सीता भी उनके साथ जा रहे हैं। वनगमन से पूर्व राम अपनी सम्पत्ति ब्राह्मणों को दान के रूप में वितरित कर देते हैं। वे सभी

को जी भर कर दान दे रहे हैं। अपने कोषाध्यक्ष से अपना सम्पूर्ण धन मंगवा लेते हैं और बालकों, वृद्धों, ब्राह्मणों एवं दीन दुःखियों में उसे वितरित करवा देते हैं। उसी समय एक निर्धन त्रिजट नामक गर्गगोत्रीय ब्राह्मण राम के पास पहुंचकर अपनी निर्धनता प्रकट करता है। राम उनसे कहते हैं कि आपका यह जो दण्ड है, इसे आप जितनी दूर फेंक सकें, फेंक दीजिए, वहां तक की सारी गौएं आपको समर्पित कर दूंगा। उस ब्राह्मण ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से घुमाकर वह डंडा फेंका जो सरयू नदी से उस पार हजारों गौओं से भरे उस गोष्ठ में एक सांड के पास गिरा। राम ने त्रिजट को हृदय से लगा लिया और सरयू तट से लेकर उस पार गिरे हुए दण्ड के स्थान तक की सारी गौएं त्रिजट के आश्रम पर भेजकर अपनी महान् दानवीरता का परिचय दिया।

उस समय वहां कोई भी ब्राह्मण, सुहृद, सेवक, दरिद्र अथवा भिक्षुक ऐसा नहीं था, जो राम के सम्मान, दान तथा आदर-सत्कार से तृप्त न हुआ हो—

'द्विजः सुहृद् भृत्यजनोऽथवा तदा,
दरिद्र भिक्षाचरणस्य यो भवेत्।
न तत्र कश्चिन्न बभूव तर्पितो,
यथार्हसम्माननदान सम्भ्रमैः ॥' —अयो० का० ३२/४५

राम का इससे भी अधिक दानवीरत्व उस समय प्रकट होता है जब वे बड़ी नम्रता से अपने पिता के समक्ष धन-धान्य से परिपूर्ण वसुधा के राज्य पर अपना अधिकार होते हुए भी भाई भरत को प्रदान करने के लिए निवेदन करते हैं—

'इयं सराष्ट्रा सजना धनधान्य समाकुला।
मया विसृष्टा वसुधा भरताय प्रदीयताम् ॥' —अयो० का० ३४/४१

राम को न राज्य की, न सुख की, न पृथ्वी की, और ना ही स्वर्ग और जीवन की ही कोई कामना है। वे तो अपना सब कुछ देने में ही आनन्द अनुभव करते हैं—

'नैवाहं राज्यमिच्छामि न सुखं न च मेदिनीम्।
नैव सर्वानिमान् कामान् न स्वर्गं न च जीवितुम् ॥'
—अयो० का० ३४/४७

कितना महान् त्याग था—राम का जो पृथ्वी का राज्य भरत को तिनके के समान प्रदान कर रहे थे।

लंका का युद्ध समाप्त हुआ। असंख्य वीरों के रक्त से मेदिनी लाल हो गयी। न जाने कितनी ललनाओं का सौभाग्य-सिन्दूर मिट गया। हजारों माताओं की गोद सूनी हो गयी। वीरों के महान् बलिदानों से विजयश्री ने राम का वरण किया। अब

राम उस स्वर्णमयी लंका के राजा थे, जिसका वैभव स्वर्ग से बढ़कर था। किन्तु जिस प्रकार कैकेयी की इच्छा से पिता की आज्ञानुसार अयोध्या का राज्य राम ने हंसते-हंसते भरत को प्रदान कर दिया था, उसी प्रकार लंका का राज्य भी विभीषण को सहर्ष दान देने में एक क्षण भी नहीं लगा। संसार में ऐसे दानवीर बहुत कम हुए हैं, जिन्होंने हस्तगत राज्यलक्ष्मी का इस प्रकार दान कर दिया हो। वे कितनी भावुकता के साथ अपने छोटे भाई लक्ष्मण से कहते हैं—

'विभीषणमिमं सौम्य लंकायामभिषेचय।
अनुरक्तं च भक्तं च तथा पूर्वोपकारिणम्॥
एष मे परमः कामोयदिमं रावणानुजम्।
लंकायां सौम्य पश्येयभिषिक्तं विभीषणम्॥'

—यु० का० ११२/९-१०

धर्मवीर

जहां धर्म कार्य में उत्साह दिखाई दे वहां उत्साही धर्मवीर कहा जाता है। स्मृतिकारों ने अनेक प्रकार से 'धर्म' शब्द की व्याख्या की है तथा धर्म के लक्षण भी दिये हैं—

'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्[1]॥'

वाल्मीकि ने राम को धर्मज्ञ एवं धर्मचारिन् कहा है, जिसका अर्थ है—धर्म को जानने वाला और धर्म का आचरण करने वाला। राम प्रत्येक परिस्थिति में अपने धर्म का पूर्ण पालन करते हैं, वे कभी भी धर्म की मर्यादा का अतिक्रमण करते हुए नहीं दिखाई देते हैं, अतः स्वधर्मनिष्ठ राम को शरीरधारी धर्म कहा गया है—

'रामो विग्रहवान्धर्मः,' —अयो० का० ३७/१३

न केवल राम अपितु सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान आदि अनेक प्रमुख पात्र भी अपने आदर्श जीवन द्वारा धर्म के उच्चतम स्वरूप को प्रतिष्ठित करते हैं।

मानव का जीवन विभिन्न व्यक्तियों में विभक्त होता है। परिवार, देश, जाति, समाज के प्रति उसके पृथक्-पृथक् उत्तरदायित्व होते हैं। महापुरुष सामाजिक सर्वजन हितकारी कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए अपने व्यक्तिगत सुखों का परित्याग कर एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार का कार्य करते हुए अनेकों कष्टों

---

१. मनुस्मृति ६/९२

को सहन कर वे सच्चे वीर कहलाते हैं । रामायण में हमें ऐसे धर्मवीरत्व के उदाहरण सर्वत्र दिखाई देते हैं ।

राम की धर्म वीरता

राम, होने वाले राज्यभिषेक की प्रसन्नता से युक्त होकर अयोध्या के सुन्दर सुसज्जित राजमार्गों से नागरिकों के प्रशंसा-वचनों को सुनते हुए पिता दशरथ के दर्शनार्थ अन्तःपुर में प्रविष्ट होकर पिता की चरण-वन्दना करते हैं । महाराज को शोक-सागर में निमग्न देखकर विनम्र शब्दों में कैकेयी से उनके दुःख का कारण पूछते हैं । कैकेयी कहती है—'यदि तुम उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन कर सको, तो मैं तुम्हें सब विस्तार से बता दूंगी ।'

इस पर राम ने जो कहा, वह राम के धर्मवीरत्व की व्यंजना करता है । क्योंकि पति की आज्ञा का पालन करना भी बहुत बड़ा धर्म माना गया है । राम पिता की आज्ञा से अग्नि में कूद सकते हैं, विषपान कर सकते हैं, समुद्र में भी गिर सकते हैं । वे पिता की अलिभाषा पूर्ण करने के लिए सब कुछ करने को तत्पर हैं क्योंकि वे दो प्रकार की बातें नहीं करते हैं—

> 'अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके ।
> भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे ।
> नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च ।
> तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकांक्षितम् ।
> करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥'
>
> —अयो० का० १८/२८-३०

राम की बात सुनकर कैकेयी महाराज द्वारा दिये गये दो वरों में प्रथम द्वारा भरत के राज्याभिषेक एवं दूसरे द्वारा राम के चौदह वर्ष के लिए वन में भेजने का कठोर वृतान्त कह देती है ।

कैकेयी के कठोर वचन सुनकर राम के हृदय में शोक नहीं होता । वे पिता की आज्ञा-पालन करने एवं अपने वचन पर दृढ़ रहने के सत्य संकल्प को दोहराते हुए महान् धर्मपालन का परिचय देते हुए कहते हैं—

> 'अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च ।
> हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः ॥'
>
> —अयो० का० १९/७

राम पिता की सेवा तथा आज्ञा पालन से बढ़कर कोई धर्म नहीं मानते हैं—

'न ह्यतो धर्मचरणं किंचिदस्ति महत्तरम् ।
यथा पितरी शुश्रूषा तस्त वा वचनक्रिया ॥'
—अयो० का० १९/२२

वे समस्त पृथ्वी के राज्य का परित्याग कर वन में जाने को उत्सुक हैं। ऐसे अवसर पर सर्वलोकातीत जीवन्मुक्त महात्मा की भांति उनके चित्त में थोड़ा-सा भी विकार नहीं है—

'न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुंधराम् ।
सर्वलोकातिगरस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया ॥' अयो० का० १९/३३

उस समय राम ने अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता उसी प्रकार नहीं छोड़ी, जैसे शरद्कालीन चन्द्रमा अपने स्वाभाविक तेज को नहीं छोड़ता है—

'उचितं च महावाहुर्न जहौ हर्षमातमवान् ।
शरदः समुदीर्णांशुश्चन्द्रस्तेज वगातभजम् ॥'—अयो० का० १९/३७

राम इस धर्म का पालन केवल स्वयं ही नहीं करते हैं, अपितु माता कौसल्या, पत्नी सीता, लक्ष्मण और सुमित्रा से भी इसे पालन करने का अनुरोध करते हैं। वे अपनी माता से कहते हैं—

'तदेतत् तु मय कार्य क्रियते भुवि नान्यथा ।
पितुर्हि वचनं कुर्वन् न कश्चिन्नाम हीयते ॥' —अयो० का० २१/३७

अनुज लक्ष्मण को धर्मपालन के विषय में राम द्वारा कहे गये वचन धर्मवीरत्व की सुन्दर अभिव्यक्ति करते हैं—

'धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् ।
धर्मसंश्रितमभ्येतत् पितुर्वचमम् ॥
संश्रुत्य च पितुर्वाक्यं मातुर्वा ब्राह्मणस्य वा ।
न कर्तव्यं वृथा वीर धर्ममाश्रित्य तिष्ठता ॥'
—अयो० का० २१/४२

सीता की धर्म वीरता

सीता के चरित्र में भी धर्मपालन का उत्साह अपनी चरम सीमा पर स्थित दिखाई देता है। भारतीय संस्कृति में नारी का सर्वस्व पति को माना गया है। पति-पत्नी का मिलन जल में जल के मिलन के समान कहा गया है। पति के अनुकूल आचरण करते हुए तन-मन से उनकी सेवा में ही अपना सम्पूर्ण जीवन लगा देना भारतीय नारी का धर्म है। सीता पतिव्रत धर्म का साकार रूप है। पतिदेव चौदह वर्ष के लिए वन जा रहे हों, तो यह कैसे सम्भव था कि नारी धर्म का अक्षरशः

पालन करने वाली विश्ववन्द्या सीता उनका अनुगमन न करतीं । वे पति के साथ वन के कठोर जीवन को बिताने का संकल्प व्यक्त करते हुए धर्मवीरत्व का परिचय इस प्रकार देती हैं—

'भर्त्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि ।।' —अयो० का० २७/५

नारी के लिए एकमात्र पति को ही इस लोक और परलोक का आश्रय बताती हुई वे आगे कहती हैं—

'न पितानात्मजो वात्मा न माता न सखीजनः ।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ।।' —अयो०का० २७/६

पुनः वे पतिव्रत्य धर्म का पालन करने की तीव्र इच्छा इस प्रकार व्यक्त करती हैं—

'सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः ।
अचिन्तयन्ती त्रींल्लौकांश्चिन्तयन्ती पतिव्रतम् ।।
शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी ।
सह रंस्ये त्वया वीर वनेषु मधुगन्धिषु ।।'

—अयो० का० २७/१२-१३

युद्धभूमि में हंसते-हंसते अपने प्राणों को सर्मार्पित करने के लिए उद्यते रहने का उत्साह ही केवल वीर-रस का स्थायी भाव नहीं है, अपितु जीवन की विस्तृत एवं कठोर भित्ति पर प्रतिफल स्वधर्म का पालन करने में उपस्थित होने वाली बड़ी से बड़ी आपदा को सहर्ष कण्ठा-हार बनाने का उत्साहयुक्त चित्र भी वीर-रसोत्पत्ति में किसी प्रकार कम नहीं हो सकता । वीर-पुरुष आवेश में आकर खड्ग के एक ही प्रहार से शत्रु-ग्रीवा को धड़ से विच्छिन्न कर सकता है और अपने कलेवर का तीरों की वर्षा में स्नान करा सकता है, किन्तु दीर्घकाल तक धर्म का आचरण करते हुए तिल-तिल कर जलना वस्तुतः कठिन कार्य है । और सीता, लक्ष्मण ने इसी वीरता का परिचय दिया है । एक नहीं, दो नहीं अपितु चौदह वर्ष की दीर्घावधि के लिए वन के कठोर कष्टों को सुख समझकर गले लगाने की अभिलाषा, धर्म वीरता के इतिहास का स्वर्णिम अध्याय है ।

राम के पीछे वन-मार्ग पर चलने को उपवन में घूमने और पलंग पर सोने के समान, कुश, काश, सरकंडे आदि कांटेदार वृक्षों के स्पर्श को रुई और मृगचर्म के समान तथा आंधी से उड़कर शरीर पर आने वाली धूल को चन्दन के समान, निरुपित करते हुए सीता कितने उत्साह से कहती हैं—

'न च मे भविता तत्र कश्चित् पथि परिश्रमः ।
पृष्ठतस्तव गच्छन्त्या विहारशयनेष्विव ।।
कुश काशशरेषीका ये च कण्टकिनो द्रुमाः ।
तूलाजिनसमस्पर्शा मार्गे मम सह त्वया ।।
महावात समुद् भूतं यन्मामवकरिष्यति ।
रजो रमण तन्मन्ये परार्ध्यमिव चन्दनम् ।।'

—अयो० का० ३०/११-१३

सीता के इन वचनों में वीर-रस की हृदयस्पर्शी व्यंजना है । यहां पर राम आलम्बन विभाव हैं । राम के उत्तमोत्तम गुण उद्दीपन विभाव हैं । सीता का वन के समस्त कष्टों को सुख के रूप में निरूपित करना और साथ में वन ले चलने का आग्रह अनुभाव है । धृति, उत्सुकता, हर्ष आवेग आदि संचारी भावों से परिपुष्ट सीता के अन्तःकरण में स्थित, 'उत्साह' स्थायी भाव व्यंग्य है । और चूंकि यह उत्साह धर्माचरण के प्रति है अतः वीर-रस के धर्मवीर नामक भेद की यहां सुन्दर व्यंजना है ।

सीता न केवल स्वयं पातिव्रत्य धर्म का पालन करने के लिए उत्साहित है, अपितु वह कौसल्या के समक्ष अपने धर्म से विचलित न होने के संकल्प को दोहराते हुए कहती हैं—

'नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचको विद्यते रथः ।
नापतिः सुखमेघेत या स्यादपि शतात्मजा ।।
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राताामितं सुतः ।
अमितस्य तु दातारं भर्त्तारं का न पूजयेत् ।।'

—अयो० का० ३९/२९-३०

भरत की धर्म वीरता

जिस प्रकार राम और सीता शरीर धारी धर्म के समान हैं, उसी प्रकार कैकेयी-पुत्र भरत का धर्मवीरत्व भी अनुपमेय है । अयोध्या का विशाल राज्य भरत को अनायास ही प्राप्त हो रहा है । किन्तु उसके वास्तविक अधिकारी राम हैं, क्योंकि वे ही सबसे बड़े सर्वाधिक पराक्रमी और राजोचित समस्त गुणों से परिपूर्ण थे । अयोध्या की प्रजा भी राम को ही राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुआ देखना चाहती थी । पिता दशरथ की भी यही इच्छा थी । अतः राज्य-प्राप्ति की सूचना से भरत के अन्तःकरण में किंचिन्मात्र भी प्रसन्नता नहीं होती । इसके विपरीत उनको ऐसा प्रतीत होता है मानो उन पर कोई बहुत बड़ा कष्ट आ पड़ा हो । वे अपनी जन्मदात्री की कठोर शब्दों में भर्त्सना करते हैं । और अनेक प्रकार की शपथों द्वारा माता कौसल्या के समक्ष स्वयं को निष्पाप सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं । भरत के मुख

से निकला हुआ प्रत्येक शब्द उनके धर्म पालन के प्रति उत्साह का परिचायक है। भरत के वचनों से कौसल्या का पुत्र-विरह से सन्तप्त हृदय द्रवित हो जाता है, जबकि पहले उनको यह आशंका थी कि राम को वन भेजने के षड्यन्त्र में भरत भी अवश्य सहभागी होगा। भरत अपने चरित्र को इतने सुन्दर ढ़ंग से प्रस्तुत करते हैं कि कौसल्या के मन का भ्रम समाप्त होता है, और वे भरत के धर्माचरण के प्रति उत्साह की प्रशंसा करती हुई कहती हैं—

'दिष्ट्या न चलितो धर्मादात्मा ते सहलक्षण: ।
वत्स सत्यप्रतिज्ञो हि सतां लोकानवाप्स्यसि ।।'

—अयो० का० ७५/६२

भरत, वशिष्ठ ऋषि तथा माताओं को लेकर अपनी विशाल सेना के साथ राम को वन से लौटा लाने के लिए वनों की दुर्गम यात्रा करते हुए चित्रकूट पर पहुंचते हैं। वहां रोते हुए राम के चरणों में गिर जाते हैं और हाथ जोड़कर राज्य-ग्रहण करने की प्रार्थना करते हैं। एक विचित्र-सी स्थिति है। राम अयोध्या का राज्य छोड़कर मुनियों के समान वल्कलादि धारण कर वनवासी जीवन बिता रहे हैं, भरत भी राज्य करने के लिए तैयार नहीं हैं। अयोध्या का राज्य एक गेंद बना हुआ है और दोनों भाई उसे एक-दूसरे की ओर उछाल रहे हैं, राम अपने प्रतिज्ञा पालन के दृढ़ निश्चय को पुन: प्रकट करते हैं, क्योंकि प्रतिज्ञा-पालन करने में यदि प्राण भी चले जायें, फिर भी रघुवंशी राजा अपनी प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ते थे। अपने इसी रूप को निरूपित करने हुए राम कहते हैं—

'लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद् हिमवान् वा हिमं त्यजेत् ।
अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः ।।'

—अयो० का० ११२/१८

अन्त में भरत दो सुवर्ण-भूषित पादुकाओं पर राम के पावन-चरण रखने की प्रार्थना करते हैं और उन पादुकाओं को प्रणाम करके चौदह वर्ष तक जटा और चीर धारण करते हुए फल-फूल खाकर नगर से बाहर रहते हुए राज्य चलाने की महान् प्रतिज्ञा करते हुए कहते हैं—

'स पादुके सम्प्रणम्य रामं वचनमब्रवीत् ।
चर्तुदश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्ययम् ।।
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन ।
तवागमनमाकांक्षन् वसन् वै नगराद् बहिः ।।'

—अयो० का० ११२/२३-२४

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार भरत नन्दिग्राम में जाकर राम की चरण-पादुकाओं को राज्य पर अभिषिक्त करके स्वयं कठोर तपस्वी जीवन का निर्वाह करते हुए

अयोध्या का राज्य संचालित करते हैं। धन्य है भरत का भातृ-प्रेम और धर्म के प्रति अथाह उत्साह, जिसका पालन करने में बड़े से बड़ा कष्ट भी वे सहर्ष वरण करते हैं।

राम सदैव क्षत्रिय-धर्म का पालन करने में तत्पर रहते हैं। वन में रहते हुए भी ऋषियों की रक्षा करते हुए वे सीता से कहते हैं—

'क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्त्तशब्दो भवेदिति।' अर० का० १०/३

राम अपने प्राणों का, सीता का और प्राणों से भी प्रिय भाई लक्ष्मण का परित्याग कर सकते हैं, किन्तु ब्राह्मणों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा का परित्याग नहीं कर सकते। अपने संकल्प को दोहराते हुए वे कहते हैं—

'अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्षणाम्।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥'
—अर० का० १०/१८

सब प्रकार से मित्र का उपकार करना भी धर्म माना गया है, राम की सुग्रीव के साथ मित्रता हो जाती है। बाली ने सुग्रीव को बहुत कष्ट दिए थे। इसलिए राम, मित्र-धर्म का पालन करते हुए बाली का वध करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। वे इस धर्म की व्याख्या करते हुए, बाली को दिए गए दण्ड को धर्मानुकूल बताते हुए कहते हैं—

'सर्वथा धर्म इत्येव द्रष्टव्यस्तव निग्रहः।
वयस्यस्योपकर्तव्यं धर्ममेवानुपश्यता॥' —कि० का० १८/२६

हनुमान की धर्मवीरता

हनुमान के चरित्र में एक ओर जहां अद्वितीय युद्धवीरता के दर्शन होते हैं, वहां दूसरी ओर धर्मवीरत्व भी उनमें कूट-कूटकर भरा हुआ है। हनुमान ने राम को स्वामी के रूप में स्वीकार कर सेवक-धर्म का निर्वाह करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी। इसी सेवा-धर्म के लिए वे विशाल सागर को पार कर अपने जीवन को संकट में डालकर, लंका नगरी में भयानक राक्षसों के मध्य में पहुंचकर वे सीता की खोज करते हैं। लंका में हनुमान द्वारा प्रदर्शित वीरता उनके इसी धर्मपालन का ज्वलन्त प्रमाण है। हनुमान के इस वीरतापूर्ण कार्य की प्रशंसा राम इन शब्दों में करते हैं—

'यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्त्रा कर्माणि दुष्करे।
कुर्यात् तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम्॥' —यु० का० १/७

दयावीर

राम के चरित्र में दयावीरता भी विद्यमान है, जो कि अनेक प्रसंगों में प्रकट होकर वीर-रस की व्यंजना करती है । कहीं यह दानवीरता के साथ एवं कहीं धर्म-वीरता के साथ मुखरित होती है ।

सीता की खोज करते हुए राम को वन में जटायु के दर्शन होते हैं । गृध्रराज राम के समक्ष सीता का पता तथा अपनी करुण-व्यथा सुनाते हैं, तो राम का दयालु हृदय द्रवित हो उठता है । वे जटायु को गले लगाते हैं । उस समय राम के मुखार विन्द से निस्सृत दयार्द्र वचनों में उनकी दयावीरता अभिव्यंजित हो रही है—

'अयं पितुर्वयस्यो मे गृध्रराजो महाबलः ।
शेते विनिहतो भूमौमम भाग्य विपर्ययात् ।।' —अर० का० ६७/२७

वे लक्ष्मण के साथ जटायु का अन्तिम संस्कार करते हैं, पिण्डदान एवम् जलांजलि प्रदान करते हैं । राम की दयावीरता उस समय भी अभिव्यक्त होती है, जब अपने हाथियों के निषेध करने पर भी वे शरणागत विभीषण को आश्रय प्रदान करते हैं । यदि उनके समुद्रसम हृदय में दया की लहरें न उठती होती तो वे विभीषण को शत्रु पक्ष का गुप्तचर समझकर उसका वध करवा सकते थे । वे शान्त भाव से दयावीरता का परिचय देते हुए कहते हैं—

'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।।' —यु० का० १८/३३

लंका के युद्ध में राम ने बाणों के प्रहार से रावण को घायल कर दिया । रावण के हाथ से धनुष छूटकर गिर पड़ा । उसका देदीप्यमान मुकुट भी राम ने काट डाला । रावण असहाय था, यदि राम चाहते तो एक ही प्रहार से उसके प्राण हर सकते थे किन्तु उनका दयार्द्र अन्तःकरण यहां भी द्रवित हो उठा और रावण जैसे क्रूर राक्षस पर दया करते हुए राम ने कहा—

'कृतं त्वया कर्म महत् सुभीमं हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम् ।
तस्मात् परिश्रान्त इति व्यवस्थ न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि ।।
प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं, प्रविश्य रात्रिचरराज लंकाम् ।
आश्वस्य निर्याहि रथी च धन्वी, तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः ।।'
—यु० का० ५९/१४२-१४३

यहां पर रावण आलम्बन विभाव है, उसका अत्यन्त क्लान्त हो जाना उद्दीपन विभाव है । राम द्वारा रावण को लंका में प्रवेश कर विश्राम के लिए कहना अनुभाव है । धृति, दैन्य, उत्सुकता आदि संचारी भावों से परिपुष्ट राम के अन्तः-करण में स्थित 'उत्साह' स्थायी भाव व्यंग्य है, जिससे दयावीरता व्यंजित हो रही है—

रावण की मृत्यु हो जाने पर शत्रुता को विस्मृत कर राम अपनी दयावीरता प्रकट करते हुए स्वयं उसके अन्त्येष्टि-कर्म की आज्ञा देते हुए कहते हैं—

'मरणान्तानि वैराणि निवृतं नःप्रयोजनम् ।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ।।' —यु० का० १०९/२५

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में वीर-रस का अत्यन्त उज्ज्वल, ओजस्वी, हृदयावर्जक रूप परिलक्षित होता है। वीर-रस के चारों-भेदों की प्रभावशाली योजना में कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। कवि का वीर-रस चित्रण करुणा से ओतप्रोत होने के कारण करुण-रस को पुष्ट करता है। यहां पर युद्ध, दान, धर्म एवं दया के प्रति उत्साह का मूलस्रोत करुणा ही है।

—०—

षष्ठ अध्याय

वाल्मीकि-रामायण में अन्य सहायक रसों का विवेचन तथा उनका प्रधान-रस परिपोषकत्व

वाल्मीकि-रामायण में हास्य-रस

वाल्मीकि आदि महाकवियों के साहित्य का अनुशीलन करने पर, हम इस निश्चय पर पहुंचते हैं कि संस्कृत-साहित्य में हास्य-रस का प्रयोग बहुत सीमित रूप में हुआ है। इसका कारण हमारा जीवन के प्रति गम्भीर एवं मर्यादित दृष्टिकोण है। हास्य के मूल आधार अनौचित्य, असंगति, या विकृति माने जाते हैं, किन्तु ये तीनों हमारे परम्परागत जीवन के साथ सामंजस्य नहीं रखते हैं। भारतीय जीवन और साहित्य प्रारम्भ से ही आदर्शवादी एवं मर्यादावादी रहा है। नियम, संयम, शुचिता, ऋजुता आदि उसके प्रधान गुण हैं तथा अर्थ और काम की अपेक्षा भारतीय मनीषा ने धर्म और मोक्ष को ही अधिक महत्व प्रदान किया है। अतः, हास्य का सीमित मात्रा में प्रयोग स्वाभाविक ही है।

आधुनिक पाश्चात्य काव्य-शास्त्र में हास्य के विविध प्रकारों [का सांगोपांग एवं सूक्ष्म विवेचन हुआ है। भारतीय साहित्यशास्त्र में भी हास्य के प्रकारों का उल्लेख किया गया है। संस्कृत, नाटकों में इन सभी का प्रयोग यत्र-तत्र न्यूनाधिक मात्रा में मिल जाता है, किन्तु वाल्मीकि—जैसे महर्षि प्रणीत रामायण-महाकाव्य में हास्य का प्रयोग अत्यल्प मात्रा में हुआ है। और वह भी मर्यादित रूप में ही है। कारण यह धर्म-प्रधान महाकाव्य है।

इतना होते हुए भी रामायण में हास्य-रस का नितान्त अभाव नहीं है। कारण कि जीवन के जिस विशाल फलक पर महाकाव्य का चित्रांकन किया जाता है, उसमें हास्य की भी असंख्य, अल्पनीय स्थितियों का होना स्वाभाविक है और वह भी रामायण जैसे महाकाव्य में, जो अनेक परवर्ती नाटकों और काव्यों का उपजीव्य है।

शुद्ध हास्य

वाल्मीकि रामायण में शुद्ध हास्य के अनेक प्रसंग हैं जिनमें अभिश्रित हास्य और विनोद स्पष्ट रूप से झलकता दिखाई देता है।

अयोध्याकाण्ड में त्रिजट का प्रसंग शुद्ध हास्य का उत्तम उदाहरण है।

तदनुसार एक त्रिजट नामक दरिद्र एवं वृद्ध ब्राह्मण अपनी तरुणी पत्नी के आदेश से फटे चीथड़े पहने हुए 'शाटीमाच्छाद्य दुश्छदाम्' (विकृत वेशभूषा और अंगभंगी) वन यात्रा के लिए उद्यत राम के पास दान लेने के लिए पहुंचता है, और राम से निवेदन करता है कि में निर्धन ब्राह्मण हूं, मेरे बहुत से पुत्र हैं, मेरी जीविका नष्ट हो गई है। अतः आप मुझ पर कृपा कीजिए—

'निर्धनो बहुपुत्रोऽस्मि राजपुत्र महाबल ।
क्षतवृत्तिर्वने नित्यं प्रत्यवेक्षस्व मामिति ।।' —अयो० का० ३२/३४

तब राम उससे परिहास करते हैं—

'तमुवाच ततो रामः परिहाससमन्वितम् ।
गवां सहस्रमप्येकं न च विश्राणितं मया ।
परिक्षिपसि दण्डेन यावत्तावदवाप्स्यसे ।।' —अयो०का० ३२/३५-३६

यह सुनते ही वह वृद्ध ब्राह्मण चीथड़े से अपने कमर को लपेटकर, सारी शक्ति लगाकर दंड घुमाता हुआ उसे सरयू के उस पार फेंक देता है। तब राम उस त्रिजट को हृदय से लगाकर सरयू के उस पार गिरे हुए दण्ड के स्थान तक जितनी गौएं थीं, उन सबको उसे देकर सान्त्वना देते हुए कहते हैं—ब्रह्मन् ! मैंने परिहास में वह बात कही थी, आप इसके लिए बुरा न मानिएगा—

'उवाच च तदा रामस्तं गार्ग्यमभिसान्त्वनम् ।
मन्युर्न खलु कर्तव्यः परिहासो ह्ययंयम ।।'
—अयो० का० ३२/४०

यहां पर 'परिहास' शब्द के प्रयोग से प्रकट है कि कवि यहां हास्य-रस का विधान कर रहे हैं। कवि ने यहां असंगति के दो कारण प्रदर्शित किये हैं। एक तो ब्राह्मण वह भी वृद्ध और फिर उस तपोनिष्ठ का तरुणी भार्या के आदेश से दान मांगने के लिए जाना, क्योंकि सामाजिक आदर्श के अनुसार उस तपस्वी ब्राह्मण को सन्तोषव्रती होना चाहिए था। और दूसरी असंगति यह है कि उस दीन एवं दुर्बल वृद्ध ब्राह्मण ने दण्ड को घुमाकर इतनी दूर तक फेंका। यद्यपि इस कार्य में चमत्कार के कारण अद्भुतता दिखाई देती है, किन्तु वस्तुतः इसमें हास्य ही है। क्योंकि प्रसंगानुसार युवती भार्या के आदेश से प्रेरित होकर धन की लालसा ने ही उसमें इतनी शक्ति संचालित कर दी थी। यहां पर राम के रोमांच पूर्ण आलिंगन से हर्ष, चपलता आदि संचारी भी ध्वनित हो रहे हैं।

इस प्रकार यहां पर त्रिजट हास्य रस का आलम्बन विभाव है, धोती के पल्ले को कमर में लपेटकर, सम्पूर्ण शक्ति लगाकर दण्ड घुमाकर फेंकना आदि चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं। राम द्वारा कहे गये वचन अनुभाव हैं। हर्ष, चंचलता

आदि संचारो भावों से परिपुष्ट राम के अन्तःकरण में स्थित 'हास' स्थायी भाव व्यंग्य है ।

शुद्ध हास्य का दूसरा उदाहरण सुन्दर-काण्ड के मधुवन प्रसंग में दिखाई देता है । कार्य सम्पन्न करके हनुमान लंका से लौटकर अपने वानर मित्रों के साथ मधुवन में क्रीडा करने लगते हैं[१] । इस क्रीडा में उच्छृंखल हास्य का रूप दिखाई देता है ।

इस प्रसंग में उच्छृंखल हास अर्थात् 'उपहसित' आदि की स्थितियां हैं । अतः कुछ विद्वानों ने इसे प्रक्षिप्त माना है । डा० बुल्के का कथन है कि इसमें जो हास्य रस का प्राधान्य पाया जाता है, वह भी मूल रचना के अनुकूल नहीं है[२] ।

कवि ने जीवन के स्वाभाविक उच्छलन को मर्यादापूर्वक हास्य की अनेक श्रेणियों में और स्तरों में अभिव्यक्त किया है । ऐसे प्रसंगों में शुद्ध हास्य का अभाव नहीं है और कुछ स्थानों पर उच्छृंखल हास्य भी अभिव्यक्त होता हुआ दिखाई देता है ।

मिश्रित हास्य-व्यंग्य

संस्कृत साहित्य में शुद्ध हास्य की अपेक्षा व्यंग्य मिश्रित हास्य अथवा व्यंग्य ही अधिक मिलता है किन्तु वाल्मीकि कृत रामायण में व्यंग्य भी अधिक प्रकट नहीं होता है । अन्य कवियों की तरह वाल्मीकि विरोधी पात्रों के प्रति अधिक कटु न होकर अपना संयम बनाए रखते हैं । उनकी सुधार भावना, जिसके लिए कवि व्यंग्य का आश्रय लेता है, प्रच्छन्न रूप में ही दिखाई देती है ।

कवि ने हास्य के साथ व्यंग्य का मिश्रण नायक के प्रति पक्षपात, नैतिक भावना तथा आदर्शवाद के कारण किया है ।

मंथरा-कैकेयी सम्वाद में तथा शूर्पणखा प्रसंग में मिश्रित हास्य-व्यंग्य का सुन्दर स्वरूप प्रकट होता है ।

हास्य-रस की आलम्बन मन्थरा

अपनी विकृत आकृति के कारण मन्थरा हास्य-रस की आदर्श आलम्बन है । संस्कृत नाटकों में वामनक, कुब्जक, षण्ढ, चेट, चेटी, विट, धूर्त आदि हास्योत्पादक पात्र माने जाते हैं तथा भाण और प्रहसन में तो ऐसे ही पात्रों की प्रधानता

---

१. सुन्दरकाण्ड सर्ग ६१, ६२

२. कामिल बुल्के-- राम कथा उत्पत्ति और विकास, पृ० ३६७

होती है[1]।

बाल्मीकि ने मन्थरा के साथ बहुत विनोद किया है। कैकेयी, मन्थरा की प्रशंसा करने लगती है और इस प्रकार हास्य की सामग्री द्विगुणित हो जाती है। कैकेयी के मुख से मन्थरा के रूप, गुण की प्रशंसा में निकले हुए शब्द दर्शनीय हैं। मन्थरा के कहने से ही कैकेयी ने एक वर द्वारा राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास तथा भरत के लिए अयोध्या का राज्य मांगा था। इस घृणित कार्य के कारण पाठकों के मन में मन्थरा और कैकेयी दोनों के प्रति अत्यन्त घृणा का भाव रहता है। यहां कवि ने स्वयं कैकेयी के मुख से मन्थरा के सौन्दर्य की प्रशंसा कराकर, पाठक की भावनाओं को ही अभिव्यक्त किया है। कैकेयी कहती है—

'विमलेन्दुसमं वक्त्रमहो राजसि मन्थरे।
जघनं तव निर्मृष्टं रशनादामभूषितम्॥
जंघे भृशमुपन्यस्ते पादौ च व्यायतावुभौ।
त्वमायताभ्यां सक्थिभ्यां मन्थरे क्षौमवासिनी।
अग्रतो मम गच्छन्ती राजसेऽतीव शोभने।
आसन् याः शम्बरे मायाः सहस्रमसुराधिपे।
हृदये ते निविष्टास्ताः भूयश्चान्याः सहस्रशः॥'

—अयो० का० ९/४३-४६

यहां पर कुब्जा के लिए 'चन्द्रमुखी' और 'राजहंसी' शब्दों का प्रयोग करके आदिकवि ने असंगति का बहुत ही सरस विधान किया है। यहां पर कवि स्वयं परिस्थिति का आनन्द ले रहा है और हास-परिहास का आस्वादन करते हुए स्वयं उसका आश्रय बन गया है। यहां पाठक का कवि के साथ तादात्म्य हो जाता है। कवि ने मन्थरा के अत्यधिक अनुचित कार्य से कुपित होकर कटु शब्दों का प्रयोग नहीं किया है, अपितु स्वस्थ चित्त से स्वस्थ विनोद किया है। श्रेष्ठ कवि की यही विशेषता हुआ करती है। आंग्ल भाषा के महान् कवि शैक्सपीयर की यह विशेषता बतलाई जाती है कि वह गहन से गहन परिस्थितियों में भी हंस सकता था। उसका दृष्टिकोण इतना प्रकृतिस्थ, स्वस्थ एवं दृढ़ था कि न तो शोक की सघनता और न हर्ष की उत्फुल्लता ही उसको चंचल कर सकती थी[2]।

आदिकवि में भी यह विशेषता उपलब्ध होती है। वे मन्थरा के कुकृत्य से विक्षुब्ध न होकर विनोद लहरों में क्रीडा करने लगते हैं। वे उस कुबड़ी को कुबड़ी-शिरोमणि 'कुब्जानामुत्तमा' कहते हैं। वे उसकी जंघाओं की प्रशंसा एक बार नहीं अनेकों बार करते हैं। वे उसे 'परिपूर्णजघना', 'निर्मृष्ट-जघना' तथा 'भृशमुपन्यस्त जंघा' आदि कहकर जी भरकर उसका विनोद करते हैं।

---

१. दशरूपक ३/५४
२. डॉ० नगेन्द्र—विचार और विवेचन, पृ० ७५

मन्थरा की विकृत आकृति के अन्तर्गत भावावलम्बन का मुख्य अवयव है—उसका कूबड़, जिसका विस्तृत वर्णन वाल्मीकि ने कैकेयी के माध्यम से इस प्रकार किया है—

'त्वं पद्ममिव वातेन संनता प्रियदर्शना ।
उरस्तेऽभिनिविष्टंवै यावत् स्कन्धात् समुन्नतम् ।।
अधस्ताच्चोदरं शान्तं सुनाभमिव लज्जितम् ।
प्रतिपूर्णं च जघनं सुपीनौ च पयोधरौ ।।'

—अयो० का० ९/४१-४२

पुनः उसके कूबड़ का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—

'तदेव स्थगु यद् दीर्घं रथघोणमिवायतम् ।
मतयः क्षत्रविद्याश्च मायाश्चात्र वसन्ति ते ।।' —अयो० का० ९/४६

इस प्रकार यहां पर मंथरा हास्य रस का उत्कृष्ट आलम्बन विभाव है। उसका कूबड़, वक्ष-स्थल, जघन, पयोधर आदि विकृत अंग उद्दीपन विभाव हैं। कवि द्वारा कैकेयी के मुख से मन्थरा के अंगों की जो प्रशंसा की गयी है, वह अनुभाव है। चंचलता आदि संचारी भावों से परिपुष्ट 'हास' स्थायी-भाव व्यंग्य है।

यहां पर पाठक को कैकेयी 'हास्य-रस' का आश्रय प्रतीत हो सकती है, किन्तु वस्तुतः कवि स्वयं यहां आश्रय बने हुए हैं। वे इस प्रसंग में न केवल मन्थरा से मनोविनोद कर रहे हैं, अपितु कैकेयी का उपहास भी प्रकारान्तर से कर रहे हैं। जिस पात्र के प्रति मन में घृणा का भाव हो उसको रोषयुक्त वचन कहने में उतना आनन्द नहीं है जितना कि व्यंग्यात्मक शैली में उपहास करने में है।

यहां पर कूबड़ के लिए पवन से झुकाये हुए 'कमल-पत्र' और 'रथघोण' को उपमा का प्रयोग करके वाल्मीकि ने अपने परम विनोदी होने का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। यद्यपि यहां किंचित् अमर्यादित हास्य होने का आरोप लगाया जा है, किन्तु वस्तुतः इसमें कोई दोष नहीं है। यहां यही प्रमाणित होता है कि इस आदि महाकाव्य में जीवन की अनेकानेक परिस्थितियों के अन्तर्गत उच्चतम शुद्ध विनोद का समावेश हुआ है।

हास्य-रस की आलम्बन शूर्पणखा

इस प्रसंग में वाल्मीकि अपनी स्वस्थ प्रवृत्ति के अनुसार शूर्पणखा से विनोद करते हैं।

आदिकवि ने हास्य रस की सृष्टि के लिए राम और शूर्पणखा के सौन्दर्य को आमने-सामने रखकर तुलना की है, और इस परिस्थिति का कवि ने स्वयं यथेष्ठ

रसास्वादन किया है। प्रणयिनी और प्रणयपात्र के विषम सौन्दर्य का यह चित्र अवलोकनीय है।

राम सुन्दर मुख वाले, सुडौल कटि-प्रदेश वाले, विशाल नेत्रों वाले, सुन्दर स्निग्ध केशों वाले, प्रियदर्शन, मधुर भाषी, किशोर, सुन्दर सुकुमार तरुण थे और शूर्पणखा कुरुपा, कठोर एवं विकृत मुखमुद्रा वाली थी। उसका पेट बेडौल और लम्बा था, आंखें भद्दी और डरावनी थीं। उसके केश तांबे जैसे लाल थे, वह वीभत्स-दर्शना और भैरवनाद करने वाली परिणतवय वाली वृद्धा थी—

'सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी।
विशालाक्षं विरुपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा॥
प्रियरुपं विरुपा सा सुस्वरं भैरस्वना।
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी।
न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना॥'

—अर० का० १७/६-११

ऐसी कुत्सित रूपधारिणी वृद्धा का इतने सुन्दर तरुण के समक्ष प्रणय निवेदन करना कितनी असंगति और वैचित्र्य से युक्त है। इस प्रकार की विचित्र घटना तो प्रेम-जगत् में कदाचित् ही घटित हुई होगी। यहां भी वाल्मीकि विनोद-सरिता में आकण्ठ निमग्न दिखलाई देते हैं।

यहां पर शूर्पणखा आलम्बन विभाव है। कुत्सित रूपधारिणी उस वृद्धा का प्रणय-निवेदन आदि चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं। राम द्वारा अपने भाई लक्ष्मण को अविवाहित कहकर शूर्पणखा को उसके पास भेजना अनुभाव है। हर्ष, चंचलता, औत्सुक्यादि संचारी भावों से परिपुष्ट राम के अन्तःकरण में स्थित 'हास' स्थायी-भाव व्यंग्य है।

असंगति, विकृति और अनौचित्य सभी दृष्टियों से हास्य रस का वातावरण तैयार करके कवि ने रस-प्रसार [illegible] है और राम को इस प्रकार कौतुकी चित्रित किया है कि वे इस विषम प[illegible]न में भी आनन्दानुभव करते हुए स्निग्ध एवं शान्त वाणी में शूर्पणखा से वार्तालाप प्रारम्भ करते हैं। शूर्पणखा भी सम्पूर्ण तन्मयता के साथ प्रणय निवेदन करती है। राम अपने अनुज लक्ष्मण को 'अकृतदार' अर्थात् पत्नी-रहित बतलाकर शूर्पणखा को लक्ष्मण की ओर अधिक उत्साहित करते हैं—

'अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान् प्रियदर्शनः।
श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्॥' —अर० का० १८/३

जिससे अपने भाई की विचित्रावस्था को देखते हुए इस अवसर का भरपूर

आनन्द ले सकें। राम के इस कार्य पर मर्यादावादी समीक्षक असत्य भाषण का आरोप लगा सकते हैं, किन्तु यहां वस्तुतः आक्षेप वाली कोई बात नहीं है, अपितु राम की विनोदी प्रवृत्ति ही परिलक्षित हो रही हैं, क्योंकि सदैव मर्यादाओं की कठोर शृंखला में बंधे रहने वाले राम को कहीं तो विनोद का अवसर मिलना ही चाहिए था, इसके लिए कवि को यह अवसर अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत हुआ।

लक्ष्मण भी शूर्पणखा पर अपने स्वभाव के अनुसार क्रोध नहीं करते हैं, अपितु मुस्कराकर वार्तालाप करने लगते हैं--

'एवमुक्तस्तु सौमित्री राक्षस्या वाक्यकोविदः।
ततः शुर्पणखीं स्मित्वा लक्ष्मणोयुक्तमब्रवीत् ।।'—अर० का० १८/८

बड़े भाई ने उस कुरुपा राक्षसी को लक्ष्मण की ओर भेजकर, उसका जो परिहास किया था, उसका बदला लेने के लिए वे स्वयं को राम का सेवक बताकर तथा उसे दासी-जीवन की दुर्दशा समझाकर पुनः अपने अग्रज राम के पास लौटा देते हैं।

यहां पर राम एवं लक्ष्मण के द्वारा भद्दी आंखों वाली बीभत्सदर्शना राक्षसी के लिए प्रयुक्त 'विशालाक्षि', 'कमलवर्णिनि', 'वरवर्णिन', 'वरारोहे' आदि सम्बोधन विनोद की सुन्दर व्यंजना करते हैं।

यहां वाल्मीकि भ्रातृयुगुल के साथ परिहास में अत्यन्त मग्न हो गये हैं, वे तीनों अकेली शूर्पणखा का उपहास कर रहे हैं। यहां शूर्पणखा को इतना मूर्ख वर्णित किया गया है कि वह अन्त तक समझ नहीं पाती कि मुझे किस तरह मूर्ख बनाकर मेरा उपहास किया जा रहा है। परिहास को न समझने वाली लम्वे पेट वाली वह विकराल राक्षसी उन दोनों के वचनों को सत्य मानती रही—

'इति सा लक्ष्मणेनोक्ता कराला निर्णतोदरी।
मन्यते तद्वचः सत्यं परिहासविचक्षणा।।' —अर० का० १८/१३

इस प्रसंग में अकेली स्त्री के साथ दोनों भाइयों द्वारा किये गये परिहास में हास्य के साथ कारुण्य की स्थिति भी दिखलाई देती है, किन्तु यह कवि की विवशता थी। हास्य रस का ऐसा आश्रय कवि को प्राप्त हुआ हो और वह उसका लाभ उठा कर हास्य रस की सृष्टि न करे, ऐसा संभव नहीं था और परम्परा के अनुसार भी उन्हें शत्रु की बहन का उपहास करना ही था, साथ ही नैतिकता और न्याय का सदेन्श प्रसारित करने के लिए स्वेच्छाचारिणी स्त्री पर व्यंग्य करना भी अप्रासंगिक नहीं था। व्यंग्य सुधार का सशक्त माध्यम हुआ करता है। शूर्पणखा इस व्यंग्य को नहीं समझ सकी, परन्तु पाठक इसे भली-भांति समझते हैं और हास्य का आनन्द भी प्राप्त करते हैं।

बाल्मीकि, मानवीय भावनाओं को, उसकी दुर्बलताओं को सहज और स्वाभाविक मानते हुए, सम्पूर्ण मानव-प्रकृति का यथेष्ट रसास्वादन करते हैं। अतः कवि के काव्य-व्योम में हास्य की विमल-ज्योत्स्ना पूर्ण रूप से जगमगा रही है। मर्यादा के मेघ उसे आच्छादित नहीं कर पाये हैं।

वाल्मीकि-रामायण में रौद्र-रस

आदिकवि ने रामायण में यत्र-तत्र रौद्र-रस की भी योजना की यद्यपि इस महाकाव्य के नायक करुणानिधान राम हैं, इसलिए इस रस का सांगोपांग विकास सर्वत्र नहीं हो सका है और कहीं-कहीं वह अपुष्ट दशा में रह गया है अथवा अपने मित्र रस वीर एवं भयानक का सहयोगी बनकर आया है। तथापि वाल्मीकि को कुछ प्रसंगों में इसकी सुन्दर व्यंजना करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

रौद्र-रस के आश्रय---राम

आचार्य भरत ने अनृत वचनों को रौद्र-रस का विभाव माना है। सुग्रीव द्वारा सीतान्वेषण के वचन को विस्मृत कर भोग-विलास में डूबे रहने पर राम, लक्ष्मण के क्रोध में रौद्र रस का यह प्रकार व्यक्त हुआ है।

राम और सुग्रीव की मित्रता की यह शर्त थी कि राम सुग्रीव को उसके भाई द्वारा अपहृत राज्य एवं अपहृता पत्नी को बाली का वध करके प्राप्त करायेंगे। राम ने अपने वचन को अक्षरशः पूरा किया, सुग्रीव को उसका राज्य तथा पत्नी प्राप्त हो गयी किन्तु सुग्रीव भोग-विलास की सरिता में डूबकर अपने वचन को भूल गए। अपने वचन को मिथ्या कर दिया। वर्षा ऋतु समाप्त हुई और शरद् का आगमन हो गया फिर भी राम को सुग्रीव की ओर से सीता की खोज का कोई प्रयत्न दिखाई नहीं दिया, जबकि राम को सीता के विरह में एक-एक क्षण युगों के समान प्रतीत होता था। राम अपने क्रोध को लक्ष्मण के माध्यम से सुग्रीव पर प्रकट करने के लिए सन्देश भेजते हैं।

राम द्वारा सुग्रीव को भेजे गये कठोर वचनयुक्त सन्देश में रौद्र रस की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है—

नूनं कांचन पृष्ठस्य विकृष्टस्य मया रणे।
द्रष्टुमिच्छसि चापस्य रूपं विद्युद्गणोपमम्॥
घोरं ज्वातलनिर्घोषं क्रुद्धस्य मम संयुगे।
निर्घोषमिव वज्रस्य पुनः संश्रोतुमिच्छसि॥'

—कि० का० ३०/७४-७५

राम अत्यन्त शान्त प्रकृति के नायक हैं, जिन्हें सामान्यतः क्रोध व्याप्त नहीं

कर पाता है, किन्तु इस प्रसंग में उनका क्रोधावेग अत्यन्त तीव्र हो गया है। सीता के बिना एक-एक क्षण राम के लिए असह्य हो रहा है, सुग्रीव अपना स्वार्थ सिद्ध कर मित्र कार्य को भूल बैठा है। इसलिए राम सुग्रीव को उस मार्ग का स्मरण कराते हैं, जिससे उन्होंने बाली को भेजा था—

'न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगाः॥' —कि० का० ३०/८१

'एक एव रणे वाली शरेण निहतो मया।
त्वां तु सत्यादतिक्रान्तं हनिष्यामि सबान्धवम्॥'

—कि० का० ३०/८२

जब राम ने सुग्रीव के लिए यह सन्देश भेजा, तब वे सीता के विरह में अत्यन्त व्याकुल थे, अतः इसमें रौद्र रस की वास्तविकता और उग्रता दृष्टिगोचर नहीं होती जो इसी प्रसंग में लक्ष्मण के क्रोधयुक्त स्वरूप में दिखाई देती है—राम जहां अत्यन्त शान्त प्रकृति के हैं, वहां लक्ष्मण का स्वभाव उग्र है, वे अन्याय को सहन नहीं कर पाते हैं। वे राम के अनन्य भक्त भी हैं, राम के प्रति किए अन्याय अथवा अनृतवचन को वे किसी भी तरह सहने के लिए तत्पर नहीं है। सुग्रीव के आचरण से जहां राम क्रोधित हुए वहां लक्ष्मण के हृदय-सागर में क्रोध की तरंगों का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। वे क्रोधाविष्ट होकर सुग्रीव की ओर चल देते हैं, उस समय उनकी रूपाकृति को देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो वे रौद्र रस की साकार प्रतिमा हो। कवि ने लक्ष्मण के इस रूप का चित्रण कर रौद्र-रस की सुन्दर योजना की है—

'शक्वाणासनप्रख्यं धनुःकालान्तकोपमम्।
प्रगृह्य गिरिशृंगामं मन्दरः सानुमानिव॥' —कि० का० ३१/११
कामकोवसमुत्थेन भ्रातुः क्रोधाग्निना वृतः।
प्रभंजन इवाप्रीतः प्रययौ लक्ष्मणस्ततः॥' —कि० का० ३१/१३

लक्ष्मण का वेग इतना तीव्र था कि वे मार्ग के साल, ताल और अश्वकर्ण नामक वृक्षों को बलपूर्वक गिराते हुए तथा पर्वत शिखरों एवं वृक्षों को उठा-उठाकर फेंकते हुए जा रहे थे—

'सालतालाश्वकर्णाश्च तरसा पातयन् बलात्।
पर्यस्यन् गिरिकूटानि द्रुमानन्यांश्च वेगितः॥'

—कि० का० ३१/१४

तीव्रगामी गजराज के समान अपने पैरों के प्रहार से शिलाओं को चूर-चूर करते हुए तथा लम्बी-लम्बी डगें भरते हुए वे बड़ी तेजी से जा रहे थे—

'शिलाश्च शकलीकुर्वन् पद्भ्यां गज इवाशुगः ।
दूरमेकमदं त्यक्त्वा ययौ कार्यवशाद् द्रुतम् ।।'

—कि० का० ३१/१५

यहां पर सुग्रीव आलम्बन विभाव हैं । उसके अनृतवचन और अपनी प्रतिज्ञा को भूल जाना उद्दीपन विभाव हैं । राम द्वारा क्रोध भरा सन्देश भेजना तथा लक्ष्मण का हाथ में विशाल धनुष लेकर मार्ग के वृक्षों को गिराते हुए तथा प्रचण्ड शिलाओं को चूर-चूर करते हुए जाना अनुभाव है । उग्रता, गर्व, आवेग, अमर्ष, विषाद आदि संचारी भावों से परिपुष्ट राम और लक्ष्मण के अन्तःकरणों में स्थित 'क्रोध' स्थायी भाव व्यंग्य है ।

इस प्रसंग में राम के हृदय में सुग्रीव के अनिष्ट की कोई इच्छा नहीं थी और लक्ष्मण को किष्किधा भेजते समय वे कार्य की वास्तविकता का ही कथन करते हैं फिर भी रौद्र रस का सुन्दर परिपाक हुआ है । लक्ष्मण की चेष्टाओं में क्रुद्ध व्यक्ति के अनुभावों की अत्यन्त सुन्दर योजना है ।

अनेक विद्वान् समालोचकों ने तथा काव्य-शास्त्र के पण्डितों ने करुण रस को अन्य समस्त रसों का उत्स माना है । महाकवि भवभूति ने 'एको रसः करुण एव' कहकर इस कथन की पुष्टि की है । वस्तुतः शोक-भाव अन्य अनेक भावों को जन्म देने वाला है । अपने प्रियजन को किसी अन्य द्वारा दिए गए दुःखों और कष्टों को देखकर हमारी दो प्रतिक्रियायें होती हैं प्रथम तो अपने प्रेम-पात्र के प्रति शोक, दया और करुणा का भाव जागृत होता है और जिसके कारण उसे वह दुःख भोगना पड़ता है, उसके प्रति घृणा एवं क्रोध की भावना उत्पन्न होती है । आगे चलकर यही भाव शत्रु से उसकी दुष्टता का प्रतीकार करने के लिए उत्साह का संचार करके वीर रस के रूप में अभिव्यक्त होता है ।

रामायण में भी वस्तुस्थिति यहीं है । करुणा, दया, प्रेम की भाव-भूमि पर ही विविध रसों की सरिता यहां प्रवाहित होती है ।

रावण द्वारा सीता का अपहरण किये जाने पर राम बिलख-बिलखकर रोते हैं, लताओं, वृक्षों, वन्य-पशुओं और पक्षियों से, पर्वतों और नदियों से अपनी प्रिया के विषय में पूछते हैं, किन्तु कहीं भी सीता का कोई संकेत न पाकर उनका क्रोधावेग प्रज्ज्वलित हो उठता है, और जैसे मृग को देखकर सिंह गर्जना करता है, उसी प्रकार वे कुपित होकर पर्वत से कहते हैं कि—जब तक मैं तुम्हारे समस्त शिखरों को नष्ट नहीं कर देता, उससे पहले सुवर्णांगी सीता को मुझे दिखा दें—

'क्रुद्धोऽब्रवीद् गिरिं तत्र सिंहः क्षुद्र मृगं यथा ।
तां हेमवर्णां हेमांगी सीतां दर्शय पर्वत ।।
यावत् सानूनि सर्वाणि न ते विध्वंसयाम्यहम् ।।'

—अर० का० ६४/३०-३१

राम इतने कुपित हो रहे हैं कि वे तीरों की अग्नि से वन, पर्वत के वृक्षों, पल्लवों को नष्ट करने के लिए उद्यत हैं। और यदि सीता का पता नहीं चला तो नदी को भी सुखा डालने को तैयार हैं—

'मम बाणाग्निनिर्दग्धो भस्मीभूतो भविष्यसि।
असेव्यःसर्वतश्चैव निस्तृणद्रुमपल्लवः॥
इमां वा सरितं चाद्य शोषयिष्यामि लक्ष्मण।
यदि नाख्याति मे सीतामद्य चन्द्रनिभाननाम्॥'
—अर० का० ६४/३३-३४

जब सीता का कहीं कोई संकेत प्राप्त नहीं होता, तो उनका क्रोध बढ़ता ही जाता है, और वे लक्ष्मण से कहते हैं कि अब इस पृथ्वी पर कोई यक्ष, राक्षस, गन्धर्व और मनुष्यादि चैन से नहीं रह पायेंगे और वे अपने बाणों की वर्षा से आकाश को इस तरह भर देंगे कि कोई भी प्राणी हिल-डुल नहीं सकेगा—

'नैव यक्षा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः।
किंनरा वा मनुष्या वा सुखं प्राप्स्यन्ति लक्ष्मण॥
ममास्त्रबाणसम्पूर्णमाकाशं पश्य लक्ष्मण।
असम्पातं करिष्यामि ह्यद्य त्रैलोक्य चारिणम्॥,
—अर० का० ६४/५८-५९

राम अपार शक्ति के केन्द्र हैं। उनके समुद्रसम गम्भीर हृदय में क्रोध, आवेग आदि की छोटी-छोटी लहरें प्रायः नहीं उठती हैं, किन्तु जैसे अभिभूत होकर सूर्यकांत मणि अपना तेज प्रकट करता है, वैसे ही राम का अद्भुत तेज और त्रिलोकी में प्रलय मचाने योग्य क्रोध इस प्रसंग में प्रकट हो रहा है। वे अपने शस्त्रों की वर्षा से सम्पूर्ण त्रिलोकी में ही विनाश लीला करने की घोषणा करते हैं—

'संनिरुद्धग्रहणमावारितानेशाकरम्।
विप्रणष्टानलमरुद्धभास्करद्युतिसंवृतम्॥
विनिर्मथितशैलाग्रं शुष्यमाणजलाशयम्।
ध्वस्तद्रुकलतागुल्मं विप्रणाशितसागरम्॥'—अर० का० ६४/६०-६१

इस प्रसंग में राम के अंगों में क्रोध से उद्भूत अनुभवों का रोमांचकारी वर्णन कवि ने किया है।

समस्त ब्रह्माण्ड को समाप्त कर देने की उद्घोषणा करते हुए राम के नेत्र क्रोध से लाल हो जाते हैं, होंठ फड़कने लगते हैं और वे वल्कल और मृगचर्म को अच्छी तरह कसकर अपनी जटाओं को भी बांध लेते हैं—

'इत्युक्त्वा क्रोधताभ्राक्षः स्फुरमाणोष्ठसम्पुटः ।
वल्कलाजिनमावद्धय जटाभारमवन्धयत् ।।'
—अर० का० ६४/७२

उस समय उनका सम्पूर्ण शरीर त्रिपुर नामक राक्षस का संहार करने वाले रुद्र के समान प्रतीत होता था—

'तस्य क्रुद्धस्य रामस्य तथाभूतस्य धीमतः ।
त्रिपुरे जघ्नुषःपूर्व रुद्रस्येव वभौ तनुः ।।' —अर० का० ६४/७३

यहां पर सीता के विरह में उत्पन्न शोक से उद्भूत राम का क्रोध श्रेष्ठ वीर को शोभा देने योग्य ही है । कवि ने राम के मुख से जो कुछ कहलवाया है, उसमें किंचिन्मात्र भी कृत्रिमता या अतिशयोक्ति नहीं है अपितु सर्वत्र स्वाभाविकता है । वस्तुतः राम सम्पूर्ण संसार को नष्ट करने की क्षमता रखने वाले अनुपम वीर थे ।

रौद्र-रस का आलम्बन समुद्र

लंका में जाकर सीता को मुक्त कराने के लिए राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, अंगद आदि वीरों एवं वानर सेना के साथ विशालसागर के तट पर पहुंच गये, जो उनका मार्ग रोक कर खड़ा था । राम तीन दिन तक हाथ जोड़कर समुद्र से प्रार्थना करते रहे, किन्तु जब प्रार्थना का समुद्र पर कोई प्रभाव नहीं हुआ तो शान्त स्वभाव वाले राम कुपित हो उठे और सागर के प्रति अपना कालाग्नि सदृश कोध प्रकट करते हुए लक्ष्मण से कहने लगे—

लक्ष्मण! तुम आज अपनी आंखों से देखना कि मेरे वाणों से खण्ड-खण्ड होकर मगर और मछलियां बहने लगेंगी और उनकी लाशों से समुद्र का जल आच्छादित हो जायेगा—

'अथ मद् वाणनिर्भग्नैर्मकरालयम् ।
निरुद्धतोयं सौमित्रे प्लवद्भिः पश्य सर्वतः ।।'— यु० का० २१/१७

मैं सर्पो के शरीर, मत्स्यों के विशाल शरीर और जल में रहने वाले हाथियों के शुण्डादण्ड के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा—

'भोगिनां पश्य भोगानि मया भिन्नानि लक्ष्मण ।
महाभोगानि मत्स्यानां करिणां च करानिह ।।' यु० का० २१/१८

यद्यपि समुद्र अक्षोभ्य है, फिर मैं आज क्रोधित होकर इसे क्षुब्ध कर दूंगा । सहस्रों तरंगे उठने पर भी यह अपने तट की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, किन्तु आज मैं अपने वाणों से इसकी मर्यादा नष्ट कर दूंगा । बड़े-बड़े दानवों से परिपूर्ण इस सागर में हलचल मचा दूंगा, तूफान ला दूंगा —

'अद्याक्षोभ्यमपि क्रुद्धः क्षेभयिष्यामि सागरम् ।
वेलासु कृतमर्यादं सहस्रोर्मिसमाकुलम् ।।
निर्मर्यादं करिष्यामि सायकैर्वरुणालयम् ।
महार्णवं क्षोभयिष्ये महादानवसंकुलम् ।।'
—यु० का० २१/२३-२४

यह कहकर वीर राम ने हाथ में धनुष ले लिया, वे क्रोध से नेत्र विस्फारित कर देखने लगे और प्रलयाग्नि के समान प्रज्ज्वलित हो गये—

'एवमुक्त्वा धनुष्पाणिः क्रोधविस्फारितेक्षणः ।
बभूव रामो दुर्धर्षो युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ।।' —यु० का० २१/२५

उनके धनुष की टंकार से सारा संसार कांपने लगा, समुद्र में तूफान-सा उठ खड़ा हुआ, सागर में रहने वाले समस्त जीव-जन्तु भय से कांपने लगे—

'सम्पीड्य च धनुघोरं कम्पयित्वा शरैर्जगत् ।
मुमोच विशिखानुमान् वज्रानिव शतक्रतुः ।।'—यु० का० २१/२६

समुद्र के विशाल रूप को देखकर राम का क्रोध और अधिक प्रदीप्त हो जाता है, और अत्यन्त दारुण शब्दों में वे समुद्र के जल को अपने बाणों की अग्नि से सुखा डालने तथा उसमें रहने वाले समस्त जीव-जन्तुओं को समाप्त कर देने की घोषणा करते हुए कहते हैं—

'शरनिर्दग्ध तोयस्य परिशुष्कस्य सागर ।
मयानिहतसत्वस्य पासुंरुत्पद्यतेमहान् ।।' —यु० का० २२/२

इस प्रसंग में भी वाल्मीकि ने परमवीर राम का मार्ग रोकने पर स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होने वाले क्रोध का मर्मस्पर्शी वर्णन करके रौद्र-रस की हृदयग्राही अभिव्यक्ति की है।

यहां पर समुद्र आलम्बन विभाव है। अनुनय-विनय करने पर भी मार्ग न देना उद्दीपन विभाव है। राम का अनेक प्रकार से समुद्र को डराना, भर्त्सना करना, हाथ में धनुष लेकर उसकी टंकार से दिशाओं को गुंजायमान कर देना, क्रोध से नेत्र का लाल हो जाना आदि अनुभाव हैं। आवेग, अमर्ष, उग्रता, गर्व, उत्सुकता आदि संचारी भावों से परिपुष्ट राम के अन्तःकरण में स्थित 'क्रोध' स्थायीभाव व्यंग्य है।

रौद्र-रस के आश्रय लक्ष्मण

वाल्मीकि के नायक राम जहां सतोगुणी होने से करुणानिधान एवं शान्त प्रकृति के हैं, वहां सुमित्रातनय लक्ष्मण उग्र स्वभाव के हैं और वे अन्याय को सहन करने के लिए तैयार नहीं होते फिर चहे वह अन्याय शत्रु द्वारा किया गया हो

अथवा माता कैकेयी द्वारा। वे राम के अनन्य भक्त हैं। उन्होंने अपना सम्पूर्ण व्यक्तित्व राम के लिए विसर्जित कर दिया है। वे छाया की तरह राम का अनुगमन करते हैं। व्यक्तित्व-विसर्जन का ऐसा अनुपम उदाहरण भारती साहित्य में तो क्या विश्व-साहित्य में भी दुर्लभ होगा।

अतः जो कोई राम के साथ अन्यायपूर्ण आचरण करता है, उसके प्रति लक्ष्मण का मन्यु स्वतः जाग्रत हो उठता है। राम अपने भाइयों में बड़े होने के कारण अयोध्या के राज्य के उत्तराधिकारी थे। एक आदर्श राजा में जो-जो उत्तम गुण अपेक्षित हो सकते हैं, वे सब राम के चरित्र में कूट-कूट कर भरे हुए थे। राजा दशरथ भी राम से अनन्य प्रेम रखते थे और उन्हीं की आज्ञा से राम के राज्याभिषेक की तैय्यारियां हो रही थीं, किन्तु अकस्मात् ही कैकेयी की वर-वाचना से सबकी आशाओं, आकांक्षाओं पर तुषारपात हो गया। भरत को अयोध्या का राज्य और राम को चौदह वर्ष का वनवास मिला। राम ने इस सारे घटना-चक्र को अत्यन्त सहज भाव से स्वीकार किया।

जैसे अयोध्या के राज्य प्राप्ति की सुखद सूचना से उन्हें कोई प्रसन्नता नहीं हुई थी, वैसे ही वनवास की आज्ञा पाकर राम के समुद्रसम अन्तःकरण में क्षोभ की एक छोटीसी लहर भी उत्पन्न नहीं हो सकी। किन्तु लक्ष्मण इस आज्ञा को अत्यन्त अनुचित मानकर क्षुब्ध हो उठते हैं और न केवल कैकेयी की अपितु अपने पिता दशरथ की भी भर्त्सना करते हैं। लक्ष्मण के इस क्रोध की प्रेरणा भातृप्रेम ही है। वे क्रोधित होकर पूज्या माता कौसल्या के समक्ष दशरथ की भर्त्सना करते हुए कहते हैं--

'विपरीतश्च वृद्धश्च विषयैश्च प्रधर्षितः।
नृपः किमिव न ब्रूयाच्चोद्यमानः समन्मथः ॥' —अयो० का० २१/३

वे राम से वन में न जाकर बलपूर्वक राज्य की बागडोर सम्भालने की प्रार्थना करते हैं, और जो-जो भी विरोध करेगा, उसे समाप्त करने की घोषणा करते हैं—

'निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्यादि स्थास्यति विप्रिये ॥'

—अयो० का० २१/१०

लक्ष्मण का क्रोध बढ़ता जाता है और वे उन सभी का वध करने के लिए तत्पर हो जाते हैं, जो भरत के पक्षपाती हैं। इतना ही नहीं, क्रोधाविष्ट होकर वे अपने जन्मदाता पिता दशरथ को भी मार डालने की बात कह देते हैं, जो कि रानी कैकेयी में आसक्त होकर दीन हो गये हैं, जबकि शास्त्रों में पिता का वध अत्यन्त गर्हणीय माना गया है। यह क्रोध की पराकाष्ठा है—

'भरतस्याय पक्ष्यो वा यो वास्य हितमिच्छति ।
सर्वास्तांश्च वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते ।।' —अयो० का० २१/११

हनिष्ये पितरं वृद्धं कैकेय्यासक्तमानसम् ।
कृपणं च स्थितं बाल्येवृद्धभावेन गर्हितम् ।।' —अयो० का० २१/१९

यहां दशरथ आलम्बन विभाव हैं । कैकेयी के कथन से राम को चौदह वर्ष का वनवास एवं भरत को अयोध्या का राज्य देना उद्दीपन विभाव है । लक्ष्मण द्वारा कैकेयी एवं दशरथ की कठोर शब्दों में भर्त्सना तथा राम के विरोधियों का वध कर देने की घोषणा, क्रोध से नेत्रों का लाल हो जाना आदि अनुभाव है । अमर्ष, उग्रता, आवेग, विषाद आदि संचारी भावों से परिपुष्ट लक्ष्मण के अन्तःकरण में स्थित 'क्रोध' स्थायीभाव व्यंग्य है ।

राम ने सुख दुःख का मूल कारण दैव को निरुपित कर लक्ष्मण के क्रोध को शान्त करने का बहुत प्रयास किया किन्तु लक्ष्मण का राम के प्रति अनुराग इतना तीव्र था कि क्रोध शान्त ही नहीं हो रहा था । लक्ष्मण ने ललाट में भौहें चढ़ाकर लम्बी सांस खींचनी प्रारम्भ की, मानो बिल में बैठा हुआ सर्प कुपित होकर फुंकार मार रहा हो—

'तदा तु बध्वा भ्रुकुटीं भ्रुवोर्मध्ये नरर्षभः ।
निशश्वास महासर्पो बिलस्थ इव रोषितः ।।' —अयो० का० २३/२

भौंहों के तन जाने से उस समय लक्ष्मण का मुख क्रोधित हुए सिंह के मुख के समान प्रतीत हो रहा था, उसकी ओर देखना भी कठिन था—

'तस्य दुष्प्रतिवीक्ष्यं तद् भ्रुकुटीसहितं तदा ।
बभौ क्रुद्धस्य सिंहस्य मुखस्य सदृशं मुखम् ।।' —अयो० का० २३/३

जैसे गजराज क्रोध में अपनी सूंड हिलाता है, उसी प्रकार वे अपने दाहिने हाथ को हिलाते हुए गर्दन को इधर-उधर ऊपर नीचे घुमा रहे थे—

'अग्रहस्तं विधुन्वंस्तु हस्ती हस्तमिवात्मनः ।
तिर्यगुर्ध्वं शरीरे च पातयित्वा शिरोधराम् ।।' —अयो० का० २३/४

यहां पर लक्ष्मण की भौंहों का तन जाना, लम्बी-लम्बी सांस लेना, मुख का सिंह के मुख के समान क्रोधित हो जाना, दाहिने हाथ और गर्दन को इधर-उधर हिलाना आदि अनुभावों से रौद्र-रस का परितोष दर्शनीय है ।

वे रोष-परिपूर्ण होकर मतवाले हाथी के समान गतिशील दैव को भी अपने पुरुषार्थ से पीछे लौटा देने को उद्यत हैं । केवल पिता दशरथ तो क्या समस्त संसार के लोकपाल एवं प्राणी भी राम के राज्याभिषेक को अब नहीं रोक पायेंगे, ऐसी

घोषणा करते हुए वे क्रोधावेग में अनेक प्रकार की दर्पयुक्त एवं रोषपुक्त गर्जनाएं करते हैं—

'अत्तङ्कुश मिवोद्दामं गजं मदजलोद्धतम् ।
प्रधावितमहं देवं पौरुषेण निवर्तये ।।' —अयो० का० २३/२०

'न शोभार्थाविमौ बाहू न धनुर्भूषणाय मे ।
नासिराबन्धनार्थाय न शराः स्तम्भहेतवः ।।' —अयो० का० २३/३०

'असिरा तीक्ष्णधारेण विद्युच्चलितवर्चसा ।
प्रगृहीतेन वै शत्रुं वज्रिणं वा न कल्पये ।।' —अयो० का० २३/३२

'खड्ग निष्पेषनिष्पिष्टैर्गहना दुश्चरा च मे ।
हस्त्यश्वरथिहस्तोरुशिरोभिर्भविता मही ।।' —अयो० का० ३३/३३

इस प्रकार लक्ष्मण की इन दर्पोक्तियों में रौद्र-रस की सुन्दर योजना आदि कवि ने की है, किन्तु यहां पर भी यह रौद्र रस राम के प्रति लक्ष्मण की अनन्य भक्ति से ही प्रेरित है ।

भरत एक क्षण के लिए भी अयोध्या का राज्य नहीं चाहते थे, अतः वे अपनी माताओं, वशिष्ठ आदि गुरुजनों और अमात्यों तथा सेना के साथ राम को वन से लौटा लाने के लिए जहां राम, लक्ष्मण और सीता निवास कर रहे थे, वहां पहुंच गये । विशाल सेना के आने से आकाश में धूल छाने लगी, वन्य जन्तु भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे । सर्वत्र कोलाहल व्याप्त हो गया । राम के कहने पर लक्ष्मण ने एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर देखा कि भरत दल-बल के साथ आ रहा है । लक्ष्मण का अन्तःकरण भरत के प्रति पूर्व से ही शंकाकुल था, अब तो सेना के साथ उसे आता हुआ देखकर लक्ष्मण की आशंका विश्वास में परिणत हो जाती है और क्रोध-परिपूर्ण होकर वे राम से कहने लगते हैं—

'अथ पुत्रं हतं संख्ये कैकेयी राज्यकामुका ।
मया पश्येत सुदुःखार्ता हस्तिभिन्नमिव द्रुमम् ।।'
'कैकेयीं च वधिष्यामि सानुबन्धां सबान्धवाम् ।
कलुषेणाय महता मेदिनी परिमुच्यताम् ।।'
'अद्यैव चित्रकूटस्य काननं निशितैः शरैः ।
छिन्दञ्छत्रुशरीराणि करिष्ये शोणितोणिक्षतम् ।।'
'शरैर्निर्भिन्नहृदयान् कुंजरांस्तुरगांस्तया ।
श्वापदाः परिकर्षन्तु नरांश्च निहतान् मया ।।'
—अयो० का० ९६/२६-२९

लक्ष्मण का प्रत्येक शब्द क्रोध में डूबा हुआ है । उनका क्रोध पराकाष्ठा पर

पहुंचा हुआ है । यहां पर भी भरत और कैकेयी आलम्बन विभाव है । विशाल सेना के आगमन से सर्वत्र धूल का उड़ते हुऐ दिखाई देना उद्दीपन विभाव है । लक्ष्मण द्वारा भरत और कैकेयी को मार देने की तथा तीक्ष्ण बाणों से शत्रु शरीरों को खण्ड-खण्ड कर चित्रकूट की वनभूमि को रक्त से सींच देने की घोषणा अनुभाव है । गर्व, अमर्ष, आवेग, विषाद, उग्रता आदि संचारी भावों से परिपुष्ट लक्ष्मण के अन्तःकरण में स्थित 'क्रोध' स्थायी भाव व्यंग्य है ।

रौद्र-रस का आश्रय भरत

सम्पूर्ण रामायणी-कथा-विस्तार की आधार शिला, कैकेयी द्वारा राजा दशरथ से मांगे गये दो वर थे । कैकेयी ने इन दोनों वरों की याचना अपने पुत्र भरत उज्ज्वल भविष्य के लिए ही की थी, किन्तु भरत राम कथा का एक ऐसा अद्वितीय पात्र है, जिसके जीवन में मनुष्य की सात्विक प्रवृत्ति का चरम आदर्श अत्यन्त सहज रूप में प्रकट हुआ है । यद्यपि विश्व-साहित्य में लक्ष्मण का भातृ-प्रेम स्वर्णाक्षरों में अंकित है, जिससे संसार के समस्त भोग ऐश्वर्यों को त्यागकर जंगलों की धूल छानी थीं और अर्हनिश भैया-भावी की सेवा में संग्लन रहते थे, किन्तु भरत का राम-प्रेम लक्ष्मण से भी बढ़कर है, जो कि राम-प्रेम के कारण अयोध्या के राज्य को कन्दुकवत् त्याग देना चाहते हैं, किन्तु राम की आज्ञा से, राम को त्यागकर निस्पृह भाव से विदेहवत् राज्य का संचालन करते हैं, जो कि लक्ष्मण नहीं कर सकते थे ।

जब भरत ननिहाल से लौटकर आते हैं और उन्हें कैकेयी द्वारा उन्हीं के लिए किये गये घृणित षड्यन्त्र की जानकरी प्राप्त होती है तो उनका पवित्र अन्तःकरण हा-हाकार करने लगता है । अपनी जन्मदात्री कैकेयी के प्रति भरत के हृदय में क्रोध की प्रबल ज्वाला प्रज्ज्वलित हो उठती है और वे कैकेयी को कड़ी फटकार लगाते हुए अपने क्रोध को प्रकट करते हैं । उस समय वे ऐसे लगते हैं, मानों मन्दराचल की गुहा में बैठा हुआ सिंह गरज रहा हो—

> 'इत्येवमुक्त्वा भरतो महात्मा, प्रियतरैर्वाक्य गणैस्तुदंस्ताम् ।
> शोकार्दितश्चापि ननाद भूयः सिंहो यणा मन्दरकन्दरस्थः ।।'
>
> —अयो० का० ७३/२८

वे अपनी मां के लिए ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं, जिसकी भरत जैसे शान्त प्रकृति के पात्र से कभी अपेक्षा की ही नहीं जा सकती । भरत के इस प्रसंग में प्रदर्शित उग्र क्रोध को देखकर ही महाकवि भवभूति का यह कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है—

> 'वज्रादपिकठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
> लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ।।'

भरत अनेक प्रकार के कठोर, धिक्कार-युक्त वचनों से अपनी माता की तीव्र भर्त्सना करते हुए कहते हैं—

'राज्याद् भ्रंशस्व कैकेयि नृशंसे दुष्टचारिणि ।
परिव्यक्तासि धर्मेण मा मृतंरुदती भव ।।' —अयो० का० ७४/२
'न त्वमश्वपतेः कन्या धर्मराजस्य धीमतः ।
राक्षसी तत्र जातासि कुलप्रध्वंसिनी पितुः ।।' —अयो० का० ७४/६

वे अपनी माता को राक्षसी कहकर गले में रस्सी बांधकर अपने प्राण त्यागने तक को कह देते हैं—

'सा त्वमग्निं प्रविश वा स्वयं वा विश दण्डकान् ।
रज्जुं बद्धवाधवा कण्ठे नहि तेऽन्यत् परायणम् ।।'
—अयो० का० ७४/३३

रोषयुक्त वचन कहते हुए भरत शस्त्रों से आहत हाथी के समान मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं और क्रोधित होकर सांप के समान फुंफकारने लगते हैं। उनकी आंखें लाल हो जाती हैं, वस्त्र ढीले पड़ जाते हैं और आभूषण टूटकर बिखर जाते हैं—

'इति नाग इवारण्ये तोमरांकुश तोदितः ।
पपात भुमि संक्रुद्धो निःश्वसन्निव पन्नगः ।।'
'संरक्तनेत्रः शिथिलाम्बरस्तथा, विधूतसर्वाभरणः परतंपः ।
बभूव भूमौ पतितो नृपात्मजः, शचीपतेः केतुरिवोत्सवक्षये ।।'
—अयो० का० ७४/३५-३६

यहां पर कैकेयी आलम्बन विभाव है, राम का वनवास एवं दशरथ की मृत्यु उद्दीपन विभाव है। भरत द्वारा अपनी माता कैकेयी की अनेक प्रकार से की गयी भर्त्सना, तथा मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ना, दीर्घश्वास लेना, नेत्रों का लाल हो जाना, वस्त्रों का शिथिल हो जाना और आभूषणों का चारों ओर बिखर जाना आदि अनुभाव हैं। अमर्ष, आवेग, चिन्ता, लज्जा, उग्रता, विषाद आदि संचारीभावों से परिपुष्ट होकर भरत के हृदय में स्थित 'क्रोध' स्थायी भाव रौद्र-रस के रूप में अभिव्यंजित हो रहा है।

यहां पर भरत का क्रोध वीर अथवा भयानक रस का सहयोगी न होकर राम के प्रति अथाह अनुराग तथा माता कैकेयी के घृणित निन्दनीय कार्य से उत्पन्न है, करुणा का प्रवाह भी साथ में प्रवाहमान है, पुनरपि रौद्र-रस सात्विक एवं उदात्त रूप में व्यंजित हुआ है। भरत जैसे पात्र में इस प्रकार के मर्यादित क्रोध की ही अपेक्षा की जा सकती थी।

रौद्र-रस का आश्रय-सीता

सीता का अपहरण करने के लिए रावण ने संन्यासी का छद्म रूपधारण करके उसके सम्मुख जाकर प्रणय-निवेदन किया तो सीता का गंगाजल और अग्नि के समान पवित्र अन्तःकरण, जो केवल राम के ही चरणों में समर्पित था, क्रोध से प्रज्ज्वलित हो उठा। सीता राम के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष की स्वप्न में भी कामना नहीं करती थी। उसने अपने क्रोध को प्रकट करते हुए अत्यन्त रोषपूर्ण भाषा में रावण की तीव्र भर्त्सना की। महाकवि ने सीता के कठोर वचनों में रौद्र-रस की सुन्दर अभिव्यक्ति की है।

सीता रावण को सियार और स्वयं को सिंहनी बताते हुए कहती है कि जैसे कोई सूर्य की प्रभा को नहीं छू सकता, उसी प्रकार तू भी मेरा स्पर्श नहीं कर सकेगा—

'त्वं तुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा॥'

—अर० का० ४७/३७

अनेक प्रकार की उपमाओं से वह रावण के घृणित विचार की भर्त्सना करती है, जो कि राम की प्रिय पत्नी सीता को प्राप्त करने की कुत्सित योजना बनाकर वहां आया था-—

'क्षुधितस्य च सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्विनः।
आशीविषयस्य वदनाद् दंष्ट्राभादातुमिच्छसि॥
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि।
कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान् गन्तुमिच्छसि॥
अक्षिसूच्या प्रमृजसि जिह्वया लेढि च क्षुरम्।
राघवस्य प्रियां भार्यामधिगन्तुं त्वमिच्छसि॥'

—अर० का० ४७/३९-४१

सीता के क्रोधावेश में राम और रावण में अन्तर निरुपित करके अपने क्रोध को अतीव प्रभावकारी रूप में प्रस्तुत किया है। वह कहती हैं—

'यदन्तरं सिंहशृगालयोर्वने, यदन्तरं स्यन्दनिकासमुद्रयोः।
सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदन्तरं, तदन्तरं दशरथेस्तवैव च॥
यदन्तरं कांचनसीसलोहयोर्यदन्तरं चन्दनवानिपंकयोः।
यदन्तरं हस्तिबिडालयोर्वने तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च॥'

—अर० का० ४७/४५-४६

यहां पर सीता का क्रोध प्रखर रूप में मुखरित होकर रौद्र रस की सशक्त अभिव्यजंना कर रहा है।

रावण आलम्बन विभाव है। रावण की सीता को प्राप्त करने की अभिलाषा उद्दीपन विभाव है। सीता द्वारा अनेक प्रकार के कठोर वचनों से रावण की भर्त्सना, उसको सियार, मदिरा, सीसा, कीचड़, विलाव, कौआ, जलकाक, गीध आदि के रूप में निरूपित करना अनुभाव है। चिंता, दैन्य, विषाद, आवेग, अमर्ष, उग्रता आदि संचारी भावों से परिपुष्ट सीता के हृदय में विद्यमान 'क्रोध' स्थायी भाव व्यंग्य है।

रौद्र-रस का आश्रय-रावण

आदि कवि ने जहां राम के चरित्र में क्रोध को नायकोचित गरिमा के साथ प्रस्तुत किया है, वहां रावण का क्रोध भी प्रतिनायक के गौरव के अनुरूप ही है।

रावण को रामायण में तामसिक प्रकृति का निरूपित किया गया है। तमोगुणी व्यक्ति में क्रोध की मात्रा स्वभाव से ही अधिक होती है। रावण का सर्वनाश ही उसके इसी स्वभाव के कारण हुआ था। इस महाकाव्य में अनेक स्थलों पर रावण का क्रोध प्रकट हुआ है। लंका के युद्ध में रावण पक्ष के वीर एक-एक करके मृत्यु का वरण कर रहे थे, उसी क्रम में लक्ष्मण द्वारा रावण-पुत्र इन्द्रजित् भी मारा गया। अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण शोक-सागर में डूब जाता है और जिस लक्ष्मण ने उसके प्रिय-पुत्र को मृत्यु की गोद में सुला दिया था, उसके प्रति रावण के हृदय में क्रोधाग्नि धधक उठती है। स्वभाव से ही क्रूर आकृति वाला वह राक्षसराज ऐसा लगने लगता है मानो संसार को जलाकर भस्म कर देगा। रावण के उस रूप का चित्रण कवि ने पूरी तन्मयता से किया है।

रावण की भौहें टेढ़ी हो जाती हैं, जब वह जंभाई लेता है तो उसके मुख से धूमयुक्त अग्नि निकली हुई दिखाई देती है। उसकी लाल आंखें क्रोध से अत्यन्त लाल हो जाती हैं—

'ललाटे भ्रुकुटीभिश्च संगताभिर्व्यरोचत।
युगान्ते सहनक्रैस्तु महोर्मिभिरिवोदधिः॥
कोपाद् विजृम्भमाणस्य वक्त्राद् व्यक्तमिव ज्वलन्।
उत्पपात सधूमाग्निर्वृत्रस्य वदनादिव॥'

—युo काo ९५/१८-१९

'तस्य प्रकृत्या रक्ते च रक्ते क्रोधाग्निनापि च।
रावणस्य महाघोरे दीप्ते नेत्रे बभूवतुः॥,—युo काo ९२/२१

क्रोधाग्नि के प्रभाव से रावण का स्वभाव से ही भयानक रूप और भयंकर होने लगता है और वह क्रोधित रुद्र के समान दुर्जय प्रतीत होता है—

'घोरं प्रकृत्या रूपं तत् तस्य क्रोधाग्निमूर्छितम् ।
बभूव रूपं क्रुद्धस्य रुद्रस्येव दुरासदम् ॥' —यु० का० ६२/२२

रावण क्रोधावेग से अपने दांत पीस रहा है, उस समय उसके दांतों के कट-कटाने का शब्द ऐसा प्रतीत होता है, मानों समुद्र-मन्थन के समय राक्षसों द्वारा मन्थन-यन्त्र के खींचे जाते हुए मन्दराचल की ध्वनि ही हो—

'दन्तान् विदशतस्तस्य श्रूयते दशनस्वनः ।
यन्त्रस्याकृष्यमाणस्य मथ्नतो दानवैरिव ॥' —यु० का० ६२/२४

वह प्रलय कालीन अग्नि के समान कुपित होकर जिस-जिस दिशा की ओर दृष्टि डालता है, उस, उस दिशा के राक्षस भयभीत होकर छिप जाते हैं—

'कालाग्निरिव संक्रुद्धो यां यां दिशमवैक्षत ।
तस्यां तस्यां भयत्रस्ता राक्षसाः संवलिल्यिरे ॥'—यु० का० ६२/२५

चराचर प्राणियों को ग्रस लेने की इच्छा वाले कुपित काल के समान रावण के समीप राक्षस भी जाने का साहस नहीं करते हैं—

'तमन्तकमिव क्रुद्धं चराचरचिद्धादिषुम् ।
वीक्षमाणं दिशः सर्वा राक्षसा नोपजक्रमुः ॥'—यु० का० ६२/२६

यहां पर लक्ष्मण आलम्बन विभाव हैं । युद्ध में इन्द्रजित् की मृत्यु उद्दीपन विभाव है । रावण का क्षुब्ध होना, भौहें टेढ़ी करना, जम्भाई लेना, नेत्र रक्तवर्ण के हो जाना, क्रोधावेग से दांत पीसना, चारों ओर अपनी क्रुद्ध दृष्टि डालना आदि अनुभाव हैं । असूया, मद, चिन्ता, आवेग, गर्व, विषाद, अमर्ष आदि संचारी भावों से परिपुष्ट रावण के हृदय में स्थित 'क्रोध' स्थायी भाव व्यंग्य है ।

यहां भावों की ऐसी सरिता प्रवाहित हो रही है कि कवि की शैली अनायास ही अलंकृत हो उठी है ।

क्रुद्ध रावण के कटकटाते हुए दांतों की ध्वनि दानवी बल से घुमायें जाते हुए यन्त्र की ध्वनि के समान प्रतीत होती है। कवि ने चरित्र-चित्रण में पूर्ण निष्पक्षता, तटस्थता और औदार्य का परिचय दिया है । यदि राम का क्रोध प्रलय-कालीन अग्नि के समान है तो रावण का क्रोध भी उससे किसी रूप में कम नहीं है । वाल्मीकि ने मनोविकारों का चित्रण करने में किसी प्रकार की कृपणता या कूपमण्डूकता का परिचय नहीं दिया है, अपितु वे निर्द्वन्द्व होकर पूर्वाग्रह से न बन्ध-कर चित्रण करते हैं । इसीलिए रावण के क्रोध में अनुभावों की सुन्दर योजना बन पड़ी है ।

इसी प्रकार युद्धभूमि में प्रहस्त भी मारा गया । यह सुनते ही रावण क्रोध से तमतमा उठता है, और वह अपने भयानक क्रोध को व्यक्त करने के लिए राम,

लक्ष्मण सहित सम्पूर्ण वानर सेना को समाप्त कर देने की घोषणा करता है—

'अद्य तद् वानरानीकं रामं च सहलक्ष्मणम् ।
निर्दहिष्यामि बाणोघैर्वनं दीप्तैरिवाग्निभिः ।
अद्य संतर्पयिष्यामि पृथिवीं कपिशोणितैः ।।' —यु० का० ५९/६

क्रोधोन्मत रावण का वर्णन कवि ने पुनः अनेकानेक भयोत्पादक उपमानों के माध्यम से किया है । पर्वत और मेघों के समान काले एवं विशाल आकृति वाले, मांसभक्षी, अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नेत्रों वाले राक्षसों से घिरा हुआ वह रावण भूतगणों से घिरे हुए रुद्र के समान प्रतीत होता है—

'स शैलजीमूतनिकाशरूपै-
मांसाशनैः पावकदीप्त नेत्रैः ।
बभौ वृतो राक्षसराजमुख्यो
भूतैर्वृतो रुद्र इवामरेशः ।।' —यु० का० ५९/९

यहां पर भी राम, लक्ष्मण एवं वानर सेना आलम्बन विभाव है । प्रहस्त का वध उद्दीपन विभाव है । रावण का रोषयुक्त वचन कहना, तथा उसकी आकृति का अत्यन्त भयानक हो जाना आदि अनुभाव है । गर्व, अमर्ष, विषाद, आवेग, उग्रता आदि संचारी भावों से परिपुष्ट रावण के अन्तःकरण में स्थित 'क्रोध' स्थायी भाव व्यंग्य है ।

यहां रावण का क्रोध भी वीरपुरुषोचित प्रदर्शित किया गया है ।

इस प्रकार वाल्मीकि-रामायण में रौद्र-रस के प्रभावशाली प्रसंग विद्यमान हैं। कवि ने किसी भी पात्र के मनोभावों पर अंकुश नहीं रखा है, अपितु निर्द्वन्द्व होकर उनकी मानसिक दशाओं का चित्रण किया है । अप्रिय, असत्य अथवा अन्याय पर क्रोध का उद्बुध होना स्वाभाविक ही है । अतः रौद्र-रस की सशक्त योजना में महाकवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है ।

वाल्मीकि-रामायण में भयानक-रस

आदिकवि ने रामायण में अन्य रसों की भांति भयानक-रस की भी सुन्दर व्यंजना की है, किन्तु यह अधिकांशतः अद्भुत अथवा करुण रस के अधीन दिखाई देता है । विशेष रूप से राक्षसों की आकृतियां एवं भयोत्पादक कर्म ही भयानक रस की सृष्टि करने वाले हैं क्योंकि प्रत्येक साहित्याध्येता की राम-पक्ष से पूर्ण सहानुभूति है । राम-पक्ष के लोगों से किसी को किसी प्रकार के अनिष्ट की तनिक भी आशंका नहीं है अतः उनके अद्भुत कर्म भय उत्पन्न न करके विस्मय को ही उत्पन्न करने वाले हैं जिससे अद्भुत-रस की सृष्टि होती है। दूसरी ओर रावण-पक्ष के

मायावी-कर्मों से सदैव अनिष्ट की आशंका बनी रहती है, क्योंकि उनका पक्ष असत् का है। राक्षसों की आकृति मद्य-मांसादि का सेवन करने से स्वतः भयजनक होती हैं। अतः इस महाकाव्य में रावण-पक्ष ने भयानक-रस का संचार किया है। हां, यदि विपक्ष की दृष्टि से देखा जाए तो राम, लक्ष्मण, हनुमान आदि वीरों के अद्भुत पराक्रम ने निश्चय ही रावण-पक्ष में बहुत भय का संचार किया है।

जैसे हनुमान के विकराल वेष पर हम भयभीत नहीं होते हैं, अपितु विस्मित ही होते हैं, किन्तु हनुमान का विशाल रूप राक्षसों को अवश्य भयभीत करता है। इसके विपरीत कुम्भकर्ण की रूपाकृति का वर्णन पढ़कर हम भयभीत होते हैं, किन्तु राक्षसों में भय उत्पन्न नहीं होता। इसलिए हमें रस-निर्धारण में श्रोता, पाठक या दर्शक की रुचि का ध्यान रखना होगा क्योंकि रस की अनुभूति और रस-विशेष का प्राधान्य श्रोता, पाठक या दर्शक के संस्कारों और पूर्वाग्रहों पर ही निर्भर होता है।

कवि और पाठक का पक्षपात राम-पक्ष के साथ होने के कारण हनुमान और उनके कृत्य-अद्भुत-रस के आलम्बन और उद्दीपन बनते हैं। तथा कुम्भकर्ण आदि पात्र एवं उनके कृत्य भयानक रस के विभाव बनते हैं।

यहां पर यह विशेष रूप से ध्यातव्य है कि यद्यपि वाल्मीकि, राम का पक्ष सत् और रावण का पक्ष असत् मानते हैं और उनकी पूर्ण सहानुभूति भी राम-पक्ष से ही है, किन्तु अपनी अमर रचना में कवि ने कहीं भी पूर्वाग्रह को नहीं अपनाया है, अपितु रावण-पक्ष की विशेषताओं का भी चित्रण कर अपनी उदारता का परिचय दिया है।

राम के वन गमन के अवसर पर भयानक-रस

रामायण में सर्वप्रथम राम के वन-गमन के अवसर पर अयोध्या नगरी की अवस्था का चित्र प्रस्तुत कर कवि ने भयानक-रस की उद्भावना की है। यद्यपि इस प्रसंग में शोक और विषाद की गहरी छाया है, किन्तु इस भय का भाव भी संचारी की अपेक्षा अधिक तीव्र हो जाता है। यह प्रसंग ही इस प्रकार से है कि परिस्थिति का अवलोकन करने पर भय की व्यापकता का कारण समझ में आ जाता है। जिस राम का राज्याभिषेक होने जा रहा था, उसी के जीवन में अकस्मात् एक ही रात्रि में वनगमन के दुर्भाग्यपूर्ण अवसर के उपस्थित हो जाने से अयोध्या के नागरिक होनहार की अवश्यंभाविता, निष्ठुरता और अनिश्चयात्मकता की स्थिति से आतंकित हो उठते हैं। उनको ऐसा प्रतीत होने लगता है कि प्रतिकूल दिशा की ओर अभिमुख दुर्भाग्य जब एक रात्रि में सुख की निरभ्र स्निग्ध ज्योत्स्नायुक्त शारदी विभावरी को दुःख की भयावह रात्रि में परिवर्तित कर सकता है तो वह आगे-आगे न जाने क्या क्या कहर ढायेगा। क्योंकि 'छिद्रष्वनर्या बहुलीभवन्ति' के अनुसार विपत्ति अकेले नहीं आती, वह अपने साथ अनेक विपत्तियों को लेकर आती है।

अयोध्या-वासियों को भय था कि कहीं कोई बड़ी दुर्घटना न हो जाए। स्वयं भी राम को भी आशंका थी कि कहीं कैकेयी, दशरथ और कौसल्या कोई बड़ा अनिष्ट न कर डाले।

इसी तरह भविष्य में होने वाली दुर्घटनाओं के पूर्वाभास के नियमानुसार दशरथ की मृत्यु की छाया भी अज्ञात रूप में अयोध्या पर मंडराने लगती थी। दशरथ जैसे पराक्रमी राजा की शक्ति का एक नारी द्वारा पराभव तथा कैकेयी के रूप में नारी की पैशाचिक निष्ठुरता की पराकाष्ठा तथा राम जैसे चन्द्रोज्वल चरित्र वाले जन-जन के प्रिय राजकुमार का अनुज लक्ष्मण एवं नवविवाहिता राजवधू के साथ वनगमन देखकर अयोध्यावासियों का भयभीत हो उठना स्वाभाविक ही था।

राम के वन-गमन का प्रसंग भय एवं करुणा का सिहरन उत्पन्न कर देने वाला अनुपम उदाहरण है। वाल्मीकि ने मानव-जीवन में घटित होने वाली ऐसी अप्रत्याशित घटनाओं की भयानकता अनुभव करते हुए इस प्रसंग में भयानक रस का प्रयोग किया है। आदिकवि ने इस अवसर पर भयानक रस के विभाव पक्ष को पूर्ण रूप में प्रस्तुत करने के लिए अपशकुनों द्वारा वातावरण की भयावह परिस्थिति को प्रस्तुत किया है।

उस समय त्रिशंकु, मंगल, बुध तथा अन्य समस्त ग्रह शुक्र, शनि आदि रात्रि में चन्द्रमा के निकट पहुंचकर थर-थर कांप रहे थे—

'त्रिशंकुर्लोहितांगश्च बृहस्पतिबुधावपि।
दारुणाः सोममभ्येत्य ग्रहाः सर्वेव्यवस्थिताः॥' —अयो०का० ४१/११

नक्षत्रों की कान्ति फीकी पड़ गई थी और ग्रह निस्तेज हो गये थे। वे सब के सब आकाश में विपरीत मार्ग पर स्थित होकर धूमाच्छादित से प्रतीत होते थे—

'नक्षत्राणि गतार्चीषि ग्रहाश्च गततेजसः।
विशाखाश्च सधूमाश्च नभसि प्रचकाशिरे॥' —अयो० का० ४१/१२

आकाश में व्याप्त मेघमाला वायु के वेग से उमड़े हुए समुद्र के समान प्रतीत होती थी। उस समय सारा नगर जोर-जोर से कांपने लगा था, मानो भूकम्प आ गया हो—

'कालिकानिलवेगेन महोदधिरिवोत्थितः।
रामे वनं प्रव्रजिते नगरं प्रचचार तत्॥' —अयो० का० ४१/१३

दशों दिशाओं में भयंकर अन्धकार छा गया था, वे व्याकुल हो उठी थीं, न न कोई ग्रह प्रकाशित होता था ओर न नक्षत्र—

'दिशः पर्याकुलाः सर्वास्तिमिरेणेव संवृताः ।
न ग्रहो नापि नक्षत्रं प्रचकाशे न किंचन ।।' —अयो० का० ४१/१४

अनुभावों के रूप में कवि ने अयोध्यावासियों की विषण्णता, दिनचर्या का परित्याग, अग्निहोत्र बन्द कर देना, भोजन न पकाना, सूर्यदेव का अस्त हो जाना, हाथियों द्वारा मुख में लिए ग्रास को उगल देना, गौओं का अपने बछड़ों को दूध न पिलाना और प्रथम पुत्र को जन्म देकर भी माताओं का प्रसन्न न होना और नगर के श्मशानवत् बन जाने आदि का वर्णन किया है—

'नाग्निहोत्राण्यहूयन्त नापचन् गृहमेधिनः ।
अकुर्वन् न प्रजाः कार्यं सूर्यश्चान्तरधीयत ।।
व्यसृजन् कवलान् नागा गावो वत्सान् न पाययन् ।
पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाभ्यनन्दत ।।'
—अयो० का० ४१/९-१०

इस प्रकरण में राम, लक्ष्मण और सीता का वनगमन आलम्बन विभाव है। मंगल, गुरु आदि नक्षत्रों का थर-थर कांपना, उनकी कान्ति का निस्तेज हो जाना, समस्त नगर का जोर-जोर से प्रकम्पित होना, दशो दिशाओं में अन्धकार छा जाना आदि उद्दीपन विभाव हैं। अयोध्यावसियों की विषण्णता, दिनचर्या का परित्याग, भोजन न पकाना, गौओं का दूध न देना, प्रथम पुत्र-जन्म पर भी माताओं का प्रसन्न न होना आदि अनुभाव हैं। चिन्ता, स्मृति, विषाद, जड़ता आदि संचारी भावों से परिपुष्ट अयोध्यावासियों के अन्तःकरणों में विद्यमान 'भय' स्थायी भाव व्यंग्य है।

उपर्युक्त अनुभाव यद्यपि करुण रस के भी हैं, क्योंकि ये विषाद की भी व्यंजना करते हैं परन्तु शोक भी किसी भयानक घटना का ही परिणाम होता है। और राम का राज्याभिषेक, वनवास के रूप में परिवर्तित हो जाए, इससे अधिक भयानक घटना और क्या हो सकती है। अतः राम के अयोध्या-त्याग के प्रकरण में भयानक-रस मानना उचित ही होगा।

विराध-प्रसंग में भयानक-रस

ऋषि-मुनियों का आतिथ्य स्वीकार करते हुए राम वन में आगे जा रहे थे, उसी समय मार्ग में उनको एक पर्वत-शिखर के समान नरभक्षी राक्षस विराध दिखाई दिया जिसके वर्णन में बीभत्स के साथ भयानक रस की भी सुन्दर योजना कवि ने की है, वह राक्षस इतनी भयंकर दहाड़ लगा रहा था कि उस गर्जना को सुनने वालों और उसे देखने वालों के हृदय प्रकम्पित हो जाते थे, उसकी अत्यन्त भयजनक रूपाकृति और कर्मों का वर्णन वाल्मीकि ने किया है।

राम, लक्ष्मण और सीता को देखते ही वह क्रोध में भरकर भैरवनाद करके पृथ्वी को कंपाता हुआ उनकी ओर इस तरह दौड़ता है, जैसे प्राणापहारी काल प्रजा की ओर आता है—

'अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धः प्रजाः काल इवान्तकः ।
स कृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम् ॥' —अर० का० २/६

उस दुष्ट विराध की दुष्टता और अभिमान से भरी बातें सुनकर सीता भयभीत हो जाती है । वह भय के कारण इस प्रकार थर-थर कांपने लगती है जैसे तेज हवा के चलने पर केले का वृक्ष जोर-जोर से हिलने लगता है—

'श्रुत्वा सगर्वितं वाक्यं सम्भ्रान्ता जनकात्मजा ।
सीता प्रवेपितोद्वेगात् प्रवाते कदली यथा ॥' —अर०का० २/१५

राम, लक्ष्मण पर आक्रमण करते समय बड़े जोर से गर्जना करके इन्द्रध्वज के समान शूल हाथ में लेकर मुंह बनाए हुए वह काल के समान प्रतीत होता है—

'स विनद्य महानादं शूलं शक्रध्वजोपमम् ।
प्रगृह्याशोभत तदा व्यस्तानन इवान्तकः ॥' —अर० का० ३/१४

यहां पर विराध भयानक-रस का आलम्बन विभाव है । उसकी भयानक आकृति और कर्म, जोर से दहाड़ना, हाथ में शूल लेकर राम और लक्ष्मण पर आक्रमण करना आदि उद्दीपन विभाव हैं । सीता का भयभीत होकर केले के वृक्ष के समान थर-थर कांपना अनुभाव है । विषाद, चिन्ता, आवेग, जड़ता आदि संचारी भावों से परिपुष्ट सीता के हृदय में स्थित 'भय' स्थायी भाव व्यंग्य है ।

शूर्पणखा प्रसंग में भयानक-रस

शूर्पणखा प्रसंग में एक साथ हास्य, बीभत्स और भयानक रसों का समन्वय कवि ने प्रस्तुत किया है । शूर्पणखा के राम के समक्ष प्रणय-निवेदन करने में जो असंगति निरुपति की है, उसमें हास्य की तथा उसकी रूपाकृति में बीभत्स-रस की अनुभूति होती है । किन्तु जब 'अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम्' कहकर दहकते हुए अंगारों के समान नेत्रों वाली शूर्पणखा क्रोधाविष्ट होकर सीता की ओर झपटती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई बड़ी भारी उल्का रोहिणी नामक तारे पर टूट पड़ी हो—

'इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलात-सदृशेक्षणा ।
अभ्यगच्छत् सुसंक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव ॥' —अर० का० १८/१७

शूर्पणखा का यह स्वरूप सीता के मन में भयोत्पादक होने से भयानक-रस की सृष्टि कर रहा है ।

भयानक-रस का आश्रय-सीता

सीता का अपहरण करने के लिए साधु का वेष धारण करके गया हुआ रावण जब सौम्य रूप को त्यागकर काल के समान अपने स्वाभाविक रूप को धारण करता है, उस प्रसंग में भी भयानक रस की अनुभूति होती है।

उस समय रावण के नेत्र लाल हो रहे थे, वह तपे हुए सुवर्ण आभूषणों से सुशोभित था और भयंकर क्रोध से युक्त होकर नीले मेघ के समान काला दिखाई दे रहा था—

'संरक्तनयनः श्रीमांस्तप्तकांचनभूषणः।
क्रोधेन महताविष्टो नीलजीभूत संनिभः॥' —अर० का० ४९/७

उसकी तीक्ष्ण दाढ़ों और विआल भुजाओं से युक्त पर्वत शिखर तथा काल के समान विकराल रूप को देखकर वन के समस्त देवता भयभीत होकर भाग गये।

'तं दृष्ट्वा गिरिशृंगाभं तीक्ष्णदष्ट्रं महाभुजम्।
प्राद्रवन् मृत्युसंकाशं भर्याता वनदेवताः॥'
—अर० का० ४९/१८

वह बलपूर्वक सीता को उठाकर ले जाने लगता है, तब सीता व्याकुल होकर उच्च स्वर से राम को पुकारने लगती है—

सा गृहीतातिचुकोश रावणेन यशस्विनी।
रामेति सीता दुःखार्त्ता रामं दूरं गतं वने॥' —अर० का० ४९/२१

यहां पर दुष्ट रावण आलम्बन विभाव है। उस रावण के लाल-लाल नेत्र तीक्ष्ण दाढ़ों और विशाल भुजाओं से युक्त विकराल रूप तथा सीता का बलपूर्वक अपहरणादि उद्दीपन विभाव हैं। देवताओं का भयभीत होकर भाग जाना, सीता का व्याकुल होकर राम की पुकार करना आदि अनुभाव हैं। विषाद, दैन्य चिन्ता, ग्लानि आदि संचारी भावों से परिपुष्ट सीता के हृदय में विद्यमान 'भय' स्थायी भाव व्यंग्य है।

अशोक-वाटिका में राक्षसियां सदैव सीता को चारों ओर से व्याप्त कर रावण की ओर आकृष्ट करने का प्रयास करती रहती थी। वे सब की सब अत्यन्त विकराल आकृति की थीं, जिनको देखकर सीता का हृदय भय से ऐसे कांपने लगता था, जैसे वन में अपने झुण्ड से बिछुड़ी हुई हिरणी भेड़ियों से पीड़ित होकर कांपती है—

'वेपते स्माधिकं सीता विशन्तीवांगमात्मनः।
वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता॥' —सु० का० २५/५

वे राक्षसियों के भय से संत्रस्त होकर पृथ्वी पर ऐसे गिर पड़ती हैं, जैसे प्रचण्ड वायु के चलने पर कम्पित होकर केले के वृक्ष गिर जाते हैं। उनकी मुख-कान्ति भी निस्तेज हो जाती है।

'सा वेपमाना पतिता प्रवाते कदली यथा।
राक्षसीनां भयत्रस्ता विवर्णवदनाभवत् ॥' —सु० का० २५/८

यहां पर राक्षसियां आलम्बन विभाव हैं, उनकी विकराल आकृतियां उद्दीपन विभाव हैं। सीता का भेड़ियों से घिरी हुई मृगी के समान कांपना, अपने अंगों को संकुचित करना, पृथ्वी पर गिर पड़ना, मुख की कान्ति का निस्तेज हो जाना आदि अनुभाव हैं। चिन्ता, विषाद, दैन्य, आवेग, जड़ता, ग्लानि आदि संचारी-भावों से परिपुष्ट सीता के अन्तःकरण में स्थित 'भय' स्थायी भाव व्यंग्य है।

भयानक रस का आलम्बन—समुद्र

लंका में प्रवेश करने के लिए राम की विशाल सेना समुद्र-तट पर खड़ी थी, उस समय का समुद्र का विशाल रूप सबके हृदयों में भय का संचार करने वाला था। क्रोधयुक्त नाकों के कारण समुद्र बहुत भयंकर दिखाई देता था। दिन की समाप्ति एवं रात्रि के प्रारम्भ में चन्द्रोदय के समय ज्वार आने से वह समुद्र फेन-समूहों के कारण हंसता हुआ-सा तथा उत्ताल तरंगों के कारण नाचता-सा प्रतीत होता था। प्रचण्ड वायु के समान वेगशाली बड़े-बड़े ग्राहों से और तिमि नामक बड़ी मछलियों को भी निगल जाने वाले भयानक जल-जन्तुओं से वह समुद्र व्याप्त था—

'चण्डनक्रग्राहघोरं क्षपादौ दिवसक्षये।
हसन्तमिव फेनोघैर्नृत्यन्तमिव चोर्मिभिः ॥
चन्द्रोदये समुद्भूतं प्रतिचन्द्रसमाकुलम्।
चण्डानिलमहाग्राहैः कीर्णं तिमितिमिंगिलैः ॥'
—यु० का० ४/११०-१११

समुद्र की बड़ी-बड़ी तरंगे परस्पर टकराकर और सटकर आकाश में बजने वाली देवताओं की बड़ी-बड़ी भेरियों के समान भयानक शब्द करती थीं—

'अन्योन्यैरहताः सक्ताः सस्वनुर्भीमनिःस्वना।
ऊर्मयः सिन्धुराजस्य महाभेर्य इवाम्बरे ॥' —यु० का० ४/११८

जब राम ने क्रोधाविष्ट होकर समुद्र की ओर भयानक तीरों का प्रहार किया तब तो समुद्र का स्वरूप और भी अधिक भयोत्पादक हो गया। शंख और सीपियां जल के ऊपर छा गयीं। सब ओर धुंआ उठने लगा और सारे महासागर में बड़ी-बड़ी लहरें चक्कर काटने लगीं—

'महोर्मिमालावितत: शंखशुक्तिसमावृत: ।
सधूम: परिवृत्तोर्मि: सहसासीन्महोदधि: ।।' —यु० का० २१/२९

चमकते हुए फन और दीप्तिमान नेत्रों वाले सर्प व्यथित हो उठे तथा पाताल में रहने वाले महापराक्रमी दानव भी व्याकुल हो गये ।

समुद्र की उत्ताल तरंगे झूमने और चक्कर काटने लगी । वहां रहने वाले नाग और राक्षस भयभीत हो उठे । बड़े-बड़े ग्राह ऊपर उछलने लगे तथा उस समुद्र में चारों ओर भयंकर कोलाहाल मच गया-—

'आघूर्णिततरंगौघ: सम्भ्रान्तोरगराक्षस: ।
उद्वर्तितमहाग्राह: सघोषो वरुणालय: ।।' —यु० का० २१/३२

फिर भी समुद्र ने राम की सेना को मार्ग नहीं दिया, तो राम का क्रोध चरम-सीमा पर पहुंच गया और क्रोधाग्नि में जलते हुए समुद्र को सुखा डालने के लिए ब्रह्मदण्ड के समान एक भयंकर बाण को ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित करके अपने धनुष पर चढ़ाया तो सम्पूर्ण त्रिलोकी में भय व्याप्त हो गया । पृथ्वी और आकाश मानों फटने लगे और पर्वत डगमगा उठे । सारे संसार में अन्धकार फैल गया । किसी को दिशा तक का ज्ञान नहीं रहा, नदियों और तालाबों में हलचल मच गयी—

'तस्मिन् विकृष्टे सहसा राघवेण शरासने ।
'रोदसी सम्पफालेव पर्वताश्च चकम्पिरे ।।
तमश्च लोकमावव्रे दिशश्च न चकाशिरे ।
प्रतिचुक्षुभिरे चाशु सरांशि सरितस्तथा ।।' --यु० का० २२/६-७

आकाश में सैकड़ों उल्कायें प्रज्ज्वलित होकर चमकने लगीं । अन्तरिक्ष में अनुपम एवं भारी गड़गड़ाहट के साथ वज्रपात होने लगा । हवाएं बड़ी तेजी से बहने लगीं तथा वे मेघों की घटा को उड़ाती हुई, वृक्षों को तोड़ती हुई बड़े-बड़े पर्वतों से टकराने और उनके शिखरों को तोड़कर गिराने लगीं—

'वपु: प्रकर्षेण ववुर्दिव्यमारुतपंक्तय: ।
बभंज च तदा वृक्षाञ्जलदानुद्धमन्मुहु: ।।' -—यु० का० २२/६

आकाश में तीव्र वेगशाली विशाल वज्र भयंकर गड़गड़ाहट के साथ टकराकर वैद्युत अग्नि की वर्षा करने लगे । दृश्य और अदृश्य सभी प्राणी बिजली की कड़क के समान भयंकर गर्जना करने लगे ।

उनमें से बहुत से प्राणी अभिभूत होकर धराशायी हो गये । अनेक भयभीत और उद्विग्न हो उठे, अनेक कष्टों से व्याकुल हो गये और बहुत से भय के कारण अचेतन से हो गये—

'शिशिरे चाभिभूतानि संत्रस्तान्युद्विजन्ति च ।
सम्प्रविव्यथिरे चापि न च पस्पन्दिरे भयात् ।।' —यु०का० २२/१३

इस प्रकार समुद्र का भयावह रूप भी भयानक-रस की सृष्टि कर रहा है ।

यहां पर समुद्र आलम्बन विभाव है । क्रोधयुक्त नाकें, ज्वार-भाटा, भयानक गर्जना करती हुई बड़ी-बड़ी तरंगें आदि समुद्र का विकराल रूप उद्दीपन विभाव है । समुद्र के इस रूप को देखकर सबका व्याकुल हो जाना, चारों ओर भयंकर कोलाहल मच जाना, प्राणियों का अचेतन हो जाना आदि अनुभाव हैं । विषाद-आवेग, दैन्य, चिन्ता आदि संचारी भावों से परिपुष्ट 'भय' स्थायी-भाव व्यंग्य है ।

अपशकुनों द्वारा भयानक-रस की व्यंजना

युद्ध काण्ड में राम, लक्ष्मण और सुग्रीव के सम्मुख अपशकुनों के द्वारा भविष्य में घटित होने वाली भयानक घटनाओं का वर्णन करते हैं, जिससे सबके हृदय में भय का संचार होता है ।

इस समय प्रचण्ड आंधी चल रही है, वसुधा कांप रही है, पर्वतों के शिखर हिल रहे हैं, तथा पृथ्वी को धारण करने वाले दिग्गज चीत्कार कर रहे हैं—

'वाता हि परुषं वान्ति कम्पते च वसुंधरा ।
पर्वताग्राणि वेपन्ते नदन्ति धरणीधराः ।।' —यु० का० ४१/१३

बादल हिंसक जीवों की तरह क्रूर होकर कठोर स्वर में भयंकर गर्जना करते हैं । तथा रक्त से युक्त जल की क्रूरता पूर्वक वर्षा कर रहे हैं—

'मेघाः क्रव्यादसंकाशाः परुषाः परुषस्वराः ।
क्रूराः क्रूरं प्रवर्षन्ते मित्रं शोषितबिन्दुभिः ।।' —यु० का० ४१/१४

लाल चन्दन के समान दिखाई देने वाली सन्ध्या अत्यन्त कठोर हो गयी है तथा सूर्य से जलती हुई अग्नि का पुंज गिर रहा है—

'रक्तचन्दन संकाशा संध्या परमदारुणा ।
ज्वलच्च निपतत्येतदादित्यादग्निमण्डलम् ।।' —यु० का ४१/१५

अप्रशस्त पशु और पक्षी दीन होकर दीनतासूचक स्वर में सूर्य की ओर देखते हुए गर्जना करते हैं, इससे वे बहुत भयानक लगते हैं और महान् भय उत्पन्न करते हैं—

'आदित्यमभिवाश्यन्ति जनयन्तो महदभ्यम् ।
दीना दीनस्वरा घोरा अप्रशस्ता मृगद्विजाः ।।' —यु० का० ४१/१६

इस प्रकार उक्त प्रसंग में अपशकुनों द्वारा भयानक रस की सुन्दर योजना की गयी है ।

भयानक-रस का आलम्बन—कुम्भकर्ण

कुम्भकर्ण, रावण आदि राक्षसों के प्रति कवि की अथवा रामायण महाकाव्य के अध्येता सहृदय की सहानुभूति नहीं है। अतः इन राक्षसों की रूपाकृति एवं कर्मों का जहां-जहां भी वर्णन है, वहां-वहां निश्चय ही 'भय' स्थायी भाव उद्भूत होकर विभाव, अनुभावों आदि से परिपुष्ट होकर भयानक-रस का आस्वादन कराता है। युद्ध के मैदान में तो क्रोधाविष्ट राक्षसों का भयंकर रूप और भी अधिक भयानक हो जाता है। कुम्भकर्ण के रण-क्षेत्र में आते ही वानर-सेना में भगदड़ मच जाती है। छिन्न-भिन्न हुई मेघमाला के समान प्रचण्ड वानर सेना को सम्पूर्ण दिशाओं में भागते हुए देखकर मेघ के समान काला कुम्भकर्ण बड़ी प्रसन्नता के साथ अवयुक्त बादल के समान गम्भीर स्वर में बार-बार गर्जना करने लगता है—

'तद् वानरानीकमतिप्रचण्डं, दिशो द्रवद्भिन्नमिवाभ्रजालम्।
स कुम्भकर्णः समवेक्ष्य हर्षान्ननाद भूयो घनवद्घनाभः॥'
—यु० का० ६५/५५

गगन में बादलों की गर्जना के समान उस राक्षस की घोर गर्जना सुनकर बहुत से वानर जड़ से कटे हुए साल वृक्षों के समान पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं—

'ते तस्य घोरं निनदं निशम्य, यथा निनादं दिवि वारिदस्य।
पेतुर्धरण्या बहवः प्लवंगा, निकृतमूला इव शालवृक्षाः॥'
—यु० का० ६५/५६

उस समय महाकाय कुम्भकर्ण शूल की तरह अपने एक हाथ में विशाल परिध धारण किए हुए है। वह वानर सेना में प्रचण्ड भय उत्पन्न करता हुआ प्रलयकाल में संहार करने वाले कालदण्डों से युक्त भगवान कालरुद्र के समान शत्रुओं का विनाश करने के लिए नगर में बाहर निकल पड़ा है—

'विपुलपरिधवान् स कुम्भकर्णो, रिपुनिधनाय विनिःसृतो महात्मा।
कपिगणभयमाददत् सुभीमं, प्रभुरिव किंकर दण्डवान् युगान्ते॥'
—यु० का० ६५/५७

अपनी नगरी से बाहर आकर पर्वतों को कंपाता और समुद्र को गुंजाता हुआ-सा वह उच्च स्वर से बिजली की गड़गड़ाहट को भी तिरस्कृत करता हुआ गम्भीर गर्जना करने लगा—

'ननाद च महानादं समुद्रमभिनादयन्।
विजयन्निव निर्घातान् विधमन्निव पर्वतान्॥' —यु० का० ६६/२

उस भयानक नेत्रों वाले राक्षसराज को आते देख सभी वानर भय से भाग उठे। भय के कारण उनकी मुख कान्ति फीकी पड़ गयी। कितने ही वानर और

भालू समुद्र में डूब गए, अनेकों ने पर्वतों की गुफाओं का आश्रय लिया। कुछ गिर गये, कुछ एक स्थान पर स्थिर न रह सके, कुछ धराशायी हो गए और कुछ मुर्दों के समान श्वास रोककर पड़ गये—

'ममज्जुरर्णवे केचिद् गुहाः केचित् समाश्रिताः।
निपेतुः केचिद परे केचिन्नैवावतस्थिरे।
केचिद् भूमौ निपतिताः केचित् सुप्ता मृता इव॥'

—यु० का० ६६/१७

इस प्रकार कुम्भकर्ण के विकराल रूप को देखकर उत्पन्न होने वाले भय के अनुभावों एवं व्यभिचारी भावों का सर्वांगीण सुन्दर प्रयोग करने में आदिकवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

यहां पर कुम्भकर्ण आलम्बन विभाव है। उस राक्षस का पर्वताकार विकराल रूप, बादलों के समाम गर्जना, भयानक नेत्रादि, उद्दीपन विभाव हैं। वानरों का जड़ से कटे हुए वृक्षों की भांति भूमि पर गिर पड़ना, भय से भाग जाना, मुख की कान्ति फीकी पड़ जाना, समुद्र में डूब जाना, धराशायी होकर मुर्दों की तरह श्वास लेना आदि अनुभाव हैं। विषाद, दैन्य चिन्ता, आवेग आदि संचारी भावों से परिपुष्ट वानर सेना के अन्तःकरण में स्थित 'भय' स्थायी भाव व्यंग्य है।

भयानक-रस का आलम्बन—रावण

जिस प्रकार कुम्भकर्ण भयानक-रस का सुदृढ़ आलम्बन-विभाव है तथा उसकी क्रूर चेष्टाएं उद्दीपन विभाव के रूप में 'भय' स्थायी भाव को उद्दीप्त करने वाली है। इसी प्रकार राक्षसाधिप रावण से वर्णन के अवसर पर भी भयानक रस की समग्र सामग्री पूर्ण भव्यता के साथ विद्यमान है। ऐसा रावण जिसके नाम-मात्र से समस्त त्रिलोकी कांप उठती थी, देवगण भी संत्रस्त हो जाते थे, पर्वतों के शिखर हिलने लगते थे और समुद्र भी क्षुब्ध हो उठता था, वही रावण सीता के हृदय को वशीभूत करने के लिए एक ओर जहां अनेक प्रकार के प्रलोभन दिखा रहा था, अनुनय विनय करता था, वहां भय के द्वारा भी वह सीता को अपने वश में करने का असफल प्रयत्न कर रहा था। ऐसे प्रसंगों में रावण की क्रूर चेष्टाएं निश्चय ही भयानक-रस की सृष्टि करने वाली थीं।

हितैषी मित्र रावण को समझाने का बहुत प्रयत्न करते हैं। किन्तु जब वह प्रार्थना द्वारा सीता को अपने वश में करने में असफल हो जाता है तो क्रोधित होकर इस प्रकार सीता की ओर दौड़ता है, जैसे कोई क्रूर ग्रह रोहिणी नक्षत्र पर टूट पड़ा हो—

'वार्यमाणः सुसंक्रुद्धः सुहृद्भिर्हितबुद्धिभिः ।
अभ्यधावत् संक्रुद्धः खे ग्रहो रोहिणीमिव ।।' —यु० का० ९२/४५

रावण को अपनी ओर आता हुआ देखकर सीता भय से व्याकुल हो उठती हैं । सीता को ऐसा लगता है मानों यह दुष्ट राक्षस उन्हें मार देगा । यह सोचकर वे विलाप करने लगती हैं—

'तं निशम्य सनिस्त्रिशं व्यथिता जनकात्मजा ।
निवार्यमाणं बहुशः सुहृद्भिरनिर्वतिनम् ।।' —यु० का० ९२/४७

यहां पर रावण आलम्बन विभाव है । उसका विकराल रूप एवं कुपित होकर सीता पर टूट पड़ना उद्दीपन विभाव हैं । सीता का थर-थर कांपते हुए विलाप करना अनुभाव है । विषाद, चिन्ता, दैन्य, आवेगादि संचारी भावों से परिपुष्ट होकर सीता के अन्तःकरण में स्थित 'भय' स्थायी भाव भयानक रस की मार्मिक अभिव्यंजना कर रहा है ।

इस प्रकार भयानक-रस की सांगोपांग योजना में आदिकवि को पूर्ण सफलता मिली है ।

वाल्मीकि रामायण में बीभत्स-रस

यद्यपि रस-सिद्धान्त भारतीय आचार्यों की सूक्ष्म चिन्तन शक्ति का प्रतिफल है और उसकी सुदीर्घ परम्परा है पुनरपि हमारे प्राचीन काव्य-शास्त्र में कुछ रसों की विवेचना में अत्यन्त स्थूल दृष्टि से ही विचार किया गया है । यह स्थूल दृष्टि, बीभत्स-रस के निरूपण में विशेष रूप से परिलक्षित होती है । कारण प्राचीन आचार्यों ने शृंगार-रस का विवेचन अत्यन्त विस्तृत रूप से किया, किन्तु अन्य रसों की ओर उतना ध्यान नहीं दिया । काव्य-शास्त्र में 'बीभत्स' को एक गौण रस माना गया है । कुछ आचार्यों ने तो इसे रस श्रेणी में रखना भी उपयुक्त नहीं समझा[1] ।

भरत मुनि ने 'जुगुप्सा' (घृणा) रूप स्थायी भावात्मक रस को बीभत्स-रस माना है और अहृद्य, अप्रिय, अपवित्र एवं अनिष्ट के देखने, सुनने और उद्वेजन आदि रूप विभावों से उसकी उत्पत्ति बताई है[2] ।

भरत के लक्षण निरूपण तथा परवर्ती आचार्यों के लक्षणों एवं उदाहरणों

---

१. काव्यदर्पण, पृ० २७१

२. अथ बीभत्सो नाम जुगुप्सास्थायिभावात्मकः । स चाहृद्याप्रिय चोष्यानिष्ट श्रवण दर्शनोद्वेजन परिकीर्त्तनादिभिर्विभावैरुत्पद्यते ।
—ना० शा० अभि०, पृ० ३२८

से स्पष्ट प्रकट होता है कि, आचार्यों की दृष्टि क्रमशः अधिकाधिक स्थूल और वस्तुगत होती गयी। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्यों के समक्ष दुर्गन्धयुक्त वस्तुएं, मलिन स्थल, श्मशान आदि के दृश्य ही वीभत्स-रस के आलम्बन-रूप में मुख्यतः रहे होंगे। घृणा के मानसिक रूप का अनुभव सम्भवतः वे नहीं कर सके होंगे। मांस, मज्जा, रुधिर, दुर्गन्ध आदि को ही वीभत्स का उदाहरण बनाने की एक रूढ़ परम्परा ही चल पड़ी। अतएव इनके लक्षणों से अधिकतर वस्तुगत ध्वनि ही निकलती है। फिर भी मानसिक घृणा का सांकेतिक उल्लेख अनजाने ही कहीं-कहीं अवश्य हो गया है।

"आकर्षण और विकर्षण, रुचि और अरुचि तथा प्रेम और घृणा मानव की मूल प्रवृत्तियां हैं। दृश्यमान जगत् की जो वस्तुएं और जो प्राणी हमारे सम्पर्क में आते हैं, उनके प्रति हमारा राग उत्पन्न होता है अर्थात् वे हमें अच्छे लगते हैं, अथवा हमें उनसे घृणा होती है, अर्थात् वे हमें बुरे लगते हैं। प्रेम या राग से हम किसी वस्तु या प्राणी के प्रति आकृष्ट होते हैं, उसमें गुण ढूंढते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं, उसे अपनाने का, पाने का प्रयत्न करते हैं, धिक्कारते हैं, फटकारते हैं, और यहां तक कि उसके विनाश से प्रसन्न होते हैं। मानव-जीवन सरसी में आकर्षण-विकर्षण, राग विराग अथवा प्रेम-घृणा की ये दो विरोधी तथापि समंजसित तरंगें बराबर चलती रहती हैं[1]।"

छोटा-सा शिशु भी किन्हीं वस्तुओं पर चाह की दृष्टि डालता है, तो किन्हीं से स्वतः ही घृणा करने लगता है। अतः किन्हीं बातों में रुचि और किन्हीं में अरुचि मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। हमारी, साभाजिक नैतिक या धार्मिक धारणाओं तथा आदर्शों के अनुकूल आचरण करने वाले व्यक्ति हमें अच्छे लगते हैं, किन्तु उन आदर्शों को तोड़ने वाले, नीति-विरोधी, अत्याचारी, दुराचारी व्यक्ति हमारी घृणा के पात्र बनते हैं। वास्तव में प्रेम और घृणा की अनुभूतियां हमारे देन दिन जीवन की सर्वप्रथम अनुभूतियां हैं। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने भी इन्हें सामान्य भावनाएं बताया है।

प्रेम की तरह घृणा या अजुगुप्सा की भावना भी अत्यन्त प्रबल भाव-वृत्ति है। घृणा में वह शक्ति है कि जिससे जीवन की दिशा ही बदल जाती है। संसार का माया-जाल, इसमें व्याप्त धूर्तता, आडम्बर, झूठ, फरेब, व्यभिचार, अनाचार, स्वार्थ, उत्कोच आदि बुराइयां घुणा को ही जगाती हैं। इससे बहुत बार व्यक्ति का जीवन-क्रम ही बदल जाता है। प्राचीन आचार्यों ने इसे स्थायी-भाव माना और आधुनिक मनोविज्ञान-शास्त्री भी घृणा को स्थायी भाव एवं मानव की मूल-भाव वृत्ति मानते हैं।

---

१. डा० कृष्णदेव झारी—बीमत्स-रस और हिन्दी साहित्य, पृ० ६३

किन्तु घृणा-भाव और बीभत्स-रस का इतना प्राबल्य और महत्व होते हुए भी प्राचीन आचार्यों ने बीभत्स-रस पर विशेष विचार नहीं किया।

वास्तव में वस्तुगत ग्लानि या जुगुप्सा तभी रस दशा को प्राप्त हो सकती है, जबकि वह केवल वस्तुगत या शारीरिक स्थूल वृत्ति न रहकर मानसिक घृणा से सम्बद्ध हो जाती है क्योंकि काव्यानन्द लौकिक अनुभूति नहीं है रसास्वादन हृदय की मुक्त दशा में अर्थात् लौकिक दुःख सुख की भावना से परे होता है। वस्तुगत ग्लानि का अनुभव शारीरिक होने से लौकिक ही माना जायेगा। प्राचीन नाट्य-शास्त्रियों ने रंगमंच पर स्थूल विषयों को दिखाने की जो वर्जना की थी, उसका तात्पर्य यही था कि भोजन, चुम्बन, आलिंगन आदि स्थूल शारीरिक विषयों में कला का विशेष उत्कर्ष सिद्ध नहीं होता। साहित्य कला तो पूर्णरूपेण हृदय धर्म की वस्तु है।

आदिकवि की कविता हृदय की कविता है, उनका प्रत्येक शब्द हृद्गत भावों से डूबकर लिखा गया है, अतः रामायण में बीभत्स-रस की योजना पर विचार करते समय हमें उसके शारीरिक (स्थूल) रूप की अपेक्षा मानसिक (सूक्ष्म) रूप की ओर अधिक ध्यान देना होगा।

राम-कथा में आसुरी भावों पर दैवी भावों की, असत्य पर सत्य की, अधर्म पर धर्म की, अन्धकार पर प्रकाश की विजय का चित्रण करना कवि का मुख्य उद्देश्य रहा है, अतः इसमें अनौचित्य पूर्णकर्मों के प्रति गहन मानसिक घृणा के चित्र यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। साथ ही यह एक युद्ध-प्रधान महाकाव्य है। अतः प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित इस रस के आलम्बन शमशान, शव, चर्बी, रक्त, मांस, रुधिर, मलमूत्र आदि के दृश्य भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। वस्तुतः तो विपक्ष के पात्रों की दुर्दशा का चित्र प्रस्तुत करके कवि ने मानसिक घृणा के भाव को जाग्रत कराके उसे रस-दशा तक पहुंचाने का सफल प्रयास किया है।

बीभत्स-रस का आलम्बन-कैकेयी

राजा दशरथ को अपनी छोटी रानी कैकेयी प्राणों से भी अधिक प्रिय थी, वे उसके द्वारा कभी अनिष्ट की आशंका कर ही नहीं सकते थे, किन्तु जब उसी ने राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास और भरत के लिए अयोध्या का राज्य मांगा तो दशरथ का हृदय घृणा से भर आया और अपनी घृणा प्रकट करते हुए उन्होंने कैकेयी से कठोर शब्दों में कहा—

'धिगस्तु योषितो नाम शठाः स्वार्थपरायणाः।
न ब्रवीभि स्त्रियः सर्वा भरतस्यैव मातरम् ॥'

—अयो० का० १२/१०८

यहां पर कैकेयी बीभत्स-रस का आलम्बन विभाव है। दशरथ के प्रिय पुत्र राम

को वन भेजने की उसकी निन्दनीय क्रिया उद्दीपन-विभाव है। राजा द्वारा कैकेयी को धिक्कारना अनुभाव है। ग्लानि, शंका, विषाद, जड़ता आदि संचारी भावों से परि-पुष्ट दशरथ के हृदय में स्थित 'जुगुप्सा' स्थायी भाव व्यंग्य है।

सुमन्त्र ने शैशवावस्था में राम-लक्ष्मण आदि को अपनी स्नेहमयी गोद में खिलाया था। अतः उनका राम, सीता आदि से विशेष ममत्व था, किन्तु उन्हीं राजकुमारों को कैकेयी के कारण दारुण कष्टों को सहन करने के लिए वन में जाना पड़ रहा था, और उन्हें वन में ले जाने का कठोर कर्म सुमन्त्र को ही करना था, सबके नेत्रों से अश्रुधारायें प्रवाहित हो रही थीं, किन्तु कैकेयी प्रसन्न थी, ऐसे अवसर पर सुमन्त्र के अन्तःकरण में क्रोध और घृणा के भाव जाग उठे। वे कैकेयी के मर्मस्लथों को बिदीर्ण करते हुए अपने हृदय की घृणा प्रकट करते हुए कहते हैं—

'यस्यास्तव पतिस्त्यक्तो राजा दशरथः स्वयम्।
भर्त्ता सर्वस्य जगतः स्थावरस्य चरस्य च॥
नह्यकार्यतमं किंचितिव देवीह विद्यते।
पतिघ्नीं त्वामहं मन्ये कुलघ्नीमपि चान्ततः॥'

—अयो० का० ३५/५, ६

सुमन्त्र अनेक प्रकार से उसकी भर्त्सना करते हैं और कैकेयी की निन्दा करने से भी जब उनका मन शान्त नहीं होता, तब वे कैकेयी की माता को कोसते हुए कहते हैं—

'आभिजात्यं हि ते मन्ये यथा मातुस्तथैव च।
न हि निम्बात् स्रवेत् क्षौद्रं लोके निगदितं वचः॥'

—अयो० का० ३५/१७

न केवल दशरथ और सुमन्त्र अपितु अयोध्या का प्रत्येक व्यक्ति कैकेयी के प्रति घृणा के भावों से ओत-प्रोत है। जब जनकतनया ने वनगमन के पूर्व रेशमी वस्त्रों एवं वहुमूल्य रत्नजटित आभूषणों को उतारकर वल्कल वस्त्र धारण किये तो वशिष्ठ का वत्सल हृदय भी रो उठा, और कैकेयी की भर्त्सना में उनके मुख से सहसा ही यें शब्द निकल पड़े—

'अतिप्रवृत्ते दुर्मेधे कैकेयि कुलपांसनि।
वंचयित्वा तु राजानं न प्रमाणेऽवतिष्ठसि॥' —अयो० का० ३७/२२

कौसल्या क हृदय समुद्र सम गम्भीर था। वे कभी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती थीं, किन्तु जैसे समुद्र भी ज्वार आने पर अपनी मर्यादा को त्याग देता है, उसी प्रकार राजा दशरथ का शव देखकर कौसल्या के संयम का बांध टूट जाता है। कैकेयी के कारण एक ओर उसका प्राणप्रिय पुत्र राम उससे चौदह वर्षों के लिए

बिछुड़ गया था, दूसरी ओर उसके माथे का सौभाग्य-सिन्दूर भी मिट गया था। भारतीय नारी के लिए पति और पुत्र के बिना सारा संसार जीर्णारण्यवत् प्रतीत होता है। अबलाओं का पति या पुत्र ही आश्रय होता है जो दोनों से रहित है, उसका जीवन दुःखाग्नि में ईंधन के समान होता है।

कौसल्या अपने मन की घृणा को रोक नहीं पातीं, ओर कैकेयी से कह उठती हैं—

'भर्त्तारं तु परित्यज्य का स्त्री दैवमात्मनः।
इच्छेज्जीवितुमन्यन्त्र कैकेय्यास्त्यक्त धर्मणः॥
न लुब्धो बुध्यते दोषान् किमाकमिव भक्षयन्।
कुब्जानिमितं कैकेय्या राघवाणां कुलं हतम्॥'
—अयो० का० ६६/५६

भरत की भी राम के प्रति असीम भक्ति थी। ननिहाल से लौटकर आने के पश्चात् जब भरत को दोनों भाइयों एवं भाभी के वनगमन का तथा पिता की मृत्यु का दारुण समाचार सुनने को मिला तो अपनी जन्मदात्री को धिक्कारते हुए वे अपनी घृणा इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

'कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता।
अंगारमुपगुह्य स्म पिता मे नावबुद्धवान्॥
मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शिनि।
सुखं परिहृतं मोहात् कुलेऽस्मिन् कुलपांसनि॥' —अयो०का० ७३/४-५

इस प्रकार कैकेयी वीभत्स-रस का आलम्बन विभाव है। राम को वन भेजने का उसका घृणित कर्म उद्दीपन विभाव है। सुमन्त्र, भरत, कौसल्या आदि के द्वारा उसको धिक्कारना अनुभाव है। ग्लानि, चिन्ता, विषाद आदि संचारी भावों से परिपुष्ट सुमन्त्र, कौसल्या, भरतादि के हृदय में स्थित 'जुगुप्सा' (मानसिक) स्थायी भाव व्यंग्य है।

कैकेयी द्वारा किये गये अत्यन्त घृणित कर्म के प्रति रामकथा के भिन्न-भिन्न पात्रों द्वारा जो प्रबल मानसिक घृणा प्रकट की गई है, इसमें बीभत्स-रस की मार्मिक व्यंजना हुई है। और यह वीभत्स-रस की ऐसी सशक्त योजना है, जो मांस, मज्जा, रुधिरादि को देखकर भी नहीं हो सकती थी।

बीभत्स-रस का आलम्बन—विराध

राक्षसों की विकृत एवं भयावह आकृतियां तथा उनके निन्दनीय कर्म सदा से बीभत्स-रस के आलम्बन और उद्दीपन विभाब माने जाते रहे हैं। राक्षसों का रूप बेडौल और उनके कर्म कुत्सित हुआ करते हैं, भोजन भी अरुचि उत्पन्न करने

वाला मद्य मांसादि होता है । रामायण में अनेक स्थानों पर राक्षसों के वर्णन के प्रसंगों में बीभत्स-रस की शास्त्रानुमोदित सफल व्यंजना की गयी है ।

वन में विचरण करते समय राम-सीता एक नरभक्षी राक्षस देखते हैं, जो पर्वत-शिखर के समान ऊंचा है । वह भयानक और बीभत्स-रस का सशक्त आलम्बन है, उसके वर्णन में कवि ने बीभत्स-रस की सुन्दर अभिव्यक्ति की है—

'गभीराक्षं महावक्त्रं विकटं विक्टोदरम् ।
बीभत्सं विषमं दीर्घं विकृतं घोरदर्शनम् ।।
वसानं चर्म वैयाघ्रं वसार्द्र रुधिरोक्षितम् ।
त्रासनं सर्वभूतानां व्यादितास्यामिवान्तकम् ।।
त्रीन् सिंहांश्चतुरो व्याघ्रान् द्वौ वृकौ पृषतान्दश ।
सविषाणं वसादिग्धं गजस्य च शिरो महत् ।।'

—अर० का० २/५-७

उस राक्षस के विकृत जुगुप्सोत्पादक रूप को देखकर और गर्जना को सुनकर सीता भयभीत हो जाती है ।

यहां पर विराध नामक राक्षस आलम्बन विभाव है । इसका रक्तरंजित, चर्बी से गीला व्याघ्रचर्म धारण करनादि चेष्टायें उद्दीपन विभाव है । राक्षस को देखकर सीता का भयभीत हो जाना अनुभाव है । ग्लानि, चिन्ता, विषाद, आदि संचारी भावों से परिपुष्ट 'जुगुप्सा' स्थायी भाव व्यंग्य है ।

बीभत्स-रस का आलम्बन—शूर्पणखा

शूर्पणखा के चित्रण में कवि ने जहां हास्य-रस की रमणीय योजना की है, वहां भयानक के साथ-साथ बीभत्स-रस भी चर्वणगोचर हो रहा है । शूर्पणखा जैसी अत्यन्त कुरुप महिला का राम जैसे सर्वांग सुन्दर परम रमणीय, महान् वीर, चन्द्रोज्ज्वल, शीलसम्पन्न पुरुष के समक्ष प्रणय-निवेदन करना जुगुप्सा को जागृत करता है ।

कहां तो सुन्दर मुख वाले, सुडौल कटिप्रदेश वाले, विशालाक्ष, स्निग्ध केशों का युक्त, प्रियदर्शन, मधुर भाषी, सौम्य और नवयौवन सम्पन्न, न्यायोचित सदाचार का पालन करने वाले राम और कहां भद्दे मुखवाली बेडौल और लम्बे पेट वाली कुरुप और डरावनें नेत्रों वाली, तांबे जैसे बालों वाली वीभत्स और विकराल, भैरव-नाद करने वाली, क्रूर, वृद्धा—जिसकी प्रत्येक बात कुटिलता से भरी रहती थीं, ऐसी कुरुपा का राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम के समक्ष प्रेम का प्रस्ताव रखना किसी भी सहृदय के अन्तःकरण में रुचि को न उत्पन्न कर, अरुचि ही उत्पन्न करेगा । अतएव यहां बीभत्स-रस की मार्मिक योजना है ।

राम के कहने पर लक्ष्मण तलवार से शूर्पणखा के नाक, कान काट देते हैं। नाक और कान कट जाने पर वह राक्षसी जोर-जोर से चिल्लाती हुई वन में भाग जाती है, उस समय का दृश्य बीभत्स-रस की दृष्टि से दर्शनीय है—

'सा विरुपा महाघोरा राक्षसी शोणितोक्षिता।
ननाद विविधान् नादान् यथा प्रावृषि तोयदः ।।
सा विक्षरन्ती रुधिरं बहुधा घोरदर्शना।
प्रगृह्य बाहू गर्जन्ती प्रविवेश महावनम् ।।'

—अर० का० १८/२३-२४

यहां शूर्पणखा बीभत्स-रस का आलम्बन विभाव है। उसका रक्त से भीगा हुआ शरीर, तथा नाना प्रकार से चीत्कार करना उद्दीपन विभाव है। आवेग, निर्वेद, ग्लानि आदि संचारी-भावों से परिपुष्ट 'जुगुप्सा' स्थायी-भाव व्यंग्य है।

बीभत्स-रस के आलम्बन—राक्षस

राम ने अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा सहस्त्रों निशाचरों को युद्धभूमि में धराशायी कर दिया। उन मृत पिशिताशनों की वहां जो दुर्दशा हुई, वह बीभत्स-रस का परिपोष करने वाली हैं।

राम के बाणों से राक्षसों के कवच, आभूषण और धनुष छिन्न-भिन्न हो गये तथा वे रक्त से लथ-पथ हो पृथ्वी पर गिर पड़े। युद्ध में लहूलुहान होकर भूमि पर गिरे हुए राक्षसों से समस्त रणभूमि उसी तरह पट गई जैसे कुशों से विशाल यज्ञवेदी को ढक दिया जाता है। राक्षसों के वध से उस समय वहां रक्त और मांस की कीचड़ जम गई, जिससे वह महा-भयंकर वन नरक के समान प्रतीत होने लगा—

'तैर्भिन्नवर्माभरणाश्छिन्नभिन्न शरासनाः।
निपेतुः शोणितदग्धा धरण्यां रजनीचराः ।।
तैर्मुक्तकेशैः समरे पतितैः शोषितोक्षितैः।
विंस्तीर्णा वसुधा कृत्स्ना महावेदिः कुशै रिव ।।
तत्क्षणे तु महाघोरं वनं निहतराक्षसम्।
बभूव निरयप्रख्यं मांसशोणित कर्दमम् ।।'

—अर० का० २६/३२-३४

इस प्रकार यहां राक्षस आलम्बन विभाव हैं। उन राक्षसों के रक्तस्नात, शरीर, जो युद्धभूमि में पड़े हुए थे, उद्दीपन विभाव हैं। ग्लानि, निर्वेद आदि संचारी भावों से परिपुष्ट 'जुगुप्सा' स्थायी भाव व्यंग्य है।

सीता की खोज करने के लिए वीर हनुमान राक्षसराज रावण के भवन की

पान-भूमि में भी आ गये । उस मधुशाला का दृश्य भी बीभत्स-रसोत्पादक है ।

वहां मृगों, भैसों और सूअरों के मांस पृथक्-पृथक् रखे हुए थे । सोने के बड़े-बड़े पात्रों में मुर्गे, मयूर, सूअर, गेंडा, साही, हरिणादि के मांस को पवन-पुत्र ने देखा, जो दही और नमक मिलाकर रखे गये थे । वहां कृकल नामक पक्षी, अनेक प्रकार के बकरे, खरगोश, आधे खाये गए भैंसे, एकशल्य नामक मत्स्य और भेड़ें—ये सबके सब पकाकर रखे हुए थे—

'वराहवाघ्रीणसकान् दधिसौवर्चलायुतान् ।
शल्यान् मृगमयूरांश्च हनुमानन्ववैक्षत ॥
कृकलान् विविधांश्छागा छशकानर्धभक्षितान् ।
महिषानेकशल्यांश्च मेषांश्च कृततिनष्ठितान् ॥'

—सु० का० ११/१६-१७

हनुमान ने लंका में अनेक प्रकार की राक्षसियों को भी देखा जो बीभत्स-रस का आलम्बन थीं और उनकी कुत्सित चेष्टायें उद्दीपन का कार्य कर रही थीं। और उनके उद्‌बुद्ध भावों को वाह्य रूप से प्रकट करने वाले अनुभाव भी यहां स्पष्ट रूप से मुखरित हुए हैं, जिनसे जुगुप्सा स्थायी भाव परिपुष्ट होकर बीभत्स-रस की व्यंजना करता है ।

उन राक्षसियों में किसी के कान और ललाट बड़े-बड़े थे तो किसी के पेट ओर कुच विशाल थे । किसी के ओंठ वड़े होने के कारण लटक रहे थे तो किसी के ठोड़ी में ही सटे हुए थे । किसी का मुख का बड़ा था और किसी के घुटने । कोई नाटी थी, तो कोई लम्बी । कोई कुवड़ी, कोई टेढ़ी-मेढ़ी, कोई वौनी, कोई विकराल, कोई टेढ़े मुख वाली तो कोई पीली आंख वाली, और कोई विकृत आंख वाली थी । अनेक राक्षसियां विकृत शरीर वाली, काली-पीली, क्रोध करने वाली और कलहप्रिय थीं । उन सबने काले लोहे के बने हुए वड़े-वड़े शूल और मुद्‌गर धारण कर रखे थे—

'लम्बकर्ण ललाटां च लम्बोदरपयोधराम् ।
लम्बोष्ठीं चिबुकोष्ठीं च लम्बास्यां लम्बजानुकाम् ॥
ह्रस्वां दीर्घा च कुब्जां च विकटां वामना तथा ।
करालां भुग्नवक्त्रां च पिंगाक्षीं विकृताननाम् ।
कालायसमहाशूलकूटमुद्‌गर धारिणीं ॥'

—सु० का० १७/७-६

युद्ध काण्ड में वानरों और राक्षसों के युद्ध में स्थान-स्थान पर ऐसे वर्णन हैं, जिनमें राक्षसों के शरीर से प्रवाहित होते हुए रक्त का, तथा उनके छिन्न-भिन्न अंगों का उल्लेख है, जो जुगुप्सा उत्पन्न करके बीभत्स-रस की पुष्टि करते हैं ।

वज्र, दंष्ट्र और अंगद के घमासान युद्ध में किन्हीं के सिर फूटे, किन्हीं के हाथ और पैर कट गये और अनेक वीरों के शरीर रक्त से नहा गये। वानर और राक्षस दोनों धराशायी हो गये। उन हर कङ्क, गीध और कौए टूट पड़े तथा गीदड़ों की जमाते छा गयीं। वहां पर जिनके मस्तक कट गये थे, ऐसे धड़ सब ओर उछलने लगे, योद्धाओं की कटी हुई भुजाएं, हाथ, सिर तथा शरीर के मध्य भाग पृथ्वी पर छा गये—

'हरयो राक्षसाश्चैव शेरते गांसमाश्रिता।
कङ्क गृध्रवलाढ्याश्च गोमायुकुलसंकुलाः॥
कवन्धानि समुत्पेतुर्भीरुमणां भीषणानि वे।
भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्न कायाश्च भूतले॥' —यु०का० ५४/९-१०

इसी प्रकार नील और प्रहस्त के युद्ध का जो मार्मिक चित्रण किया है, उसमें रूपक अलंकार के माध्यम से किया गया बीभत्स रस का चित्र दर्शनीय है—

'रक्त के प्रवाह से आच्छादित हुई वह युद्ध भूमि बैसाख मास में खिले हुए पलाश वृक्षों से आच्छादित वन्य-भूमि के समान प्रतीत होती थी। मारे गये वीरों की लाशें ही उसके दोनों किनारे थे। रक्त का प्रवाह ही महान जलराशि थी। टूटे-फूटे अस्त्र-शस्त्र, तटवर्ती विशाल वृक्ष थे जो यमलोक रूपी सागर से जाकर मिली हुई थी। सैनिकों के यकृत् और प्लीहा जिसके महान् कीचड़ थे। निकली हुई आतें जहां से वार का काम देती थीं। कटे हुए मस्तक और कबन्ध जहां मत्स्य से जान पड़ते थे। शरीर के छोटे-छोटे अवयव एवं केश जिसमें घास-से प्रतीत होते थे। जहां गीध ही हंस बनकर बैठे थे। कंक रूपी सारस जिसका सेवन करते थे। मेदे ही फेन बनकर जहां सब ओर फैले थे। पीड़ितों की कराह जिसकी कल-कल ध्वनि थी—

'सा मही रुधिरौघेण प्रच्छन्ना सम्प्रकाशते।
संछन्ना माधवे मासि पलाशैरिव पुष्पितैः॥
हतवीरौघवप्रां तु भग्नायुधमहाद्रुमाम्।
शोणितौघमहातोयां यमसागरगामिनीम्॥'
'यकृत्प्लीहमहापंकां विनिकीर्णान्त्रशैवलाम्।
भिन्नकायशिरोमीनामंगावयव शाद्वलाम्॥
गृध्रहंसवराकीर्णा कंक सारससेविताम्।
मेदः फेन समाकीर्णामार्त्रस्तनिततनिः स्वनाम्॥'

—यु० का० ५८/२८-३१

यद्यपि वाल्मीकि ने कहीं पर भी यत्नपूर्वक साहित्य शास्त्रीय दृष्टिकोण से रस अथवा अलंकारों के प्रयोग की चेष्टा नहीं की है, किन्तु सहज रूप से ही पदे-पदे

रसों की मन्दाकिनी प्रवाहित होती हुई दृष्टिगोचर होती है। यह जो नदी के रूपक द्वारा बीभत्स रस का विभाव, अनुभावों एवं संचारी भावों से युक्त हृदय-ग्राही चित्र आदि कवि ने प्रस्तुत किया है, वह वाल्मीकि जैसे रससिद्ध कवि के द्वारा ही सम्भव था।

बीभत्स-रस का आलम्बन-कुम्भकर्ण

कुम्भकर्ण बीभत्स एवं भयानक रस की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। उसका पर्वत-सम विशाल शरीर जहां मन में भय उत्पन्न करता है, वहां उसके विकृत अंग और उसकी विकृत चेष्टायें बीभत्स-रस को पुष्ट करने वाली हैं। कुम्भकर्ण का वर्णन कवि ने जी भर कर किया है।

उसकी दोनों भुजायें नागों के शरीर और पर्वत शिखरों के समान थीं। अपनी दोनों भुजाओं और मुख को फैलाकर जम्हाई लेते हुए उस राक्षस का मुख बड़वानल के समान विकराल प्रतीत होता था—

'स नाग भोगाचलशृंगकल्पौ,
विक्षिप्य बाहू जितवज्रसारौ।
विवृत्य वक्त्रं बडवामुखाभं,
निशाचरोऽसौ विकृतं जजृम्भे॥' —यु० का० ६०/५७

जब उसके खाने के लिए अनेक प्रकार की वस्तुएं प्रचुर मात्रा में रखी गयीं तो वह महाबली राक्षस थोड़ी ही देर में बहुत से भैंसों और सूअरों को खा गया। उसे बहुत भूख लगी हुई थी। अतः उसने भर पेट मांस खाया और अपनी प्यास बुझाने के लिए रक्तपान किया तत्पश्चात् उसने चर्बी से भरे हुए बहुत से घड़े साफ कर दिये और वह कई घड़े शराब भी पी गया—

'आदद् बुभुक्षितो मांसं शोणितं तृषितोऽपिवत्।
मेदः कुम्भांश्च मद्यांश्च पपौ शक्ररिपुस्तदा॥'—यु० का० ६०/६३

जब महाबली कुम्भकर्ण लंका नगरी से बाहर निकलकर वानर सेना को युद्ध भूमि में अपना आहार बना रहा था, उस समय के वर्णन में वीर एवं भयानक रसों के साथ-साथ बीभत्स रस की भी सुन्दर योजना दिखाई देती है—

उस समय कुम्भकर्ण को भूख सता रही थी। अतः वह रक्त और मांस भक्षण के लिए लालायित हो रहा था। उसने वानर सेना में प्रवेश करके वानरों और भालुओं के साथ-साथ निशाचरों और पिशाचों को भी खाना प्रारम्भ कर दिया—

'बुभुक्षितः शोणितमांसगृध्नुः,
प्रविश्य तद् वानरसैन्यमुग्रम्।

चखाद रक्षांसि हरीन् पिशाचा-
न्नृक्षांश्च मोहाद् युधि कुम्भकर्णः ।।' —यु० का० ६७/९४

वह महाबली राक्षस पर्वत-शिखरों की मार खाता हुआ भी मुंह से वानरों की चर्बी और रक्त गिराता हुआ उन सबको खा रहा था—

'सम्प्रस्रवंस्तदा मेदः शोणितं च महाबलः ।
वध्यमानो नगेन्द्राग्रैर्भक्षयामास वानरान् ।।' —यु० का० ६७/९६

उसका शरीर मेद, चर्बी, और रक्त से लिपटा हुआ था। उसके कानों में आंतों की मालायें उलझी हुई थीं। तथा उसकी दाढ़े बहुत तीखी थीं—

'मेदोवसाशोणितदिग्धगात्रः ।
कर्णावसक्तग्रथितान्त्रमालः ।।' —यु० का० ६७/९९

युद्ध के मैदान में राम ने कुम्भकर्ण को जिस जुगुप्सित रूप में देखा वह तो बीभत्स-रस को और भी अधिक सशक्त रूप में व्यक्त कर रहा है—

वह राक्षस जिह्वा के द्वारा रक्त से भीगे हुए जवड़े चाट रहा है और प्रलय-काल के संहारकारी यमराज की भाँति वानरों की सेना को रौंद रहा है—

'जिह्वया परिलिह्यन्तं सृक्विणी शोणितोक्षिते ।
मृद्गन्तं वानरानीकं कालान्त्यकयमोपपम् ।।'
—यु० का० ६७/१४०

यहां पर कुम्भकर्ण आलम्बन विभाव है। उसकी शरीर-रचना तथा चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं। उसको देखकर राम द्वारा उसके घृणित रूप का वर्णन करना अनुभाव है। आवेद, निर्वेद, ग्लानि आदि संचारी भावों से परिपुष्ट जुगुप्सा स्थायी भाव व्यंग्य है।

इस प्रकार रामायण में बीभत्स-रस के सुन्दर-सुन्दर चित्र यत्र-तत्र बिखरे हुए दिखाई देते हैं। यह रस अधिकांशतः भयानक एवं वीर-रस के आश्रित हैं, किन्तु कहीं-कहीं पर स्वतंत्र रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। मानसिक एवं शारीरिक दोनों प्रकार की घृणा उत्पन्न करके बीभत्स रस का परिषोष करने वाले प्रसंग इस महा-काव्य में विद्यमान हैं।

वाल्मीकि-रामायण में अद्भुत-रस

महाकाव्य में शृंगार, वीर एवं करुणादि के समान अद्भुत रस का स्थान भी महत्वपूर्ण माना गया है। जैसे, अनेक विद्वानों ने शृंगार-रस को रसराज के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित किया है, जैसे, बहुतों ने 'एको रसः करुण एव' कहकर करुण रस की प्रधानता प्रतिपादित की है। उसी प्रकार अद्भुत रस को भी कतिपय

विद्वानों ने काव्य में मुख्य रस माना है। आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में अपने पूर्वज विद्वत् प्रवर 'नारायण' के मत का उल्लेख करते हुए अद्भुत रस को सर्वप्रधान माना है[1]।

वस्तुतः कोई भी महाकाव्य केवल ऐतिहासिक घटनाओं का लेखा-जोखा ही प्रस्तुत नहीं करता है अपितु प्रतिभाशाली कवि अपनी नवनवोन्मेषणशालिनी प्रतिभा के द्वारा सुन्दर-सुन्दर कल्पनाओं की योजना कर काव्य में चारुता का आधान किया करते हैं। प्रबन्धकाव्य एवं नाटकादि में अनेक प्रकार की लोककथाओं का भी आधार रहता है, जिनमें विचित्र घटनाओं, पदार्थों एवं पात्रों का भण्डार भरा रहता है और उनके द्वारा ही अद्भुत रस की सृष्टि होती है।

रामायणी कथा में इतिहास एवं जनश्रुति दोनों तत्वों का मणिकांचन संयोग है। सत्य और कल्पना का सुन्दर समन्वय है।

रामायण के नायक राम के विषय में हमारे भारतवर्ष में अनेक प्रकार की धारणायें व्याप्त हैं, जिनमें अनेक धारणायें अत्यन्त विस्मयजनक हैं। अनेक विद्वानों ने राम को भगवान विष्णु का अवतार मानते हुए अनेक प्रकार की अलौकिक क्रियाओं का निरूपण उनके चरित्र में किया है।

पण्डितों का एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा भी है, जो उन्हें विष्णु का अवतार न मानते हुए भी विस्मयजनक कृत्यों का केन्द्र माना है। रामकथा के उत्तरोत्तर विकास के साथ पुराणों के प्रभाव और अवतारवाद के कारण इसमें अलौकिकता एवं रहस्य के रूप में अद्भुत तत्व की बहुत वृद्धि हुई है।

अतः राम जैसा लोकोत्तर चमत्कार जनक चरित्र जिस महाकाव्य का नायक हो, जगद्वन्द्या दिव्यगुण सम्पन्नता सीता जिसकी नायिका हो, वीर हनुमान जैसे स्वामी-भक्त, लक्ष्मण और भरत जैसे भातृभक्त, महान् वीर जिस कथा के प्रमुख पात्र हों, उस महाकाव्य में यत्र-तत्र अद्भुत रस की सरिता का प्रवाहित होना-स्वाभाविक ही है।

अद्भुत रस के साथ अतिशयोक्ति अलंकार का स्वाभाविक सम्बन्ध रहा है। और जैसे रसों में अद्भुत को उसी प्रकार अलंकारों में भी कुछ विद्वान अतिशयोक्ति को महत्वपूर्ण मानते हैं[2]।

---

१. 'रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्युभूयते तच्चमत्कार सारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतो रसः। तस्मादद्भुत्मेवाह कृती नारायणः स्वयम्।'
— सा० द० पृ० ८२।

२. 'द नम्बर आफ रसाज', पृ० १७२।

आचार्य भरत ने अद्भुत रस की उत्पत्ति वीर रस से मानी है[१]।

इसका तात्पर्य यही है कि वीरतापूर्ण कर्म चाहे वे शरीर बल के द्योतक हों और चाहे मानसिक बल अर्थात् साहस और संकल्प शक्ति के द्योतक हों अथवा विविध शस्त्रास्त्र के प्रयोग की निपुणता और व्तायामविद्या से सम्बन्धित हों, लोक-हृदय को चमत्कृत करते हैं। उनमें असाधारणता और लोकोत्तरता दृष्टि-गोचर होती है और इस चमत्कार के दर्शन से हृदय का प्रसार होता है[२]।

ऐसे ही कर्मों का जब अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया जाता है, यहां तक कि उनमें प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन दिखाई पड़ता है, तब वे अतिप्राकृत कहे जाते हैं।

वाल्मीकि-रामायण में अद्भुत-रस की यही सीमा है। इसमें नर, वानर और राक्षसों की वीरता के अनेकानेक आश्चर्यजनक कृत्य हैं। अतः अद्भुत रस प्रायः वीर के आश्रित हैं। कहीं-कहीं पर भयानक, हास्य और बीभत्स के साथ भी अद्भुत रस का सम्वन्ध विद्यमान है।

अद्भुत घटनाओं को देखकर सदैव आनन्दज विस्मय ही उत्पन्न होता हो, ऐसा नहीं है। कभी-कभी भयोत्पादक आश्चर्य भी हो सकता है और कभी वैचित्र्य के कारण हास्य अथवा जुगुप्सा भी हो सकता है[३]।

रामायण में अद्भुत रस कहीं अंगी रूप में तो कहीं अंग रूप में प्रयुक्त दिखाई देता है। आगे चलकर रामकथा में अद्भुत रस का इतना अधिक विस्तार हुआ कि अद्भुत रामायण जैसी रचनाएं भी की गयीं।

राम-जन्म का मूल रामायण में कोई उल्लेख नहीं था और उसका आरम्भ यौवराज्याभिषेक प्रसंग से ही माना जाता है। किन्तु यदि बालकाण्ड को प्रक्षिप्त न माना जाये तो इसमें अद्भुत रस के अनेक सुन्दर-सुन्दर प्रसंग दृष्टिगोचर होते हैं। पुत्रेष्टि-यज्ञ, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं की उपस्थिति, अवतार चर्चा, दिव्य पायस आदि के प्रसंग अलौकिक होने से 'विस्मय' स्थायी भाव को जागृत कर 'अद्भुत' रस का आनन्द प्रदान करते हैं।

धर्नुभंग-प्रसंग में अद्भुत-रस

राम द्वारा धर्नुभंग किये जाने के अवसर पर आश्चर्य की अनुभूति होती है।

---

१. 'वीराच्चैवादमुतोत्पत्तिः' नाट्यशास्त्र, ६/३९

२. 'चमत्कारश्चितविस्ताररूपो विस्मयापरपर्यायः'

—सा० द० ३/३ के बाद की टिप्पणी

३. 'दोषेक्षणादिभिर्गर्हाजुगुप्साविस्मयोद्भवाः' —सा० द० ३/१७९

अनेक बलशाली वीर जिस धनुष को हिला भी नहीं सके थे, उसको हाथ में लेकर प्रत्यंचा चढ़ाकर इस प्रकार खींचना कि धनुष के मध्य में दो टुकड़े हो जायें, कितना विस्मयोत्पादक वीर कर्म है—

'आरोपयित्वा मौर्वी च पूरयामास तद्धनुः ।
तद् बभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशाः ॥' —बा० का० ६७/१७

जब वह धनुष टूटता है तो उससे वज्रपात के समान ऐसी भयानक ध्वनि होती है मानों पर्वत फट गया हो । विश्वामित्र, जनक, राम और लक्ष्मण को छोड़कर अन्य सभी वहां उपस्थित जन मूच्छित हो जाते हैं । जनक राम की इस अद्‌भुत वीरता की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं—

'तस्य शब्दो महानासीन्निर्घातसमनिस्वनः ।
भूमिकम्पश्च सुमहान् पर्वतस्येव दीर्यतः ॥
निपेतुश्च नराः सर्वे तेन शब्देन मोहिताः ।
वर्जयित्वा मुनिवरं राजानं तौ च राघवौ ॥'

—बा० का० ६७/१८-१९

यहां पर राम आलम्बन विभाव हैं । उनका धनुष के दो टुकड़े कर देना उद्दीपन विभाव है । राजा जनक का प्रसन्न होना अनुभाव है । हर्ष, उत्सुकता आदि संचारी भावों से परिपुष्ट राजा जनक के हृदय में स्थित 'विस्मय' स्थायी-भाव व्यंग्य है ।

भरद्वाज के आतिथ्य में अद्‌भुत-रस

हमारे प्राचीन साहित्य में ऋषि महर्षियों की अद्‌भुत दिव्य शक्तियों का विस्तार से उल्लेख किया गया है । वे अपनी कठोर एवं दीर्घ तपस्या से ऐसी शक्ति प्राप्त कर लेते थे, कि संसार के दुर्लभ से दुर्लभ पदार्थ संकल्प करते ही उन्हें प्राप्त हो जाते थे । उनके लिए कुछ भी अप्राप्य नहीं था । ऐसे महर्षियों में भरद्वाज मुनि का नाम अत्यन्त गौरवपूर्ण स्मरण किया जाता है । वे त्रिकालदर्शी थे, और राम तथा भरतादि से उनका अटूट स्नेह सम्बन्ध था । भरत विशाल सेना के साथ राम की खोज करते हुए जब भरद्वाज ऋषि के आश्रम पर पहुंचते हैं, तब भरद्वाज मुनि ने इतनी विशाल सेना का जो दिव्य स्वागत किया, वह प्रसंग एक ऋषि की योग-सिद्धि, और ऋद्धि-सिद्धियों पर अधिकार का चमत्कारिक चित्र है । भरद्वाज ऋषि, विश्वकर्मा, त्वष्टा, इन्द्र, यम, वरुण आदि देवताओं, विभिन्न नदियों, देव, गन्धर्वों आदि का आह्वान करते हैं, कि संसार के सभी स्वागत करने योग्य आवासादि तथा उत्तमोत्तम भोज्य, पेय पदार्थ वहां उपस्थित हो जायें ।

और कितना सुखद आश्चर्य कि ऋषि के आह्वान करते ही सभी देवता एक-

एक करके वहां पहुंच जाते हैं। स्पर्श सुखद हवाएं बहने लगती हैं, मेघ दिव्य पुष्पों की वर्षा करने लगते हैं। अप्सरायें नृत्य करने लगती हैं, सब ओर वीणा की स्वर-लहरियां फैल जाती हैं[1]।

चारों ओर पांच योजन तक की भूमि स्वयं समतल हो जाती है, उस पर नीलम और वैदूर्य मणि के समान नाना प्रकार की घनी घास सुशोभित हो रही है। उत्तर कुरु वर्ष से दिव्य भोग सामग्रियों से सम्पन्न चैत्ररथ नामक वन भी वहां आ जाता है। वहां की रमणीय नदियां भी आ पहुंचती हैं—

'बभूव हि समा भूमिः समन्तात् पञ्चयोजनम्।
शाद्वलैर्बहुभिश्छन्ना नीलवैदूर्यसंनिभैः॥'
—अयो० का० ९१/२९

उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्च वनं दिव्योपभोगवत्।
आजगाम नदी सौम्या तीरजैर्बहुभिर्वृता॥'
—अयो० का० ९१/३१

राजपरिवार के लिए बना हुआ सुन्दर द्वार से युक्त दिव्य भवन श्वेत बादलों के समान सुशोभित हो रहा है। उसे श्वेत पुष्पों की मालाओं से सजाया गया है और दिव्य सुगन्धित जल से खींचा गया है—

'सितमेघनिभं चापि राजवेश्म सुतोरणम्।
शुक्ल माल्यकृताकारं दिव्यगन्धसमुक्षितम्॥' —अयो० का० ९१/३३

इस प्रकार क्षण भर में ऋषि-आश्रम उत्तम राज-निवास में परिणत हो जाता है और समस्त अवध-समाज विस्मय से अवाक् रह जाता है। भरत की सारी सेना वहां आनन्दमग्न है। भरत के साथ आये हुए हजारों मनुष्य वहां का वैभव देखकर हर्ष के मारे फूले नहीं समाते हैं और जोर-जोर से कहते हैं—

'नैवायोध्यां गमिष्यामो न गमिष्याम दण्डकान्।
कुशलं भरतस्यास्तु रामास्यास्तु तथा सुखम्॥'
—अयो० का० ९१/५९

'सम्प्रहृष्टा विनेदुस्ते नरास्तत्र सहस्रशः।
भरतस्यानुयातारः स्वर्गोऽयमिति चाब्रुवन्॥'
—अयो० का० ९१/६१

सचमुच महर्षि भरद्वाज द्वारा सेना सहित भरत का किया हुआ यह

---

१. अयो० का० ९१/१२-२६

अनिर्वचनीय आतिथ्य सत्कार अद्भुत और स्वप्न के समान है, जिसे देखकर सब आश्चर्यचकित हो उठते हैं।

यहां पर ऋषि भरद्वाज अद्भुत रस के आलम्बन विभाव हैं। उनके प्रभाव से उस वन में संसार के सभी उत्तमोत्तम भोग्य-पदार्थों का उपस्थित हो जाना उद्दीपन विभाव है। भरत के सैनिकों का हर्ष के मारे फूला न समाना, नाचना, गाना और स्वादिष्ट पदार्थों का सेवन करना, उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र कहीं पर भी न जाने की इच्छा प्रकट करना आदि अनुभाव हैं। इस प्रकार चंचलता, हर्ष, उत्सुकता, आदि संचारी भावों से परिपुष्ट सैनिकों और अयोध्यावासियों के अन्तःकरणों में स्थित 'विस्मय' स्थायीभाव व्यंग्य है।

रामायण में अनेक ऐसे प्रसंग हैं, जिनमें हमने वीर-रस माना है, किन्तु उन्हीं में बहुत से महायुद्धों में वीर-रस के साथ अद्भुत-रस भी क्रीड़ा करता हुआ दिखाई देता है। राक्षसों के युद्ध से समय किए गए कर्म जहां भयोत्पादक है, वहां वे उसी अनुपात में विस्मय की सृष्टि भी करते हैं। राम, लक्ष्मण, हनुमानादि के वीर-कर्मों में तो स्थान-स्थान पर आश्चर्य की उत्पत्ति होती ही है। खरदूषण को चौदह हजार सेना के साथ पल भर में नष्ट कर देना वीर-रस की अपेक्षा अद्भुत-रस का ही उदाहरण कहा जाएगा।

अद्भुत-रस का आलम्बन—कांचन मृग

कंचन-मृग का प्रसंग रामायण में अद्भुत-रस का सुन्दर उदाहरण है। सीता उसके सुन्दर रूप को देखकर मुग्ध हो जाती है। और उसे प्राप्त करने के लिए उनका हृदय अत्यधिक उत्कण्ठित हो उठता है। न केवल सीता अपितु उसके मधुर रूप पर राम भी मोहित हो जाते हैं। कवि ने राम के मुख से उस स्वर्ण-मृग का मनोहारी रूप वर्णन इस प्रकार कराया है—

'प्रतिलोमानुलोमाश्च रुचिरा रोमराजयः।
शोभन्ते मृगमात्रित्यचित्राः कनकबिन्दुभिः॥
पश्यास्य जृम्भमाणस्य दीप्तामग्निशिखोपमाम्।
जिह्वां मुखान्निःसरन्तीं मेघादिव शहहृदाम्।
मसारगल्वर्कमुखः शंखमुक्तानिभोदरः।
कस्य नामानिरुप्योऽसौ न मनो लोभयेन्मृगः।
कस्य रूपमिदं दृष्ट्वा जाम्बूनदमयप्रभम्।
नानारत्नमयं दिव्यं न मनो विस्मयं व्रजेत्॥'

—अर० का० ४३/७-३०

यहां पर चित्र विचित्र स्वर्ण मृग आलम्बन विभाव है। उसका अत्यधिक

सुन्दर रूप उद्दीपन विभाव है। राम द्वारा उसके सुन्दर रूप की मुक्तकंठ से प्रशंसा तथा उसको प्राप्त करने की प्रबल इच्छा 'अहो' इत्यादि वचन अनुभाव हैं। चंचलता, हर्ष, आवेग, उत्सुकता आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट राम के अन्तःकरण में स्थित 'विस्मय' स्थायी भाव व्यंग्य है।

अद्भुत-रस के आलम्बन—हनुमान

हनुमान द्वारा लंका में जाकर सीता की खोज के लिए किया गया समुद्र-लंघन तथा समुद्र-लंघन से पूर्व जाम्बवन्त द्वारा हनुमान की वीरता को जागृत करने के लिए बाल्यावस्था में किए गए विस्मयजनक कर्मों के कथन में अद्भुत रस की सुंदर छटा दिखाई देती है। जाम्बवन्त कहते हैं—

'अभ्युत्थितं ततः सूर्यं बालो दृष्ट्वा महावने।
फलं चेति जिघृक्षुस्त्वमुत्प्लुत्याभ्युत्पतो दिवम् ॥'
—कि० का० ६६/२१

छोटे से शिशु का सूर्य को फल समझकर प्राप्त करने की अभिलाषा से आकाश में उछल पड़ना वस्तुतः अत्यन्त विस्मयोत्पादक है, अतएव यहां पर अद्भुत रस की अनुभूति हो रही है।

सागर-लंघन के वर्णन में कवि प्रकृति की यवनिका हटाकर मंच पर एक अद्भुत दृश्य उपस्थित कर देते हैं। समुद्र को लांघने की इच्छा से हनुमान अपने शरीर को बहुत विशाल कर देते हैं और अपनी दोनों भुजाओं तथा चरणों से उस पर्वत को दबा देते हैं, कपिवर द्वारा दबाये जाने पर वह पर्वत कांप उठता है और जल के स्रोत बहाने लगता है, मानो कोई मदमत्त गजराज अपने गण्डस्थल से मद-धारा प्रवाहित कर रहा हो—

'तेन चोत्तमवीर्येण पीड्यमानः स पर्वतः।
सलिलं सम्प्रसुस्राव मदमत्त इव द्विपः ॥' —सु० का० १/१४

पर्वत पर इस प्रकार की हलचल होने से उस पर रहने वाले विद्याधरादि अपनी रमणियों के साथ आकाश में चले जाते हैं और चकित से होकर वहां खड़े हो जाते हैं। महर्षि, चारण और सिद्ध भी हनुमान के अद्भुत कर्म को देखने के लिए वहां उपस्थित थे। हनुमान ने अपनी विशाल भुजाओं को पर्वत पर जमाया। ऊपर के अंगों को संकुचित कर लिया, नेत्रों को ऊपर उठाया और प्राणों को हृदय में रोककर पैरों को भी जमाया और विघ्न-बाधाओं का विचार न करते हुए छलांग लगा दी। हनुमान महासागर की तरंग-मालाओं को अपने वक्षःस्थल से चूर-चूर करते हुए जा रहे हैं और देव गन्धर्व चारण पुष्पवर्षा कर रहे हैं—

'प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा प्लवगं त्वरितं तदा ।
ववृषुस्तत्र पुष्पाणि देवगन्धर्वचारणाः ॥' —सु० का० १/८३

हनुमान, राम का महान् कार्य सिद्ध करने के लिए जा रहे हैं, यह सेवा का उत्तम अवसर जानकर समुद्र ने अपने जल में छिपे हुए सुवर्णमय मैनाक पर्वत से निवेदन किया और उस प्रार्थना को सुनकर वह हेमाच्छादित पर्वत पवनतनय के सम्मुख प्रकट हो गया । हनुमान उस गिरि का आतिथ्य ग्रहण करके आकाश में बहुत ऊपर उठकर देवों, सिद्धों और महर्षि गणों को आश्चर्यचकित करते हुए आकाश में आगे चल पड़े । उसी समय हनुमान की परीक्षा लेने के लिए देवता, गन्धर्व, सिद्ध आदि के द्वारा प्रेरित किए जाने पर नागमाता सुरसा विकराल रूप धारण करके अपना विशाल मुंह फैलाकर हनुमान का मार्ग रोककर खड़ी हो गयी । हनुमान उससे बहुत अनुनय-विनय करते रहे किन्तु वह न मानी और अपना मुंह योजनों बड़ा बनाती रही उसी अनुपात में कपिश्रेष्ठ भी अपने शरीर को बढ़ाते रहे, उसी समय वायु पुत्र ने क्षण भर में अपने शरीर को संकुचित कर तथा अंगूठे के बराबर होकर इसके मुख से तत्क्षण बाहर निकलकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया । आवश्यकतानुसार कभी वे अपने शरीर को अत्यन्त विशाल बना लेते थे और कभी बहुत सूक्ष्म बनाकर सबको आश्चर्य में डुबो देते थे । इस प्रकार हनुमान ने अपने विविध आश्चर्यजनक कर्मों द्वारा सभी को विस्मय-सागर में डुबोकर अद्भुत-रस की रमणीय सृष्टि की है ।

इस प्रकार रामायण में अद्भुत रस के विषय लोकोत्तर और कहीं-कहीं अतिप्राकृत कृत्य हैं ।

राक्षसों के मायावी कर्मों में अद्भुत-रस

मायातत्व के आश्रित अद्भुत-रस की परम्परा का उद्गम भी वाल्मीकि-रामायण में दिखाई देता है । राक्षसों के युद्धों में स्थान-स्थान पर मायातत्व विद्यमान है, वे युद्ध करते-करते छिप जाते हैं, और पुनः अन्य रूप धारण करके प्रकट हो जाते हैं । राक्षसों को मायावी शक्ति द्वारा विविध रूप धारण करने में क्षणभर का समय भी नहीं लगता, और वे अपने मायावी रूपों द्वारा सबको आश्चर्यचकित कर देते हैं । रावणपुत्र मेघनाद मायायुद्ध में अतीव निपुण है, वह युद्ध के समय माया से धूमजीनत अन्धकार की सृष्टि करके आकाश को ढक देते हैं । कुहरे का अन्धकार फैलाकर समस्त दिशाओं को भी व्याप्त कर देते हैं—

'स हि धूमान्धकारं च चक्रे प्रच्छादयन्नभः ।
दिशश्चान्तर्दधे श्रीमान् नीहारतमसा वृतः ॥' —यु० का० ८०/२५

उसकी प्रत्यंचा की टंकार नहीं सुनाई देती, पहियों की घर्घराहट तथा घोड़ों

की टाप की आवाज भी कानों में नहीं पड़ती और सब ओर विचरण करते हुए उस राक्षस का रूप भी किसी को दृष्टिगोचर नहीं होता—

'नैव ज्यातलनिर्घोषो न च नेमिखुरस्वनः ।
शुश्रुवे चरतस्तस्य न च रूपं प्रकाशते ।।' —यु० का० ८०/२६

वह युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए बनावटी सीता का वध कर देता है—

'तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं च ताम् ।
शितधारेण खड्गेन निजधानेन्द्रजित् स्वयम् ।।'
—यु० का० ८१/२६

रावण द्वारा मायारचित राम का कटा मस्तक दिखाकर सीता को मोह में डालने का किया गया प्रयास भी रामायण में अलौकिकता विषयक अद्भुत-रस का सुन्दर उदाहरण है ।

रामायण में अनेकानेक पात्र और पदार्थ भी कौतूहल तथा विस्मय की प्रेरणा देने वाले हैं । जो कहीं तो अद्भुत रस के परिपाक में सहायक होते हैं, कहीं भयानक और बीभत्स के और कहीं रस की सृष्टि न करते हुए भी केवल विस्मय भाव को स्फुरित करते हैं ।

अद्भुत-रस का आलम्बन—कुम्भकर्ण

कुम्भकर्ण एक ऐसा पात्र है, जिसकी प्रकृति, जिसका शयन, जागरण, खान-पान, वेशभूषा आदि सभी कुछ अत्यन्त विस्मयोत्पादक हैं । कुम्भकर्ण का जो विस्मयकारी वर्णन किया गया है, उसमें मुख्य बातें निम्न प्रकार हैं—

१. वह कभी नौ, कभी सात, कभी दस और कभी आठ मास तक सोता रहता है—

'नव सप्त दशाष्टौ च मासान् स्वपिति राक्षसः ।'—यु० का० ६०/१७

२. वह एक गुफा में रहता है जो सुन्दर एवं फूलों से सुगन्धित है तथा एक-एक योजन लम्बी चौड़ी है । जब राक्षस उसे जगाने के लिए गुफा में प्रविष्ट होते हैं, तो कुम्भकर्ण की सांस से एकदम पीछे ठेल दिए जाते हैं ।

'कुम्भकर्णस्य निः श्वासादवधूता महाबलाः ।
प्रतिष्ठमानाः कृच्छ्रेण यत्नात् प्रविविशुर्गुहाम् ।।'
—यु० का० ६०/२५

३. उसकी नासिका के दोनों छिद्र बहुत भयंकर हैं । मुख पाताल के समान विकराल है—

'भीमनासापुटं तं तु पातालविपुलाननम् ।' —यु० का० ६०/२९

४. कुम्भकर्ण की निद्रा इतनी गहरी है कि उसको जगाने के लिए राक्षसों ने पहले बहुत कोलाहल किया। फिर भी वह सोता रहा, तब राक्षसों ने उसकी छाती पर पर्वत शिखरों, मूसलों, गदाओं, मुद्गरों और मुक्कों से मारना प्रारम्भ कर दिया—

'तं शैलशृंगै मुंलैर्गदाभिः वक्षः स्थले मुद्गरमुष्टिभिश्च ।
सुखप्रसुप्तं भुवि कुम्भकर्ण रक्षांस्युदग्राणि तदा निजघ्नुः ॥'

—यु० का० ६०/४०

५. राक्षसों ने अश्वों, उष्ट्रों, गदहों और हाथियों को, डंडों, कोड़ों तथा अंकुशों से मार-मारकर उस पर ठेलना प्रारम्भ कर दिया। अनेक प्रकार के मुद्गर आदि से भी प्रहार प्रारम्भ किया। उस भयंकर कोलाहल से पर्वतों और वनों सहित समस्त लंका गूंज उठी, फिर भी वह कुम्भकर्ण नहीं जागा—

'अश्वानुष्ट्रान् खरान् नागाञ्जघ्नुर्दण्डकशांकुशैः ।
भेरी शंखमृदंगाश्च सर्वप्राणैरवादयन् ॥
निजघ्नुश्चास्य गात्राणि महाकाष्ठकटंकरैः ।
मुद्गरैर्मुसलैश्चापि सर्वप्राणसमुद्यतैः ॥
तेन नादेन महता लंका सर्वाप्रपूरिता ।
सपर्वतवना सर्वा सोऽपि नैव प्रबुध्यते ॥'

—यु० का० ६०/४५-४७

६. उसके दोनों कानों में सौ घड़े पानी के डाल दिए तो भी वह नहीं जागा—

'उदकुम्भशतानन्ये समसिचन्त कर्णयोः ।
न कुम्भकर्णः पस्पन्दे महानिद्रावशं गतः ॥' —यु० का० ६०/५२

७. रस्सियों से बंधी हुई शतघ्नियों द्वारा उस पर सब ओर से चोटें पड़ने लगी, फिर भी वह नहीं जागा—

'रज्जुबन्धनबद्धाभिःशतघ्नीभिश्च सर्वतः ।
बध्यमानो महाकायो न प्राबुध्यत राक्षसः ॥' —यु० का० ६०/५४

८. जब उसके शरीर पर हजारों हाथी दौड़ाये गये, तब उसे कुछ स्पर्श मालूम हुआ और वह जाग उठा—

'वारणानां सहस्रं च शरीरेऽस्य प्रधावितम् ।
कुम्भकर्णस्तदा बुद्ध्वा स्पर्शं परमबुध्यत ॥' —यु० का० ६०/५५

६. उसकी भूख भी इतनी आश्चर्यजनक थी कि जब खाने-पीने की वस्तुएं उसके सम्मुख रखी गयीं तब वह बात की बात में अनेक भैंसों और सूअरों को खा गया—

'ततस्त्वदर्शयन् सर्वान् भक्ष्यांच विविधान् बहून् ।
वराहान् महिषांश्चैव बक्षभ स महाबल: ।।' —यु०का० ६०/६२

इस प्रकार यहां पर कुम्भकर्ण आलम्बन विभाव है । उसका उपर्युक्त व्यवहार उद्दीपन विभाव है । उसको जगाने के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न करना अनुभाव है । ग्लानि, आवेग, उत्सुकता आदि संचारी भावों से परिपुष्ट 'विस्मय' स्थायीभाव व्यंग्य है ।

कुम्भकर्ण के वर्णन में अद्‌भुत के साथ भयानक और बीभत्स-रसों का प्रवाह भी चल रहा है, कहीं-कहीं तो उस राक्षस के भयानक रूप को देखकर भयानक रस की, और कहीं उसके घृणित कार्यों को देखकर बीभत्स-रस की प्रतीति अधिक मात्रा में होने लगती है ।

सुरसा, मैनाक और छायाग्राहिणी भी अन्य रसों के साथ अद्‌भुत-रस की अभिव्यक्ति करने वाले पात्र हैं ।

पदार्थों में पुष्पक एवं अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र, नागपाश आदि भी इसी तरह विस्मयजनक हैं ।

इसी प्रकार लक्ष्मण को जीवन-दान देने वाली संजीवनी औषधियां जो यह जानकर कि कोई हमें लेने के लिए आ रहा है, तत्काल अदृश्य हो जाया करती थीं—

'महौषध्यस्ततः सर्वास्तस्मिन् पर्वतसत्तमे ।
विज्ञायार्थिनमायान्तं ततो जग्मुरदर्शनम् ।।' —यु० का० ७४/६४

जिन औषधियों को सूंघने मात्र से ही घाव भर जाते थे और मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ व्यक्ति क्षणभर में पूर्ण स्वस्थ तथा पहले से अधिक कान्तिमान होकर खड़ा हो जाता था, कम विस्मयकारी नहीं हैं ।

इस प्रकार रामायण में यह अद्‌भुत तत्व वीरतापूर्ण कार्यों के रूप में, अद्‌भुत आकृतियों और विचित्र पदार्थों के रूप में अलौकिक और अतिप्राकृत दृश्यों तथा घटनाओं के रूप में दिखाई देता है । कहीं अद्‌भुत-रस का पूर्ण परिपाक हुआ है, तो कहीं केवल विस्मय का भाव स्फुरित होकर रह गया हैं । कहीं अद्‌भुत-रस वीर या भयानक का अंग बनकर आया है । वाल्मीकि-रामायण में प्रयुक्त अद्‌भुत-रस के प्रयोग को देखकर ही 'वीराच्चैवाद्‌भुतोत्पत्ति' का सिद्धांत प्रचलित हुआ होगा, ऐसा जान पड़ता है ।

वालमीकि-रामायण में शान्त-रस

यद्यपि आचार्य भरत ने आठ रसों में शान्त-रस का उल्लेख नहीं किया है, तथापि अनेक आचार्यों का विचार है कि भरत मुनि को शान्त रस मान्य था[1]।

आनन्दवर्धन, मम्मट और विश्वनाथ ने शान्त-रस को नवरसों में विधिवत् मान्यता दी है।

शान्त-रस के स्थायीभाव तृष्णाक्षय, सुख, शम आदि माने गये हैं।

अधिकांश आचार्यों ने निर्वेद को ही शान्त-रस का स्थायी-भाव माना है और निर्वेद के बाद 'शम' का स्थान है। निर्वेद भी दो प्रकार का माना जाता है—तत्व ज्ञान से उत्पन्न और इष्ट वियोग से उत्पन्न। तत्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद ही इसका वास्तविक स्थायीभाव है[2]।

तत्वज्ञान की प्राप्ति और शम के अभ्यास में प्रकृति, तपोवन आदि का भी विशेष सहयोग होता है। अतः शान्त-रस के उद्भावन में ज्ञान-चर्चा तथा वैराग्य के अतिरिक्त प्रकृति के शान्त एवं सुरम्य शीतल दृश्यों का वर्णन भी उद्दीपन विभाव का कार्य करता है[3]।

वालमीकि-रामायण में शान्त-रस के प्रकृति-विषयक तथा धर्म-वैराग्य विषयक दोनों रूप दिखाई देते हैं।

प्रकृति-विषयक शान्त-रस

प्रकृति-विषयक शान्त-रस में वस्तुतः शम की ही प्रधानता होती है, क्योंकि रमणीय और शीतल प्राकृतिक दृश्यों को देखकर इच्छाओं और भावनाओं के संघर्षों से सन्तप्त इन्द्रियों को विश्राम और शान्ति का अनुभव होता है।

वालमीकि का प्रकृति-वर्णन अधिकांशतः रागात्मक है। प्रकृति के रमणीय रूपों का वर्णन करते हुए जहां वालमीकि ने ऐन्द्रिय आनन्द, सुखोपभोग की भावना और हार्दिक उल्लास को मुखरित किया है, वहां प्राकृतिक दृश्यों को देखकर मन संसार को छोड़कर उसी में रमा रहना चाहता है। उन पावन मनभावन दृश्यों से मन में सात्विक विचारों का संचार होने लगता है। ऐसे स्थलों पर मानव संसार के रागद्वेष से युक्त होकर आन्तरिक शान्ति अनुभव करता है। उस दृष्टि से चित्रकूट का वर्णन अत्यन्त हृदयावर्जक है। शान्त-रस की सरिता प्रवाहित करने में आदिकवि

---

१. द नम्बर आफ रसाज, पृ० १७
२. काव्य-दर्पण, पृ० २७८
३. साहित्य-दर्पण, पृ० ३/२४७

का हृदय तन्मय हो जाता है, क्योंकि उनका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति की गोद में ही पला था और वहीं पर महर्षि ने शान्त-चित्त से रामायणी-कथा की रस-धारा प्रवाहित की थी।

शान्त-रस व्यंजक—चित्रकूट

महर्षि भरद्वाज द्वारा वर्णित चित्रकूट की महिमा में शान्त-रस छलक रहा है। जब मानव चित्रकूट के शिखरों का दर्शन करता है, तब कल्याणकारी पुण्य कर्मों का फल प्राप्त कर लेता है और उसका मन कभी पाप में नहीं लगता—

'यावता चित्रकूटस्य नरः शृंगाण्यवेक्षते।
कल्याणानि समाधत्ते न पापे कुरुते मनः॥' —अया० का० ५४/३०

उस चित्रकूट पर अनेक ऋषि, वार्धक्य से जिनके केश श्वेत हो गये थे, तपस्या द्वारा सैकड़ों वर्षों तक विहार करके स्वर्गलोक चले गए—

ऋषयस्तत्र बहवो विहृत्य शरदां शतम्।
तपसा दिवमारुढ़ाः कपालशिरसा सह॥' —अयो० का० ५४/३१

वह पर्वत परम पवित्र, रमणीय तथा बहुसंख्यक फल मूलों से सम्पन्न है। वहां हाथी और मृग झुण्ड बनाकर विचरण करते रहते हैं—

'पुण्यश्च रमणीयश्च बहुमूलफलायुतः।
तत्र कुंजरयूथानि मृगयूथानि चैव हि॥' —अयो० का० ५५/४०

भरद्वाज चित्रकूट एवं मन्दाकिनी की महिमा वर्णित करते हुए राम से कहते हैं—

'विचरन्ति वनान्तेषु तानि द्रक्ष्यसि राघव।
सरित्प्रस्रवणप्रस्थान् दरीकन्दरनिर्भरान्।
चरतः सीतया सार्ध नन्दिष्यति मनस्तव॥'
—अयो० का० ५४/४१-४२

शान्त-तस का धर्म भावना से घनिष्ठ सम्बन्ध है। पाप-कर्मों से निवृति और पुण्य-कर्मों में प्रवृत्ति तथा विश्व कल्याण के प्रेरक पवित्र सात्विक कर्मों और परमात्म विषयक जिज्ञासा में मानव को लीन करने में प्रकृति के पुनीत स्थलों और रमणीय दृश्यों का कितना महत्व रहा है, यह हम अनादिकाल से ही अनुभव करते आये हैं।

भरतमुनि ने भी शम, निर्वेद आदि भावों के लिए प्रकृति की महत्ता स्वीकार

की है'।

हमारे प्रातः स्मरणीय ऋषि, महर्षियों ने प्रकृति के क्रोड में, पर्वतों की गुफाओं में और सरिताओं के शान्त तटों पर बैठकर ही गहन साधना द्वारा अपने हृदय में ब्रह्म का साक्षात्कार किया था और संसार के रहस्य को जानकर मानव-मात्र के कल्याणार्थ वेद, आरण्यक और उपनिषद तथा अन्य धार्मिक, दार्शनिक वाङ्मय की रचना ऐसे ही पुनीत रमणीय प्राकृतिक दृश्यों के बीच की थी।

रामायण में चित्रकूट, गंगा, मन्दाकिनी तथा अनेक गिरि-कान्तार तथा सरिता परम्परागत रूप में शान्त-रस के प्रेरक रहे हैं।

पर्वतों और वनों के मध्य सरिताओं के तटों पर स्थित मुनियों के आश्रम शान्त-रस के उत्पत्ति स्थान रहे हैं। इन आश्रमों में पशु, पक्षी अपने शाश्वतिक विरोध को छोड़कर प्रेम-भाव से निवास किया करते हैं। पाप का तो वहां लवमात्र भी नहीं रहता।

पापात्मा भी इन पुण्यकर्मों ऋषियों के दर्शन मात्र से पुण्यात्मा हो जाते हैं। वाल्मीकि ने ऐसे आश्रमों का विशद वर्णन किया है। शरभंग और सुतीक्ष्णा नामक मुनियों के आश्रम के वर्णन में अद्‌भुत-रस के साथ शान्त-रस की धारा बह रही है।

शान्त-रस का आलम्बन—अगस्त्याश्रम

ऋषियों की सुदीर्घ परम्परा में अगस्त्य ऋषि का नाम अत्यन्त श्रद्धा और गौरव के साथ स्मरण किया जाता है। वनवास की अवधि में राम, लक्ष्मण और सीता के साथ अगस्त्य ऋषि के आश्रम में गये थे। कवि ने राम के मुखारविन्द से आश्रम के प्रभाव का जो वर्णन कराया है, वह निश्चय ही शान्त-रस का सुन्दर उदाहरण है।

आश्रम के वृक्षों के पत्ते जैसे चिकने दिखाई देते हैं, वैसे ही पशु और पक्षी क्षमाशील एवं शान्त हैं। इसी से यह प्रतीत होता है कि उन शुद्ध अन्तःकरण वाले महर्षि अगस्त्य का आश्रम यहां से अधिक दूर नहीं है—

'स्निग्धपत्रा यथा वृक्षा यथा क्षान्ता मृगद्विजाः।
आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावितात्मनः॥'

—अर० का० ११/७८

---

1. "Bharat therefore could hardly have lost sight of the Rsi-s, the forests, tapas, etc."
—The Number of Rasas, p. 17.

इस आश्रम के वन यज्ञ के धूम से व्याप्त हैं। वल्कल वस्त्रों की पंक्तियां इसकी शोभा बढ़ा रही हैं। सदा शान्त रहने वाला मृगों का झुण्ड विचरण कर रहा है तथा नाना प्रकार के पक्षी अपने मधुर कलरव से आश्रम को निनादित कर रहे हैं—

'प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः ।
प्रशान्तमृगयूथश्च नानाशकुनिनादितः ॥' —अर० का० ११/८०

जब से पुण्यकर्मा महर्षि का इस दिशा में पदार्पण हुआ है, तभी से यहां के राक्षस वैर रहित और शान्त हो गए हैं।

'यदाप्रभृति चाक्रान्ता दिगियं पुण्यकर्मणा ।
तदाप्रभृति निर्वैराःप्रशान्ता रजनीचराः ॥' —अर० का० ११/८३

जिनके अद्भुत कर्म त्रिलोकी में प्रसिद्ध हैं, ऐसे दीर्घायु महात्मा अगस्त्य का यह सुन्दर आश्रम है, जो विनम्र मृगों से सेवित है--

'अयं दीर्घायुषस्तस्य लोके विश्रुतकर्मणः ।
अगस्त्यस्याश्रमः श्रीमान् विनीतमृगसेवितः ॥' —अर० का० ११/८६

देवता, गन्धर्व सिद्ध और महर्षि यहां नियमित आहार करते हुए सदैव अगस्त्य ऋषि की उपासना करते हैं—

'अत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अगस्त्यं नियताहाराः सततं पर्युपासते ॥' —अर० का० ११/८९

ये ऋषि इतने प्रभावशाली हैं कि इनके आश्रम में कोई झूठ बोलने वाला, क्रूर, धूर्त, नृशंस, अथवा पापाचारी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता—

'नात्र जीवेन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः ।
नृशंसः पापवृतो वा मुनिरेष तथाविधः ॥'
—अर० का० ११/९०

इस आश्रम में अपने शरीर को त्यागकर अनेकानेक सिद्ध, महात्मा, महर्षि नवीन शरीर के साथ सूर्य के समान तेजस्वी विमानों द्वारा स्वर्गलोक को प्राप्त हुए हैं—

'अत्र सिद्धा महात्मानो विमानैः सूर्यसंनिभैः ।
त्यक्त्वा देहान् नवैर्देहैः स्वर्याता परमर्षयः ॥' —अर० का० ११/९२

यहां पर अगस्त्य ऋषि एवं उनका पावन आश्रम शान्त-रस के आलम्बन विभाव हैं। आश्रम के रमणीय दृश्य, शान्त भाव से विचरण करते हुए मृगादि, तपस्वियों की तेजस्विता आदि उद्दीपन विभाव हैं। राम द्वारा अगस्त्य ऋषि के

आश्रम की प्रशंसा करना, शान्ति का अनुभव करना आदि अनुभाव हैं। निर्वेद, हर्ष आदि संचारी भावों से परिपुष्ट राम के अन्तःकरण में स्थित 'शम' स्थायीभाव व्यंग्य हैं।

सीता-हरण के बाद जब राम पम्पासरोवर पर पहुंचते हैं, तब वहां की वसन्तकालीन शोभा को देखकर उनके विरही मन को कुछ शान्ति प्राप्त होती है।

इस प्रकार प्रकृति के माध्यम से शान्त-रस की योजना की गयी है, किन्तु अनेक स्थानों पर प्रकृति-चित्रण शृंगार को पुष्ट करता है, जिससे शान्त-रस का भास्कर स्वरूप कुछ निष्प्रभ-सा प्रतीत होने लगता है।

धर्म, वैराग्य, उपदेश-विषयक शान्त-रस

हमारे आचार्यों ने दैव को सुख दुःख का कारण बताकर दुःखी मन को शान्ति प्रदान करने के लिए दैव को मलहम के रूप में प्रयुक्त किया है। वनवास की आज्ञा से लक्ष्मण के क्रुद्ध हो जाने पर उसके उद्विग्न मन को धैर्य धारण कराने के लिए राम इसी देव का उपदेश देते हैं। दैव को ही सुख-दुःख, भय-क्रोध, लाभ-हानि उत्पत्ति और विनाशादि का कारण समझकर वे कहते हैं—

'सुख दुःखे भयक्रोधौ लाभालाभौ भवाभवौ।
यस्य किंचित् तथाभूतं ननु दैवस्य कर्म तत्॥' —अयो०का० २२/२२

उग्र तपस्वी ऋषि भी दैव से प्रेरित होकर अपने तीव्र नियमों को छोड़ देते हैं और काम, क्रोध के द्वारा विवश होकर मर्यादा से भ्रष्ट हो जाते हैं—

'ऋषयोऽप्युग्रतपसो दैवेनाभिप्रचोदिताः॥'
उत्सृज्य नियमांस्तीवान् भ्रश्यन्ते काममन्युभिः॥
—अयो० का० २२/२३

भारतीय चिन्तकों ने मानवशरीर को तथा संसार के समस्त ऐश्वर्यों को विनाशशील एवं क्षणभंगुर माना है। गीता, उपनिषद्, दर्शन, आरण्यक आदि सभी ग्रन्थों में सांसारिक पदार्थों की नश्वरता एवं आत्मा की अजरामरता प्रतिपादित की है। यह चिन्तन ही भारतीय मनीषा की गरिमा है।

इस प्रकार के उपदेश जिनके संसार के भोग-विलासों से विरक्ति होकर मानव बड़े से बड़े कष्टों को हंसता हुआ सहन कर सकें। इस देश में सदा से ही दिये जाते रहे हैं। और यदि यह कहा जाए कि इस प्रकार के उपदेशों में ही शान्त-रस सर्वाधिक पुष्ट होता है, तो अतिशयोक्ति न होगो क्योंकि इसी से निर्वेद होता है, और प्रबल वैराग्य जाग्रत होता है जो कि शान्त रस का आधार ही नहीं अपितु सर्वस्व है।

जब भरत अपने अग्रज राम को वनवास से लौटाने के लिए वन जाते हैं और अपने अश्रुओं से भाई के चरण धोकर अयोध्या में चलकर राज्य ग्रहण करने की विनम्र अभ्यर्थना करते हैं, उस समय राम ने जीवन की अनित्यता का जो उपदेष भरत को दिया है, उसमें शान्त-रस की स्निग्ध सान्द्र धारा प्रवाहित हो रही है।

यह जीव ईश्वर के समान स्वतंत्र नहीं है, अतः यहां कोई अपनी इच्छा के अनुसार कुछ नहीं कर सकता। काल इस पुरुष को इधर-उधर खींचता रहता है—

'नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽयमनीश्वरः।
इतरश्चेतरश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति॥'

—अयो० का० १०५/१५

सभी संग्रहों का अन्त विनाश है। लौकिक उन्नतियों का अन्त पतन है। वियोग में ही संयोग का अन्त है और जीवन का अन्त मृत्यु है—

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥'

—अयो० का० १०५/१६

जैसे पके हुए फलों को गिरने के अतिरिक्त और कोई भय नहीं होता, उसी प्रकार उत्पन्न हुए मनुष्य को मृत्यु के अतिरिक्त और कोई भय नहीं है—

'यथा फलानां पक्वानां नान्यत्रपतनाद् भयम्।
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद् भयम्॥'

—अयो० का० १०५/१७

जैसे सुदृढ़ खम्भे वाला भवन भी पुराना होने पर गिर जाता है, उसी प्रकार मनुष्य जरा और मृत्यु के वश में पड़कर नष्ट हो जाता है—

'यथाऽगारं दृढ़स्थूणं जीर्णं भूत्वपसीदति।
तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशंगताः॥' —अयो० का० १०५/१८

जो रात्रि बीत जाती है, वह लौटकर फिर नहीं आती है, जैसे यमुना जल से भरे हुए समुद्र की ओर जाती ही है, किन्तु उधर से कभी लौटकर नहीं आती है—

'अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते।
यात्थेव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकार्णवम्॥'

—अयो० का० १०५/१९

दिन रात सतत् बीत रहे हैं और संसार में समस्त जीवों की आयु का तीव्र गति से नाश कर रहे हैं, जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें जल को शीघ्रता से सुखा देती हैं—

'अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह ।
आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलभिवांशवः ।।'

—अयो० का० १०५/२०

मृत्यु साथ ही चलती है, साथ ही बैठती है और बहुत बड़े मार्ग की यात्रा में भी साथ जाकर वह मनुष्य के साथ ही लौटती है—

'सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति ।
गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्वर्तते ।।' —अयो० का० १०५/२०

शरीर में भुरिया पड़ गयीं, मस्तक के केश सफेद हो गये, फिर जरावस्था से जीर्ण हुआ मनुष्य कौन-सा उपाय करके मृत्यु से बचने के लिए अपना प्रभाव प्रकट कर सकता है—

'गात्रेषु वलयः प्राप्ताः श्वेताश्चैव शिरोरुहाः ।
जरया पुरुषो जीर्णः किं हि कृत्वा प्रभावयेत् ।।'

—अयो० का० १०५/२३

मनुष्य सूर्योदय होने पर आनन्दित होते हैं, तथा सूर्यास्त होने पर भी प्रसन्न होते हैं। किन्तु यह नहीं जानते कि प्रतिदिन अपने जीवन का नाश हो रहा है—

'नन्दन्त्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमितेऽहनि ।
आत्मनो नाववुध्यन्ते मनुष्या जीवितक्षयम् ।।'

—अयो० का० १०५/२४

जब किसी ऋतु का नूतनागम होता है तब लोग प्रसन्नता से खिल उठते हैं। किन्तु सत्य तो यह है कि इन ऋतुओं के परिवर्तन से प्राणियों के प्राणों का क्रमशः क्षय हो रहा है—

'हृष्टन्त्मृतुमुखं दृष्ट्वा नवं नवभिवागतम् ।
ऋतूनां परिवर्तेन प्राणिनां प्राणसंक्षय ।।' —अयो० का० १०५/२५

जैसे महासागर में बहते हुए दो काष्ठ कभी एक दूसरे से मिल जाते हैं, और कुछ काल के उपरान्त अलग भी हो जाते हैं, उसी प्रकार स्त्री, पुत्र कुटुम्ब और धन भी मिलकर बिछुड़ जाते हैं, क्योंकि इनका वियोग अवश्यम्भावी है—

'यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे ।
समेत्य तु व्यपेयातां कालमासाद्य कंचनः ।।
'एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च ।
समेत्य व्यवद्यावन्ति ध्रुवो ह्ययेषां विनाभवः ।।'

—अयो० का० १०५/२६-२७

जैसे आगे जाते हुए यात्रियों अथवा व्यापारियों के समुदाय से मार्ग में खड़ा हुआ पथिक यह कहे कि मैं भी आपका अनुगमन करूंगा, और वह अनुसरण करने लगे, उसी प्रकार हमारे पूर्वज पिता, पितामह आदि जिस मार्ग से गये हैं, जिस पर जाना अनिवार्य है, और जिससे बचा नहीं जा सकता, उसी मार्ग पर स्थित व्यक्ति किसी अन्य के लिए शोक क्यों करें—

यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात् कश्चित् पथि स्थितः ।
अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति ॥
एवं पूर्वैर्गतो मार्गः पैतृपितामहैध्रुवः ।
तमापन्नः कथं शोचेद् यस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥'

—अयो० का० १०५/२९-३०

जैसे नदियों का प्रवाह पीछे नहीं लौटता, उसी प्रकार प्रतिदिन क्षीण होती हुई अवस्था फिर नहीं लौटती है । उसका क्रमशः नाश हो रहा है, यह सोचकर आत्मा को कल्याण के साधनभूत धर्म में लगाना चाहिए—

'वयसः पतमानस्य स्रोतसो वानिवर्तिनः ।
आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः ॥'

—अयो० का० १०५/३१

उपर्युक्त उपदेश का एक-एक शब्द शान्त-रस की सुधा में डूबा हुआ है ।

शान्त-रस के आलम्बन—दण्डकवन के तपोवन

वनवास के समय राम ने दण्डकारण्य नामक वन में प्रवेश किया । आदिकवि ने दण्डकवन के आश्रमों का जो हृद्य वर्णन किया है, वह भी शान्त-रस की मन्दाकिनी प्रवाहित करने वाला है ।

वहां पर कुश और वल्कल वस्त्र फैले हुए थे । आश्रम-ऋषियों की ब्रह्म विद्या के अभ्यास से प्रकट हुए अद्भुत तेज से व्याप्त था । जैसे आकाश में सूर्यमण्डल प्रकाशित होता है, उसी प्रकार भूतल पर उनका तेज उद्दीप्त हो रहा था—

'कुश चीरपरिक्षिप्तं ब्राह्मया लक्ष्म्या समावृतम् ।
यथा प्रदीप्तं दुर्दशं गगने सूर्यमण्डलम् ॥' —अर० का० १/२

वे आश्रम सभी प्राणियों के लिए शरण देने वाले थे, आंगन सदा स्वच्छ बने रहते थे । वे आश्रम वन्य पशुओं और पक्षियों के समूह से सब ओर घिरे रहते थे—

'शरण्यं सर्वभूतानां सुसम्मृष्टाजिरं सदा ।
मृगै बहुभिराकीर्णं पक्षिसंघैः समावृतम् ॥' —अर० का० १/३

वह स्थान इतना मनोरम था कि वहां अप्सरायें नित्य-प्रति नृत्य करती थीं। बड़ी-बड़ी यज्ञशालायें सुवा आदि यज्ञ पात्र मृगचर्म कुश, समिधा, जल से भरे हुए कलश तथा फलमूल उसकी शोभा में चार चांद लगाते थे। स्वादिष्ट फल देने वाले परम पवित्र तथा बड़े-बड़े वन्य वृक्षों से आश्रम घिरे हुए थे—

'पूजितं चोपनृतं च नित्यमप्सरसां गणैः।
विशालैरग्निशरणैः स्रुग्भान्डैरजिनैः कुशैः॥
समिद्भिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम्।
आरण्यैश्च महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्वृत्तम्॥' —अर० का० १/४-५

बलिवैश्वदेव और यज्ञ से पूजित वह पावन आश्रम समुदाय ऋचाओं की मधुर ध्वनि से गूंजता रहता था। कमलपुष्पों से शोभायमान पुष्करिणियां वहां की शोभा बढ़ाती थीं। और अनेक प्रकार के पुष्प सब ओर बिखरे हुए थे—

'बलिहोमार्चितं पुण्यं ब्रह्मघोषनिनादितम्।
पुष्पैश्चान्यैः परिक्षिप्तं पद्मिन्या च सपद्मया॥' —अर० का० १/६

वहां पर चीर और काला मृगचर्म धारण करने वाले तथा फलमूल का आहार करने वाले जितेन्द्रिय तथा सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी पुरातन मुनिगण निवास करते थे। नियमित आहार करने वाले पावन मुनियों से शोभायमान वह आश्रम समुदाय ब्रह्मा के धाम के समान तेजस्वी तथा वेद ध्वनि से गुंजायमान था—

'फलमूलाशनैर्दान्तैश्चीरकृष्णाजिनाम्बरैः।
सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्युतम्॥
पुण्यैश्च नियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः।
तद् ब्रह्मभवन प्रख्यं ब्रह्मघोषनिनादितम्॥' —अर० का० १/७-८

इसप्रकार उन आश्रमों में रहने वाले समस्त पशु, पक्षी, वृक्ष और लताएं तथा महर्षिजन एवं उनकी निखिल क्रियायें शान्त-रस को ही परिपुष्ट करने वाली थीं। इस प्रकार के आश्रम में निर्वेद, वैराग्य अथवा ईश्वर भक्ति जन्य परमानन्द के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार के विकार को उत्पन्न होने का अवकाश ही कहां है?

यहां पर दन्डकारण्य में स्थित ऋषि महर्षियों के आश्रय आलम्बन विभाव हैं, उनकी समस्त क्रियायें उद्दीपन विभाव हैं। निर्वेद आदि संचारी भावों से परिपुष्ट 'शम' स्थायी भाव व्यंग्य है।

इस कथानक के नायक राम जहां वीर रस के श्रेष्ठ आश्रय हैं, वहां शान्त रस की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। उनका हृदय संसार के प्राणिमात्र के लिए अपार करुणा एवं दया से परिपूर्ण है। वे शरणागत वत्सल हैं। दुष्टों के प्रति भी उनके अन्तःकरण

में दुर्भावना नहीं है। उन्होंने राक्षसों का संहार केवल इसलिए किया, जिससे वसुधा पर न्याय, प्रेम, धर्म की रक्षा हो।

राम की आज्ञा से लक्ष्मण सीता को निर्जन वन में छोड़कर अयोध्या में लौट आये हैं। यद्यपि लोकरंजन के लिए राम ने अपनी प्राणप्रिया का परित्याग कर दिया है, किन्तु उनका सीता के प्रति प्रेम से लबालब भरा हुआ हृदय पत्नी के वियोग में रो रहा है। भाई के शोकसन्तप्त अन्तःकरण को सान्त्वना देने के लिए सुमित्रानन्दन ने जो वैराग्यपूर्ण उपदेश दिया है, वह विरह व्यथित हृदय को परम शान्ति प्रदान करने वाला है।

संसार में जितने संचय हैं—उन सबका अन्त विनाश है, उत्थान का अन्त पतन है और संयोग का अंत वियोग है तथा मृत्यु ही जीवन का अन्त है। इसलिए स्त्री, पुत्र, मित्र और धन में विशेष आसक्ति नहीं करनी चाहिए क्योंकि इनसे वियोग होना निश्चित है—

'तस्मात् पूत्रेषु दारेषू मित्रेषु च धनेषु च।
नातिप्रसंगः कर्तव्यो विप्रयोगो हि चतैर्धुवम्॥ —उ० का० ५२/१२

आदिकवि ने अन्य रसों की भांति शान्त रस की भी सुन्दर योजना की है। वे स्वयं विगतकलमष शान्तान्तःकरण साक्षात्कृतधर्मा ऋषि थे, उनका तो प्रत्येक शब्द ही शान्त रसार्णव में अवगाहन कराने वाला है और महाकाव्य नायक स्वयं राम हैं, इसलिए इस काव्य में शान्त रस के सर्वांगीण चित्रण की और भी अधिक उज्ज्वल संभावनाएं हो सकती थीं किन्तु वाल्मीकि तो निर्द्वन्द्व होकर कथा कह रहे हैं। बलात् किसी रस अथवा अलंकार को प्रयुक्त करना उनको अभीष्ट ही नहीं है। अतः दूसरे रसों के समान शान्त-रस को भी पूर्णरूपेण शास्त्रीय कसौटी पर नहीं कसा जा सकता था। लौकिक कवि अर्थ के अनुसार वाणी का प्रयोग करते हैं किन्तु आद्य ऋषियों की वाणी का अनुसरण स्वयं अर्थ किया करते हैं—

'लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानों वाचमर्थोऽनुधावति'॥'

वाल्मीकि भी इस श्रेणी के अग्रणी कवि हैं।

वाल्मीकि-रामायण में वात्सल्य-रस

वात्सल्य मानव हृदय की रागात्मक अनुभूति है, जिसकी चिरन्तनता का अंकन हृदय की चिरन्तनता से ही किया जा सकता है। वत्सलता का भाव उतना ही प्राचीन है, जितना कि मानवसंस्कृति का प्रथम चरण।

---

१. उ० रा० च० १/१०

यद्यपि साहित्यशास्त्र में वात्सल्य-रस को मान्यता बहुत बाद में मिली परन्तु वत्सलता के मार्मिक चित्र और अनूठी उपमायें ऋग्वेद में भी प्राप्त होती है। उसमें माता और सन्तान के प्रेम की अभिव्यक्ति सुन्दर रूप में हुई है। दुग्धपान करते हुए बालक को थपथपाकर माता का स्नेह प्रकट करना[1], स्तनों में दुग्ध आने पर माता का बच्चे के लिए व्यग्र हो उठना,[2] आदि चित्र ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं। माता की गोद में बैठे हुए[3], अथवा मचलते हुए[4], शिशु की कल्पनाएं भी ऋग्वेद में उपलब्ध होती हैं जो कि वात्सल्य रस की पोषक हैं। इससे वत्सलता के रमणीय भाव का साहित्य में अत्यन्य प्राचीनकाल से होना सिद्ध होता है।

'वात्सल्य' एक पूर्ण प्रौढ़ और व्यापक भावना है। जनसमुदाय की वृद्धि के साथ समाज की और समाज की वृद्धि के साथ साहित्य की वृद्धि होने पर भावनाओं का स्वरूप भी निखरता और प्रौढ़ होता चलता है। इसी नियम से वात्सल्य भावना ने भी जीवन और साहित्य में धीरे-धीरे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। यह भी एक व्यापक और उत्कट भावना है। माता-पिता के हृदय में; इसका विशेष रूप से आविर्भाव होता है और उसमें भी माता-पिता के हृदय में, क्योंकि गर्भावस्था से ही यह माता के हृदय में अंकुरित होता हुआ, दुग्ध के रूप में शरीर से फूट पड़ता है। मुख्य रूप से तो शिशु के प्रति माता-पिता के स्नेह को ही वात्सल्य का स्थायी भाव माना जाता है, परन्तु माता-पिता के अतिरिक्त अन्य परिजन, स्वजन, गुरु आदि का भी, केवल शिशु के प्रति ही नहीं, अपितु अपने किसी भी छोटे के प्रति, जो स्नेह-भाव होता है, वह वात्सल्य के अन्तर्गत ही स्वीकार्य है।

हम यह कह चुके हैं कि काव्य में वात्सल्य रस को मान्यता बहुत बाद में प्राप्त हुई अतः यद्यपि वाल्मीकि अपने अमर महाकाव्य में अनेक प्रसंगों में वात्सल्य-रस की जितनी व्यापक योजना कर सकते थे, उतनी हमें रामायण में दिखाई नहीं देती है। जहां कवि ने इसका प्रयोग करने की चेष्टा की भी है, वहां कहीं-कहीं तो यह रस-कोटि को प्राप्त हुआ है और कहीं-कहीं केवल वात्सल्य-भाव का स्फुरण मात्र हो सका है।

---

१. स ई वृषाजनयत् तासु गर्भं स ई शिशुर्धयति तं रिहन्ति'

—ऋक्०२/३५/१३

२. 'नि ते नंसै पीप्यानेव योषा' —ऋक्० ३/३३/१०

३. 'आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु।'

—ऋक्० ७/४३/३

४. 'गर्भं माता सुधितं वक्षणा स्ववैनन्तं तुषयन्ती विभर्ति।'

—ऋक्० १०/२७/१६

वात्सल्य-रस के आलम्बन-दशरथ-पुत्र

राम-कथा में सर्वप्रथम राम, लक्ष्मणादि चारों शिशुओं के जन्म पर वात्सल्य-रस चर्व्रणगोचर होता है। अमित-तेजस्वी पुत्र-राम के जन्म से महारानी कौसल्या उसी तरह सुशोभित होती हैं जैसे इन्द्र से देवमाता अदिति सुशोभित हुई थी—

'कौसल्या शुशुभे तेन पुत्रेणामिततेजसा।
यथा वरेण देवानामदितिर्वज्रपाणिना ॥' —बा० का० १८/१२

समय-समय पर उन बालकों के जातकर्म आदि सभी संस्कार किए गए, उनमें राम ज्येष्ठ होने के कारण कुल की कीर्ति-पताका के समान थे और पिता को आह्लादित करने वाले थे—

'तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत्।
तेषां केतुरिव ज्येष्ठो रामो रतिकरः पितुः ॥' —बा० का० १८/२४

अपने चारों भाग्यशाली पुत्रों से राजा दशरथ को ऐसी प्रसन्नता हुई, जैसे चारों दिक्पालों से ब्रह्मा प्रसन्न होते हैं—

'स चतुर्भिर्महाभागैः पुत्रैर्दशरथः प्रियैः।
बभूव परमप्रीतो देवैरिव पितामहः ॥' —बा० का० १८/३३

राम-जन्म से न केवल पिता दशरथ और कौसल्यादि महारानियां ही परम प्रसन्न हैं, अपितु परिजन और पुरजन भी राजकुमारों की बाल-क्रीड़ाओं को देखकर प्रमुदित हो रहे हैं।

वात्सल्य-रस के आश्रय—दशरथ

दशरथ के अन्तःकरण में स्थित 'वात्सल्य' उस समय प्रबल वेग में फूट पड़ता है, जब विश्वामित्र ऋषि यज्ञ की रक्षा के लिए राम को भेजने के लिए कहते हैं। उनका पुत्र-वत्सल हृदय अपने प्राणप्रिय पुत्र के वियोग की आशंका से ही कांप उठता है और वे मूर्च्छित हो जाते हैं—

'स तन्निशम्य राजेन्द्रो विश्वामित्रवचः शुभम्।
शोकेन महताविष्टश्चचाल च मुमोह च ॥'
—बा० का० १९/२०

चेतना प्राप्त होने पर वे अनुनय-विनयपूर्वक महर्षि से निवेदन करते हैं—

'ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः।
न युद्धयोग्यमतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥' —बा० का० २०/२

राम से वियुक्त होकर दशरथ को क्षणभर जीवित रहना भी असम्भव प्रतीत होता है—

'विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्त्तमपि नोत्सहे ।
जीवितुं मुनिशार्दूल न रामं नेतुर्महसि ॥' —बा० का० २०/९

राम, चारों पुत्रों में ज्येष्ठ एवं धर्मरक्षक हैं, अतः दशरथ स्वयं कहते हैं कि उनकी राम के प्रति परम प्रीति है—

'चतुर्णामात्मजानां हि प्रीतिः परमिका मम ।
ज्येष्ठे धर्मप्रधाने च न रामं नेतुर्महसि ॥' —बा० का० २०/११

दशरथ के इन वचनों में उनकी अथाह वत्सलता अभिव्यंजित हो रही है। इसी प्रकार वनगमन के अवसर पर कैकेयी का भरत के प्रति, दशरथ और कौसल्या का राम के प्रति तथा सुमित्रा का अपने पुत्र लक्ष्मण से भी अधिक राम के प्रति प्रगाढ़ वात्सल्य अभिव्यक्त हुआ है ।

जब राम के राज्याभिषेक का राजा दशरथ एवं सभासदों द्वारा निश्चय कर लिया जाता है और राजभवन में राम का आगमन होता है, तब पिता दशरथ का हृदय प्रसन्नता से भर उठता है । जैसे सुन्दर वेष-भूषा से सुशोभित अपने प्रतिबिम्ब को दर्पण में देखकर बहुत सन्तोष होता है । उसी प्रकार अपने प्रिय पुत्र राम को देखकर राजा प्रसन्न हो जाते हैं—

'तं पश्यमानो नृपतिस्तुतोष प्रियमात्मजम् ।
अलंकृतमिवात्मानमादर्शतलसंस्थितम् ॥' —अयो० का० ३/३७

वे परम स्नेह पूर्वक राम से कहते हैं—

'ज्येष्ठायामसि मे पत्न्यां सदृश्यां सदृशः सुतः ।
उत्पन्नस्त्वं गुण ज्येष्ठो मम रामात्मजः प्रियः ॥'
—अयो० का० ३/४०

वात्सल्य-रस का आश्रय—कौसल्या

जब राम कौसल्या से राज्याभिषेक का सुखद वृत्तान्त निवेदन करते हैं, तब उनका अन्तःकरण वात्सल्य से अभिभूत हो जाता है । वे आनन्दाश्रुओं को प्रवाहित करती हुई गद्‌गद् कण्ठ से कहती हैं—

'वत्स राम चिरंजीव हतास्तेपरिपन्थिन :
ज्ञातीन् मे त्वं क्रिया युक्तः सुमित्रायाश्च नन्दय ॥
कल्याणे बत नक्षत्रे मया जातोऽसि पुत्रक ।
'येन त्वया दशरथो गुणैराराधितः पिता ॥'
—अयो० का० ४/३९-४०

जिसके पुत्र का राज्याभिषेक होने जा रहा है, उस माता के हृदय की प्रसन्नता का अनुमान मातृहृदय ही कर सकता है—

राम के प्रति दशरथ का स्नेह अपने प्राणों से भी अधिक था। वे राम के अभाव में जीवित रहने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। कैकेयी द्वारा भरत के लिए अयोध्या का राज्य तथा राम के लिए चौदह वर्ष के वनवास की याचना करने पर उन्होंने कैकेयी को जो फटकार लगायी है, उसमें भी राम के प्रति राजा की असीम वत्सलता व्यंजित हो रही है--

'त्वं मयाऽऽत्मविनाशाय भवनं स्वं निवेशिता।
अविज्ञानान्नृपसुता व्याला तीक्ष्णविषा यथा॥'

—अयो० का० १२/६

पुन: वे राम के प्रति अपने प्रगाढ़ वात्सल्य को प्रकट करते हुए कहते हैं—

'कौसल्यां च सुमित्रां च त्यजेयमपि वा श्रियम्।
जीवितं चात्मनो रामं न त्वेव पितृवत्सलम्॥
परा भवति मे प्रीतिदृष्ट्वा तनवमग्रजम्।
अपश्यतस्तु ने रामं नष्टं भवति चेतनम्॥
तिष्ठेल्लोको विना सूर्यं सस्यं वा सलिलं विना।
न तु रामं विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम्॥'

—अयो० का० १२/११-१३

इससे अधिक पुत्र वत्सलता क्या हो सकती है ? वन जाने से पूर्व राम के अन्तिम प्रणाम के लिए राजा के समीप पहुंचने पर तो वे प्रेम से विह्वल होकर मूर्च्छित हो ही जाते हैं। यह स्नेह की पराकाष्ठा है।

वहां पर राम वात्सल्य के आलम्बन विभाव हैं। कैकेयी द्वारा याचित वर के अनुसार राम का वनगमन उद्दीपन विभाव है। राम के गुणों का वर्णन, वन में प्राप्त होने वाले कष्टों की कल्पना, राजा दशरथ का मूर्च्छित हो जाना, कैकेयी को फटकारना आदि अनुभाव हैं। दैन्य, चिन्ता, विषाद आदि संचारी भावों से परिपुष्ट दशरथ के अन्तःकरण में स्थित वात्सल्य स्थायी भाव व्यंग्य है।

वनगमन का समाचार देने के लिए जब राम अपनी जननी के भवन में प्रवष्टि हुए तो माता कौसल्या हर्षित होकर पुत्र की ओर इस प्रकार चली मानों कोई घोड़ी अपने बछड़े को देखकर प्रसन्न होकर उसकी ओर जा रही हो—

'सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम्।
अभिचक्राम संहृष्टा किशोरं वडवा यथा॥'

—अयो० का० २०/२०

जैसे वियोगावस्था में सच्चे प्रेम की परीक्षा होती है, विप्रलम्भ से ही संभोग शृंगार पुष्ट होता है, उसी तरह अपने स्नेहभाजन की विपदावस्था को देखकर स्नेह

करने वाले पात्र का अन्तःकरण जितना अधिक पीड़ित होता है, उतना ही अधिक वात्सल्य रस व्यंजित होता है ।

राम के मुख से चौदह वर्ष के वनवास का दारुण वृत्तान्त सुनकर कौसल्या का हृदय दुःखपयोधि में निमग्न हो जाता है और वह कहती है—

'यदि ह्यकाले मरणं यदृच्छया, लभेत कश्चिद् गुरुदुःखकर्शितः ।
गताहमद्यैव परेतसंसदं, विना त्वया धेनुरिवात्मजेन वै ॥'
—अयो० का० २०/५३

जैसे गाय दुर्बल हो जाने पर भी अपने बछड़े के लोभ से उसका अनुगमन करती है, उसी प्रकार कौसल्या भी राम के साथ वन जाने की इच्छा प्रकट करती है—

'अथापि किं जीवितमद्य मे वृथा, त्वया विना चन्द्रनिभाननप्रभ ।
अनुव्रजिष्यामि वनं त्वयैव गौः, सुदुर्बला वत्समिवाभिकांक्षया ॥'
—अयो० का० २०/५४

राम के बिना कौसल्या को जीवन निरर्थक प्रतीत होता है । स्वजन, देवता तथा पितरों की पूजा और अमृत भी व्यर्थ लगता है । दो घड़ी राम के समीप रहना ही कौसल्या के लिए सम्पूर्ण संसार के राज्य से अधिक सुख देने वाला है—

'किं जीवितेनेह विना त्वया मे, लोकेन वा किं स्वधयामृतेन ।
श्रेयो मुहूर्त्तं तव संनिधानं, ममैव कृत्स्नादपि जीवलोकात् ॥'
—अयो० का० २१/५३

माता कौसल्या के ये वचन वात्सल्य रस की कितनी सुन्दर व्यंजना करते हैं—

'कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तमनुगच्छति ।
अहं त्वानुगमिष्यामि यत्र वत्स गमिष्यसि ॥' —अयो० का० २४/६

यहां पर राम आलम्बन विभाव हैं । राम द्वारा वनगमन का वृत्तान्त सुनाना उद्दीपन विभाव है । कौसल्या का दुःखी होकर विलाप करना और राम के साथ वन जाने की इच्छा प्रकट करना अनुभाव है । विषाद, दैन्य, चिन्ता आदि संचारी भावों से परिपुष्ट माता कौसल्या के अन्तःकरण में स्थित 'वात्सल्य' स्थायी भाव व्यंग्य है ।

कवि ने अनुभावों की सुन्दर योजना करके वात्सल्य-रस को पुष्ट किया है ।

जैसे बंधे हुए बछड़े वाली गाय सायंकाल घर की ओर लौटते समय अपने बछड़े के स्नेह से दौड़ती हुई आती है, उसी प्रकार राम की माता कौसल्या उनकी ओर दौड़ी आती हैं—

'प्रत्यागारमिवायान्ती सवत्सा वत्सकारणात् ।
बद्धवत्सा यथा धेनू राममाताभ्यधावत ।।'
—अयो० का० ४०/४३

माता कौसल्या रुदन करती हुई तथा 'हा राम ! हा राम ! हा सीते ! हा लक्ष्मण !' की रट लगाती हुई रथ के पीछे दौड़ती हैं । राम लक्ष्मण और सीता के लिए उनके नेत्रों से अश्रु-प्रवाहित हो रहे हैं, तथा वे इधर-उधर चक्कर लगाती-सी घूम रही हैं—

'तथा रुदन्तीं कौसल्यां रथं तमनुधावतीम् ।
क्रोशन्सीं राम रामेति हा सीते लक्ष्मणेति च ।।
रामलक्ष्मण सीतार्थं स्रवन्तीं वारिनेत्रजम् ।
असकृत प्रैक्षत स तां नृत्यन्तीमिव मातरम् ।।'
—अयो० का ४०/४४-४५

इस प्रसंग में राम के प्रति कौसल्या के वात्सल्य की अतिशयता को प्रकट करने के लिए कवि ने स्थान-स्थान पर गाय के अपने बछड़े के प्रति असीम प्रेम की उपमा देकर वात्सल्य रस की सशक्त अभिव्यक्ति की है। क्योंकि वात्सल्य रस के चित्रण में ऋग्वेद से लेकर अधुनातन संस्कृत, हिन्दी काव्य में इस उपमा का प्रयोग किया गया है । गौ का बछड़े के प्रति असीम प्रेम सर्वविदित है ।

यहां पर वात्सल्य-रस करुण के क्रोड में क्रीड़ा करता हुआ दिखाई देता है ।

वात्सल्य रस का आश्रय—बाली

राम के बाणों से मरते समय बाली के नेत्र अपने प्रिय पुत्र अंगद को देखकर डबडबा आते हैं । वे उसे सुग्रीव तथा राम को समर्पित कर देते हैं—

'बाष्पसंरुद्धकण्ठस्तु बाली सार्त्तरवः शनैः ।
उवाच रामं संप्रेक्ष्य पंकलग्न इव द्विपः ।।' कि० का० १८/४६

इस प्रसंग में करुण एवं वात्सल्य-रस की धारायें साथ-साथ बहती हुई दिखाई देती हैं । उसके निम्न कथन में करुणा के साथ वात्सल्य की धारा प्रवाहित हो रही है—

'स ममादर्शनाद् दीनो बाल्यात् प्रभृति लालितः ।
तटाक इव पीताम्बुरुपशोषं गमिष्यति ।।
बालश्चाकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रियः ।
तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः ।।'
—कि० का० १८/५१-५२

सुग्रीव के समक्ष भी बाली अपने पुत्र अंगद के प्रति असीम स्नेह प्रकट करता हुआ कहता है—

'मम प्राणैः प्रियतरं पुत्रं पुत्रमिवोरसम् ।
मया हीनमहीनार्थं सर्वतः परिपालय ॥' —कि० का० २२/६

वात्सल्य-रस का आलम्बन—इन्द्रजित्

युद्धक्षेत्र में एक ओर रावणपुत्र इन्द्रजित् युद्ध के लिए खड़े हैं तो दूसरी ओर उसी वीर के पितृव्य विभीषण राम-पक्ष की ओर से युद्ध के लिए तत्पर हैं। इस समय दोनों एक-दूसरे के शत्रु हैं, किन्तु अपने भातृपुत्र के प्रति सहज वत्सलता का भाव विभीषण के हृदय को अभिभूत कर देता है और सहसा ही उनके मुख से शब्द निकल पड़ते हैं, जो वात्सल्य की मार्मिक अभिव्यक्ति करते हैं—

'हन्तुकामस्य मे वाष्पं चक्षुश्चैवं निरुध्यति ।' —यु० का० ८९/१८

कितना स्नेह भरा है, इन शब्दों में। इन्द्रजित् का वध हो जाने पर रावण द्वारा पुत्र-शोक से किए गए विलाप के समय भी वात्सल्य-भाव प्रचुर मात्रा में मुखरित हुआ है। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि वाल्मीकि ने ऐसे प्रसंगों में जहां स्वतंत्र रूप से वात्सल्य की सुन्दरतम योजना की जा सकती थी, नहीं की है। रामायण में करुण-रस की धारा किसी न किसी रूप में सर्वत्र प्रवाहित हो रही है। अतः वात्सल्य भी अधिकांशतः करुण के आश्रित ही है।

भारतीय शास्त्रों में पुत्र को पिता के शरीर का ही नहीं अपितु आत्मा का अंश माना गया है—

'अंगादंगात् संभवसि हृदयादधि जायसे ।
आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम् ।

रावण सब की दृष्टि में भले ही दुष्ट हो, किन्तु इन्द्रजित् उसका औरस पुत्र था, वह भी महान् वीर। उसके प्रति रावण के अन्तःकरण में स्नेह की अनन्त धाराओं का प्रवाहित होना स्वाभाविक ही है।

इन्द्रजित् के बिना तीनों लोक और वनों से युक्त सारी पृथ्वी रावण को सूनी दिखाई देती है—

'अद्य लोकास्त्रयः कृत्स्ना पृथिवी च सकानना ।
एकनेन्द्रजिता हीना शून्येव प्रतिभाति मे ॥'
—यु० का० ९२/११

कौसल्या राम के वियोग में तड़पती हुई कहती हैं कि, मैंने पूर्वजन्म में अपने बच्चों को दूध पिलाने के लिए तत्पर मातओं के स्तन काट डाले होंगे अथवा गौओं

के वत्स उनसे छीन लिए होंगे—

'निःसंशयं मया मन्ये पुरा वीर कदर्यया।
पातुकामेषु वत्सेषु मातृणां शातिताः स्तनाः ।।'
—अयो० का० ४३/१७

'मन्ये खलु मया पूर्वं विवत्सा बहतः कृताः।
प्राणिनो हिंसिता वापि तन्मामिदमुपस्थितम् ।।'
—अयो० का० ३९/४

इस कथन से मर्माहत होकर हम शास्त्रीय दृष्टि से यह नहीं निश्चय कर पाते कि यहां कौन सा चमत्कार है ? इसे क्या नाम दिया जाए ? यहां वात्सल्य-रस की प्रधानता है अथवा विषाद संचारी है ? अथवा स्थायी भाव शोक है ? यदि कवि की भावना को भली-भांति देखा जाए तो इस उक्ति का-चमत्कार पुत्र-वत्सला माता की आत्माभिव्यंजना में ही है यद्यपि इसकी परिणति दारुण शोक में होती हुई दिखाई देती है, इसे यदि वात्सल्य-रस का विप्रलम्भ पक्ष कहा जाए तो असमीचीन न होगा।

वात्सल्य-रस के आश्रय—राम

राम की अपने भाइयों के प्रति वत्सलता अनेक अवसरों पर परिलक्षित होती है। जब लक्ष्मण अपने भाई भरत के प्रति क्रोध प्रकट करते हैं, तब राम लक्ष्मण से कितने स्नेहपूर्वक कहते हैं--

'धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण।
इच्छामि भवतामर्थे एतत् प्रतिशृणोमि ते ।।' —अयो० का० ९७/५

वे पुनः शपथ लेकर कहते हैं कि मैं भाइयों के संग्रह और सुख के लिए ही राज्य चाहता हूं—

'भ्रातृणां संग्रहार्थे च सुखार्थे चापि लक्ष्मण।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे ।।'—अयो० का० ९७/६

भ्रातृ-वात्सल्य से ओत-प्रोत हृदय वाले राम को अपने इन अनुजों के साथ भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अनुसार व्यवहार करना पड़ा है। उन भाइयों में लक्ष्मण जैसा सेवा-तत्पर एवं उग्र स्वभाव वाला भाई भी है, और भरत जैसा भाई भी है, जिसे राज्य देने के लिए विमाता कैकेयी ने राम को वनवास दिलाया। इन अनुजों से विविध प्रसंगों में राम का जो व्यवहार रहा है तथा राम के हृदय-सागर में जो उनके प्रति भाव-तरंगें उत्पन्न हुई हैं, उन सबसे भ्रातृ-वात्सल्य का परिचय मिलता है।

लक्ष्मण के प्रति—वात्सलता

आदिकवि ने राम तथा लक्ष्मण के पारस्परिक स्नेह का विस्तृत वर्णन किया है। जीवन पर्यन्त दोनों का सतत् साहचर्य रहा है। राम, लक्ष्मण से और लक्ष्मण राम से एक क्षण के लिए भी पृथक् नहीं हुए हैं। सुख, दुःख में दोनों का सहगमन उनके अनुपम भ्रातृ-स्नेह को दर्शाता है। वाल्मीकि ने इन दोनों के बाल्यकालीन स्नेह का वर्णन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। लक्ष्मण मानो राम के बाहर रहने वाले दूसरे प्राण हों, उसके विना राम को नींद नहीं आती थी। जो उत्तम भोजन राम के लिए लाया जाता था, राम उसमें से लक्ष्मण को दिये विना नहीं खाते थे, और जब कभी वे अश्व पर सवार होकर मृगया के लिए जाते तो लक्ष्मण धनुष लेकर उनकी रक्षा के लिए उनके पीछे जाता है—

'लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो बहिःप्राण इवापरः ।
न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः ।।
सृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना ।
यदा हि हयमारुढ़ो मृगयां याति राघवः ।।
अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन् ।
भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणस्यावरजो हि सः ।।'

—बा० का० १८/३०-३२

राम का उत्कृष्ट भ्रातृ-स्नेह उस समय परिलक्षित होता है, जब वे पिता से राज्याभिषेक का आदेश प्राप्त करके अपने अनुज से अपने साथ वसुन्धरा का शासन करने को कहते हैं—

'लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधित्वं वसुंधराम् ।
द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्री रुपस्थिता ।।
सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च ।
जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थभिकामये ।।'

—अयो० का० ४/४३-४४

राज्य का साथ-साथ भोग कराने वाले भाई बहुत ही विरले होते हैं। लक्ष्मी तो भाई-भाई को विलग कर देती है। परन्तु यहां भातृ-वात्सलय में लक्ष्मी भाई पर न्यौछावर की जा रही है। लंका विजयोपरान्त राम जब अयोध्या में अपना राज्याभिषेक कराते हैं तो सर्वप्रथम युवराज पद के लिए लक्ष्मण से ही कहते हैं—

'आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां, गां पूर्वराजाभ्युषितां बलेन ।
तुल्यं मया त्वं पितृभिर्धृता या, तां यौवराज्येधुरमुद्वहस्व ।।'

—यु० का० १२८/९२

राम का लक्ष्मण के प्रति स्नेह सीता से भी अधिक है। इस तथ्य की पुष्टि उस समय होती है, जब युद्धस्थल में दोनों भाई इन्द्रजित् के नागपाश में बंधे होते हैं और चेतनावस्था में आकर मूर्च्छित लक्ष्मण को देखकर राम कहते हैं—मुझे सीता को प्राप्त करके अथवा जीवन को धारण करके क्या करना है, जबकि आज मैं अपने पराजित हुए भाई को युद्धस्थल पर पड़ा देख रहा हूं। इस मर्त्यलोक में ढूंढने पर सीता जैसी नारी तो मिल सकती है, परन्तु लक्ष्मण जैसा मन्त्री एवं युद्ध-कुशल भाई नहीं मिल सकता—

'किं नु मे सीतया कार्यं लब्ध्या जीवितेन वा।
शयानं योऽद्य पश्यामि भ्रातरं युधि निर्जितम्॥
शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता।
न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकः॥'

—यु० का० ४६/५-६

वाल्मीकि ने लक्ष्मण के प्रति राम के स्नेह का मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है। वात्सल्य से आत्मविभोर राम अपने स्नेह को शब्दों में प्रकट नहीं करते हैं। युद्धस्थल पर जब लक्ष्मण इन्द्रजित् का वध करके आता है तो राम रक्त स्नात बदन वाले लक्ष्मण को गोद में बिठा लेते हैं और उसे हृदय से लगाकर पुनः पुनः अत्यन्त स्नेह से उसकी ओर देखते हैं। घावों के दुःख से सन्तप्त लक्ष्मण के मस्तक को सूंघकर उसके घावों पर हाथ फेरते हैं—

'स तं शिरस्तुपाघ्राय लक्ष्मणं कीर्तिवर्धनम्।
लज्जमानं बलात् स्नेहादंकमारोप्य वीर्यवान्॥
उपवेश्य तमुत्संगै परिष्वज्यावपीडितम्।
भ्रातरं लक्ष्मणं स्निग्धं पुनः पुनरूदैक्षत॥'

—यु० का० ९१/९-१०

रावण जब लक्ष्मण पर शक्ति का प्रहार करता है तो राम लक्ष्मण के कल्याण हेतु शक्ति के निष्फल हो जाने की कामना करते हैं। उत्कृष्ट भ्रातृ-स्नेह के कारण ही वे लक्ष्मण के हृदय से शक्ति को निकालते समय अपने ऊपर गिरते हुए रावण के बाणों की भी चिन्ता नहीं करते हैं। और मूर्च्छित भाई को हृदय से लगा लेते हैं—

'तस्य निष्कर्षतः शक्तिं रावणेन बलीयसा।
शराः सर्वेषु गात्रेषु पातिता मर्मभेदिनः॥
अचिन्तयित्वा तान् बाणान् समाश्लिष्य च लक्ष्मणम्।
अब्रवीच्च हनुमन्तं सुग्रीवं च महाकपिम्॥'

—यु० का० १००/४४-४५

शक्ति से घायल भाई को देखकर राम का हृदय क्रन्दन कर उठता है। उन्हें भाई के समान कोई वस्तु प्रिय नहीं लगती है। उनकी इन्द्रियां व्याकुल हो जाती हैं। युद्ध करने का साहस टूट जाता है। वे शोकाकुल होकर विलाप करते हैं। वे लक्ष्मण को सहोदर मानते हुए कहते हैं—

'देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥' —यु० का० १०१/१५

लक्ष्मण को चेतनावस्था में आया देखकर राम का मन प्रफुल्लित हो जाता है। भाई को गले लगाते ही उनकी आंखों में आंसू छलक आते हैं—

'एह्येहीत्यब्रवीद् रामो लक्ष्मणं परवीरहा।
सस्वजे गाढमालिंग्य बाष्पपर्याकुलेक्षणः॥' —यु० का० १०१/४७

यहां पर लक्ष्मण वात्सल्य रस के आलम्बन विभाव हैं। उनकी राम के प्रति अनन्य भक्ति एवं राम के साथ वन के कष्टों को सहना, युद्ध करते समय मूर्च्छित हो जाना आदि उद्दीपन विभाव हैं। राम द्वारा लक्ष्मण के गुणों की प्रशंसा, उसको अपने जीवन का सर्वस्व कहना, उसके मूर्च्छित होने पर अत्यधिक व्याकुल हो उठना, चेतनावस्था को प्राप्त कर लेने पर आनन्द-विभोर हो जाना तथा नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का छलक उठना आदि अनुभाव हैं। कभी हर्ष, उत्सुकता और कभी चिन्ता, विषाद आदि संचारी भावों से परिपुष्ट राम के अन्तःकरण में स्थित वात्सल्य स्थायी भाव व्यंग्य है।

राम के इस वात्सल्य की पुष्टि उस समय होती है, जब काल के साथ की गयी प्रतिज्ञा के भंग हो जाने पर वे लक्ष्मण को राज्य से निर्वासित करके स्वयं भी वहां नहीं ठहरते हैं।

लक्ष्मण द्वारा निर्मित पर्णशाला को देखकर राम इतने हर्षोल्लासित हो जाते हैं कि वे लक्ष्मण की भ्रातृ-भक्ति में पिता के वात्सल्य का अनुभव करते हैं। राम लक्ष्मण को हृदय से लगाकर कहते हैं—

'भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण।
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम॥'
—अर० का० १५/२९

राम का वात्सल्यातिशय ही लक्ष्मण से राज्य के सभी सुखों को छुड़वा देता है। और राम को ही भ्राता, भर्ता, बन्धु एवं पिता के समान मानने के लिए विवश कर देता है--

'अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये।
भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः॥'
—अयो० का० ५८/३१

भरत के प्रति वत्सलता

यद्यपि राम का राम के साथ अभिन्न साहचर्य नहीं रहा हैं तथापि भरत के प्रति राम का स्नेह लक्ष्मण से कम नहीं है। वाल्मीकि रामायण में राम का भरत के प्रति स्नेह कुछ विशेष महत्व रखता है। राम की दृष्टि में भरत का स्थान बहुत ऊंचा है। इसीलिए वे सुग्रीव के समक्ष कहते हैं कि सभी भाई भरत के समान नहीं हो सकते—

'न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः ॥'

—यु० का० १५/१८

कितना वात्सल्य छलक रहा है राम के इन शब्दों में। जिस भाई के कारण राम को जीवन के प्रत्येक सुख ऐश्वर्य से वंचित होना पड़ा उसके प्रति राम के हृदय में अगाध वात्सल्य है। वनगमन के समय वे सीता से कहते हैं—

'भ्रातृपुत्र समौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः।
त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम ॥' —अयो० का० २६/३३

राम, भरत के प्रति त्याग की प्रवल भावना रखते हैं। उनका राम के प्रति इतना उत्कट वात्सल्य है कि वे राज्य ही नहीं अपितु सीता तथा अपने प्राण भी भरत को देने के लिए तत्पर हैं—

'अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिस्टान् धनानि च।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः ॥'

—अयो० का० १९/७

भरत के प्रति राम का वात्सल्याधिक्य उस समय परिलक्षित होता है, जब वे चित्रकूट में भरत के आगमन का समाचार सुनकर लक्ष्मण से इस प्रकार कहते हैं—

'नहि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो न प्रियं वचः।
अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते ॥'

—अयो० का० ९७/१५

राम चिरकाल से वियुक्त भाई से मिलने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। उनके मन में किसी प्रकार की ईर्ष्या-द्वेष की भावना नहीं है। भरत से मिलते ही राम के नयनों से अश्रुधार प्रवाहित हो जाती है—

'शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन्।
तावुभौ च समालिंग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत् ॥'

—अयो० का० ९९/४०

वे जटा चीर वस्त्र धारण किए, हाथ जोड़कर पृथ्वी पर पड़े भरत को अपने हाथों से उठा लेते हैं। और उसका मस्तक सूंघकर उसे हृदय से लगा लेते हैं। उसे गोद में बिठाकर कुशल समाचर पूछते हैं—

'जटिलं चीरश्वसनं प्राञ्जलिं पतितं भुवि।
ददर्श रामो दुर्दर्शं युगान्ते भास्करं यथा॥
कथंचिदविज्ञाय विवर्णवदनं कृशम्।
भ्रातरं भरतं रामः परिजग्राह पाणिना॥
आघ्राय रामस्तं मूर्ध्नि परिष्वज्य च राघवम्।
अंके भरतमारोप्य पर्यपृच्छत सादरम्॥'

—अयो० का० १००/१-३

भरत के प्रति राम के स्नेह का चरमोत्कर्ष उस समय विशेष रूप से दृष्टि-गोचर होता है, जब वे लंका पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त एक क्षण भी वहां नहीं ठहरते हैं। विभीषण के आग्रह पर भी राम स्नानादि नहीं करते हैं। भरत से मिलने के लिए राम का हृदय अत्यन्त व्याकुल हो रहा है। अपने मन की दशा प्रकट करते हुए वे कहते हैं—

'न खल्वे तन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः॥
मां निवर्त्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः।
शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया॥'

—यु० का० १२१/१८-१६

नन्दी ग्राम में राम का भरत से मिलन अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। भरत पुष्पक विमान पर आरूढ़ राम को प्रणाम करते हैं। राम तत्क्षण विमान को पृथ्वी पर उतार कर भरत को उसमें बिठा लेते हैं। अति स्नेह से उसे गोद में बिठाकर हृदय से लगा लेते हैं—

'तं समुत्थाय काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथं गतम्।
अंके भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे॥' —यु०का० १२७/४१

राम की अपने पुत्रों के प्रति वत्सलता

आदिकवि ने रामायण में अपने पुत्रों लव और कुश के प्रति राम के वात्सल्य का विस्तृत वर्णन नहीं किया है। राम प्रारम्भ में तो पुत्रों के प्रति उदासीन दिखाई देते हैं। राम के इस प्रकार के व्यवहार को देखकर आश्चर्य भी होता है। भ्रातृ-स्नेह में अविरल अश्रुधारा प्रवाहित करने वाले राम अपने औरस-पुत्रों के प्रति निर्मम क्यों हैं?

अश्वमेघ यज्ञ के समय रामायण का गान करते लव-कुश को सीता के यमक पुत्र समझकर भी राम अति गम्भीर रहते हैं। उनका हृदय वात्सल्य से द्रवित नहीं होता है। जब सभा के मध्य वाल्मीकि सत्य की शपथ ग्रहण करके लव और कुश को राम के पुत्र बतलाते हैं, तब भी राम के अन्तःकरण में थोड़ा भी परिवर्तन नहीं होता है।

किन्तु इन सन्दर्भों के आधार पर यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि राम का हृदय वात्सल्य-रहित था। राम के समक्ष लोक-मर्यादा का प्रश्न था। उन्होंने वात्सल्य के भाव को केवल लोकमर्यादा के कारण दबा रखा था। महाप्रयाण के समय जब राम लव एवं कुश का राज्याभिषेक करते हैं—तो उस समय उनका वात्सल्य पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है। वे अपने अभिषिक्त पुत्रों को गोद में बिठा लेते हैं, उन्हें गले लगाकर बार-बार उनके मस्तकों को सूंघते हैं—

'अभिषिक्तौ सुतावंके प्रतिष्ठाप्य पुरे ततः।
परिष्वज्य महाबाहुर्मूर्ध्न्युपाघ्राय चासकृत् ॥' —उ० का० १०७/१८

राम की प्रजा—वत्सलता

आदिकवि ने प्रजा के प्रति राम के वात्सल्य का विशद वर्णन किया है। राम अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण प्रजा को बाहर रहने वाले प्राणों के समान प्रिय हैं।

कवि ने वन-गमन के समय राम की प्रजा-वत्सलता का जो चित्रण किया है, वह अत्यन्त मार्मिक है। वनवास के समय समस्त प्रजावर्ग रोता हुआ राम के रथ का अनुगमन करता है—

'अनुरक्ता महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्।
अनुजग्मुः प्रयान्तं तं वनवासाय मानवाः ॥' —अयो० का० ४५/१

वृद्ध ब्राह्मणों को आर्त्त भाव से विलाप करते देखकर राम रथ से नीचे उतर आते हैं। उनके हृदय में वात्सल्य तथा दृष्टि में करुणा है, अतः वे रथ से चलकर पैदल चलने वाले ब्राह्मणों को पीछे छोड़ने का साहस नहीं कर सकते—

'एवमार्तप्रलापांस्तान् वृद्धान् प्रलपतो द्विजान्।
अवेक्ष्य सहसा रामो रथादवततार ह ॥'
—अयो० का० ४५/१७

वनवास के समय अपने साथ आई प्रजा को वृक्षों की जड़ों में सोया देखकर राम का हृदय द्रवित हो उठता है। वे वहां से शीघ्र चल पड़ते हैं, ताकि प्रजा को इस प्रकार वृक्ष की जड़ों में सोना न पड़े—

'यावदेव तु संसुप्तास्तावदेव वयं लघु ।
रथमारुह्य गच्छामः पन्थानमकुतो भयम् ।।
अतो भूयोऽपि नेदानीमिक्ष्वाकुपुरवासिनः ।
स्वपेयुरनुरक्ता मा वृक्षमूलेषु संश्रिताः ।।'

—अयो० का० ४६/२१-२२

इस प्रकार रामायण में आदिकवि ने वात्सल्य-रस की सुन्दर अभिव्यंजना की है—

—०—

सप्तम अध्याय

वाल्मीकि-रामायण में प्रकृति-चित्रण और रस निष्पत्ति में उसकी सहकारिता

काव्य में प्रकृति-चित्रण की परम्परा

सृष्टि रूपी वृक्ष पर प्रकृति और मानव-जीवन एक साथ ही खिलने वाले दो पुष्प हैं, जो परस्पर सुवासित होते हैं। प्रकृति में मानव-जीवन के व्यापार और मानव-जीवन में प्रकृति का सौन्दर्य लक्षित होता है। प्रकृति और मानव के साहचर्य को निरुपित करते हुए कहा गया है—"वैज्ञानिकों का विकासवाद और आस्तिकों की अपौरुषेय सृष्टि-कल्पना दोनों ही इस विषय में एकमत हैं कि मानव ने प्रकृति के विशाल क्रोड में ही जन्म धारण किया और उसके साहचर्य में चेतना को क्रमशः विकसित किया[1]।"

मानव स्वभाव से ही सौन्दर्य का उपासक है। वह जीवन से सम्बद्ध समस्त व्यापारों को सौन्दर्य से परिपूर्ण देखना चाहता है और प्रकृति तो सौन्दर्य का आगार है। नीलाभ गगन, श्यामघटायें, इन्द्र धनुष, विमल चांदनी, सरिताओं की कल-कल ध्वनि, दूब की हरीतिमा, वन में सानन्द क्रीड़ा करते हुए पशु-पक्षी आदि ऐसे ही सहज सौन्दर्ययुक्त पदार्थ हैं, जो मानव को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। अतएव सहज सुन्दरता के कारण प्रकृति काव्य-सृजन के क्षणों में अनिवार्यतः अन्तर्मुक्त हो जाती है।

"मानव प्राकृतिक व्यापारों में अपने सुख-दुःख की छाया देखता है। प्रकृति, सुख के क्षणों में हमारे उल्लास को बढ़ाती है तथा दुःख के समय कभी राहत देती है तो कभी हमारे दुःख को और भी अधिक तीव्र कर देती है। चांदनी रात, रमणीय वनस्थली, झरने आदि प्राकृतिक दृश्यों में हमें रति का प्रसार दृष्टिगत होता है[2]।"

इसी प्रकार पतझड़ के रूखेपन में हमें अपना विषाद दिखाई देता है तथा झंझावात, कांटों, दुर्गम पहाड़ियों में हमें अपने जीवन की कठिनाइयों की झलक मिलती है। मानव प्राकृतिक चेष्टाओं में अपनी भावनाओं का बिम्ब-प्रतिबिम्ब देखता

---

१. डा० किरण कुमारी गुप्त—हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण, पृ० १

२. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—वाङ्मय विमर्श, पृ० १४४

है। अतः काव्य में मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के साथ-साथ प्रकृति की भी अभिव्यक्ति सहज रूप में हो जाती है। कवि आनन्दभोगी एवं सौन्दर्य का उपासक होता है। उसका प्रकृति से रागात्मक सम्बन्ध है। वह प्रकृति की शोभा पर आनन्दमग्न हो उठता है। वाटिका में विकसित सुमनों को देखकर कवि का मन हर्ष और पुलक से भर जाता है। श्याम-घटाओं को देखकर उसका मन-मयूर प्रसन्नता से नृत्य करने लगता है।

इस प्रकार अनेक कवियों को काव्य रचना की प्रेरणा प्रकृति से ही प्राप्त होती रही है।

वैदिक साहित्य में प्रकृति-चित्रण

भारतीय काव्य चेतना का प्रस्फुटन वैदिक साहित्य से आरम्भ होता है। वेदों का अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि वैदिक ऋषि प्रकृति के मांगलिक और सौन्दर्य-मण्डित रूप पर मुग्ध थे। वे प्राकृतिक शक्तियों उषा, मरुत, वरुण आदि को देखकर आत्मविभोर हो उठे और उनसे लोक कल्याण की याचना करने लगे—

'पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन।
स्तोतारस्त इह स्मसि[१]।'

वेदों में प्रकृति को दृष्टान्त रूप में भी खूब अपनाया गया है। सूर्य के उदाहरण से प्रतापी राजा, पुरुष और पति के कर्तव्यों की विशद् व्याख्या तथा उषा के माध्यम से कन्या, पत्नी आदि कर्तव्यों का दिग्दर्शन कराया है—

'आधा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती।
जरसन्ती वृजनं पद्वदीयत उत् पातयति पक्षिणः[२]।।'

वेदों में प्रकृति का मानवीकरण भी दिखाई देता है—

'वयश्चिते पत्त्रिणो द्विपदच्चतुष्पदर्जुनि।
उषः प्रारंन्नृतूरनु दिवो अन्तेभ्यसपरि[३]।।'

प्रकृति-चित्रण का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि काव्य-सृजन के प्रथम उन्मेष से प्रकृति का उससे उसी प्रकार अन्तरंग और अभिन्न सम्बन्ध रहा है, जिस प्रकार काव्य और मानवीय जीवन का। फिर भी इतना अवश्य रहा कि कभी प्रकृति के प्रति अधिक रागात्मक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति हुई तो कभी अपेक्षाकृत कम। किन्तु उसकी प्रवाहमान धारा तीव्र या मन्थर गति से अवश्य प्रवाहित होती रही है।

---

१. ऋक्० ६/५४/९
२. ऋक्० १/४९/३
३. ऋक्० १/४८/५

यद्यपि समस्त प्रकृति एक अखण्ड चेतना है और उसे खण्ड-खण्ड रूप में देखने से उसका सौन्दर्य बिखर जाता है, तथापि अध्ययन की सुविधा के लिए प्रकृति-चित्रण की अनेक प्रणालियों का निरूपण विद्वान् समीक्षकों ने किया है, किन्तु यहां पर उन सब प्रणालियों पर विचार न करके केवल रस-निष्पति में सहयोगी रूप का ही विवेचन प्रासंगिक होगा।

रस-निष्पति में प्रकृति के आलम्बन रूप की सहकारिता

कवि का हृदय जब प्रकृति में पूर्णतः रम जाता है और वह उसको अपनी लेखनी से अंकित कर देता है तो इस प्रकार का चित्रण-प्रकृति का आलम्बन रूप कहा जाता है। ऐसे चित्रणों में प्रकृति साधन के साथ स्वयं साध्य भी बन जाती है। प्रकृति सौन्दर्य का आगार है। पृथ्वी, नीलगगन, सूर्य और चन्द्रमा का अस्तोदय, उडुगणों का टिमटिमाना, सागर की अपार जलराशि में उठती-गिरती लहरें, और ऋतुओं का विभिन्न परिधानों में सुसज्जित होकर इठलाना आदि में प्रकृति का राशि-राशि नैसर्गिक सौन्दर्य भरा पड़ा है। प्रकृति से बढ़कर अधिक सौन्दर्य अन्यत्र कहां हैं ? प्रकृति सौन्दर्य का अक्षय भण्डार है। और सौन्दर्य रति का प्रेरक होकर शृंगार-रस की निष्पति में सहायक होता है, क्योंकि सौन्दर्य रति का आलम्बन अथवा आश्रय माना गया है।

प्रकृति का सौन्दर्यमण्डित सुकुमार रूप जहां शृंगार रस का परिपोषक है, वहां उसमें विराट् और भयानक रूपों की कमी नहीं है, जो अद्भुत एवं भयानक रस के आलम्बन बन जाते हैं। असीम पयोनिधि का विस्तार मदमस्त गजों का विशालकाय रूप, पर्वतों के गगनचुम्बी शिखर, प्रलयंकारी घनघोर घटायें और विद्युत का भीषण गर्जन आदि में प्रकृति के भयानक और विस्मयोत्पादक रूप परिलक्षित होते हैं।

रस-निष्पति में प्रकृति के उद्दीपन रूप की सहकारिता

प्रकृति का उद्दीपन रूप हमारी संवेदनाओं को और भी अधिक उत्तेजित करता है। प्रकृति के मधुर, विराट् और उग्र तथा भयावह रूपों में ऐसी शक्ति और क्षमता विद्यमान है कि मानव उनसे अवश्य प्रभावित होता है। प्रातः और सन्ध्याकालीन बेला, निर्जन वनस्थली, जलप्रपात की कल-कल ध्वनि, चन्द्रिका की धवलता आदि प्राकृतिक व्यापार अज्ञात रूप में ही हमारी काम-वासना में वृद्धि कर देते हैं।

प्रकृति के उद्दीपन-रूप का सबसे अधिक महत्त्व शृंगार के क्षेत्र में होता है। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्ष प्रकृति से पुष्ट होते हैं। "प्रकृति मानवीय वासना को प्रत्यक्ष रूप से उभार देती है। पशु-पक्षियों की कामपरक चेष्टाओं का

मानवीय व्यापारों से पूर्ण साम्य है । अतः इनकी इस प्रकार की चेष्टाओं को देखकर नायक-नायिका परस्पर आलिंगन, चुम्बन आदि करने के लिए उद्विग्न हो उठते हैं । विमल ज्योत्स्ना, प्रातः और सन्ध्यकाल का सुखद दृश्य, कलियों का मधुर विकास, पुष्पों का मृदुल हास्य, बलखाती हुई सरिताओं के तट प्रान्त आदि प्राकृतिक दृश्य संयोग के समय अत्यधिक कामोद्दीपक होते हैं[1] ।"

संयोग पक्ष में प्रेमी युग्म क्रीड़ाएं, वन-विहार, कुंज-विहार, जल-क्रीड़ा, नौका-विहार, पुष्पचयन, केशों में फूल लगाना, आदि प्रकृति के रमणीय अंचल में ही सम्पन्न होती हैं । प्रेम-पात्रों की विविध क्रीड़ाओं के लिए प्रकृति से बढ़कर दूसरा स्थान नहीं । ये क्रीड़ायें रति को पूर्ण बनाने और प्रेम को चिर-स्थायी रूप प्रदान करने में परम सहायक सिद्ध होती है । अतः प्रेम-पात्रों की क्रीड़ाओं की दृष्टि से भी प्रकृति का शृंगार के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है ।

संयोग में 'षड्ऋतु-वर्णन' की परम्परा शृंगार-प्रधान काव्यों में चली आ रही है । ऋतुओं के परिवर्तन का प्रभाव नायक-नायिका पर पड़ता है । वर्षा-ऋतु में क्षण-क्षण उठते हुए विविध रंग के बादल, मस्तभरी फुहार, इन्द्रधनुष का नभ-मण्डल पर अर्द्धचक्र, शरदकालीन ज्योत्स्ना, बसन्त में पुष्पों की शोभा आदि निश्चय ही कामोद्दीपक सिद्ध होते हैं ।

संयोग में मलय-समीर, शीतल चन्द्रिका आदि पारस्परिक आकर्षण को बढ़ाते हैं, किन्तु वियोग में प्रकृति की समस्त चेष्टाएं विरहीजनों को कामोद्दीप्त तथा उन्मत्त बना देती हैं । हमारे काव्यों में अधिकांशतः विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत ही प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन है । सामान्य रूप से मधुर और सुन्दर प्राकृतिक दृश्य सुख की वृद्धि और भीषण तथा भयानक दृश्य दुःख की वृद्धि करते हैं । किन्तु यह बात सभी स्थितियों में चरितार्थ नहीं होती ।

वस्तुतः यह मनोवैज्ञानिक सत्य भी है, जब हम दुःख और पीड़ा का अनुभव कर रहे होते हैं, तब पहले हमारा ध्यान उल्लास प्रदायक उपकरणों तक जाता ही नहीं और यदि चला भी जाता है तो उनके प्रति झुंझलाहट और खीझ का भाव ही उद्बुद्ध होता है । हमें वे उपहास करते हुए प्रतीत होते हैं । प्रकृति का उल्लास पीड़ा देने लगता है ।

संयोग में प्रकृति प्रेम-पात्रों की क्रीड़ाओं का केन्द्र बन जाती है, किन्तु विरह में वही प्रकृति और क्रीड़ा-स्थल प्रिय-पात्र के सानिध्य में भुक्त आनन्द का स्मरण कराकर विरह-व्यथित कर देते हैं ।

---

१. डा० सुखदेव—भक्तिकाव्य में प्रकृति—चित्रण, पृ० ५१

विरह में कविगण नायक-नायिकाओं की कामदशाओं का वर्णन करते हैं। जब संयोग-पक्ष प्रकृति के सुखद अंचल में व्यतीत होता है, तब स्वभावतः ही विरह-भाव की अभिव्यक्ति में प्रकृति का समावेश, स्मृति, गुणकथन, उन्माद आदि के रूप में अवश्य हो जाता है। काम-दशाओं की अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में प्राकृतिक अवश्य ही सन्ताप और विरह-भाव की वृद्धि के रूप में आती है।

इस प्रकार यह सुस्पष्ट है कि प्रकृति शृंगार के क्षेत्र में अत्यन्त व्यापक रूप में आती है। इसीलिए आचार्य भरत ने प्रकृति को मात्र शृंगार का विभावन व्यापार स्वीकार किया है[1]।

शृंगार के क्षेत्र में प्रकृति को अधिकाधिक मात्रा में स्थान मिलने के कुछ महत्वपूर्ण कारण भी हैं, जो कि इस प्रकार हैं—

(१) शृंगार मानव-मात्र की मूल और प्रधान भावना है। मूल भावना को उद्दीप्त करने के कारण स्वभावतः ही इसका महत्व शृंगार के क्षेत्र में विशेष है।

(२) शृंगार के क्षेत्र में प्रकृति अनेक प्रकार से सहयोग प्रदान करती है। वन, उपवन, सरोवर, झील, सरिता, वृक्षादि प्रेमी-युग्म की क्रीड़ाओं के लिए उपयुक्त माध्यम का कार्य करते हैं। प्रकृति की इन वस्तुओं के बिना शृंगार का माधुर्य ही धूमिल पड़ जाएगा।

(३) प्रकृति-प्रेम-पात्रों के मिलन के लिए अनुकूल परिवेश करती है।

(४) सम्पूर्ण प्राकृतिक अवयव मूल रूप से मधुर और सुन्दर तथा विराट् आदि गौण रूप से हैं जो कि कामवासना को उद्दीप्त करते हैं।

शृंगार के साथ-साथ प्रकृति शृंगारेतर रसों (भय, शोक, उत्साह आदि) में भी बराबर उद्दीपन का कार्य करती है। अन्तर केवल इतना ही है कि शृंगार के क्षेत्र में इसका समाहार अत्यन्त व्यापक रूप में होता है और अन्य रसों में कम।

रामायण में प्रकृति-चित्रण

वाल्मीकि जहां महान् कवि थे, वहां साक्षात्कृत धर्मा महर्षि भी थे। रामायण की रचना तमसा नदी के तट पर, चित्रकूट के शिखरों की छाया में, सर-सरिता-वन-पर्वत से घिरे आश्रम में ऋतुओं से अलंकृत और विहगों के कलगान से कूजित प्रकृति के मुक्त-प्रांगण में हुई थी। उस समय तक ऋचाओं की गूंज स्पष्ट स्वरों में अवशिष्ट थी, प्रकृति के प्रति भय, विस्मय, विनय और प्रीति के संस्कार सजीव थे, प्रकृति वरदात्री थी और साथ ही मानव-जीवन के शृंगार अर्थात् अलंकरण में भी सहयोगिनी बनने वाली थी। अतः आदिकवि ने जहाँ प्रकृति के भव्य और विराट्

---

१. ना० शा० ६/४५ की वृत्ति

दृश्य प्रस्तुत किए हैं, वहां उसने प्रकृति के जीवन में गहराई से झांककर उसमें मानव-जीवन के समस्त क्रिया-कलापों का, उसके हास और अश्रु, आशा और निराशा, उल्लास और विषाद आदि का भी दर्शन किया है। उसने प्रकृति और मानव को सहोदर के रूप में देखा है, वे परस्पर प्रीति में पगे हुए हैं। प्राकृतिक विभूतियों के दर्शन से मानव उल्लसित होकर नाचता हुआ दृष्टिगोचर होता है और दूसरी ओर मानवीय विपदाओं पर प्रकृति अश्रु प्रवाहित करती हुई दिखलाई पड़ती है।

राम-सीता के वनवास में चित्रकूट और मन्दाकिनी आनन्दोल्लास के स्रोत प्रवाहित करते हैं और वे अपने को अयोध्या से कहीं अधिक सुखी अनुभव करने लगते हैं, तो दूसरी ओर सीता के हरण पर सारी प्रकृति विशेषतः पंचवटी और वेत्रवती, असहायतापूर्वक अश्रु भी बहाती हैं।

मानव और प्रकृति के जीवन को इस प्रकार एकसूत्रता में गूंथने के अतिरिक्त आदिकवि ने मानवीय सौन्दर्य के निरूपण के लिए प्रकृति के अपार-अगाध कोष से नाना रत्नाभरण भी बटोरे हैं। नायक-नायिका के नख-शिख इन प्राकृतिक आभरणों (उपमानों) से जगमगा उठे हैं। आदिकवि में प्रकृति चित्रण की जैसी बहुलता, विविधता और व्यापकता तथा सजीवता है, वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलती।

कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का विधान अत्यन्त रमणीय रूप में किया है।

वाल्मीकि ने केवल वाह्य प्रकृति के विशद् चित्रण में असाधारण पटु हैं, अपितु अन्तःप्रकृति के निरुपण में भी सिद्धहस्त हैं। प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूप व्यापारों के साथ आदिकवि के भावुक हृदय का पूर्ण रागात्मक सामंजस्य दिखाई देता है। वाल्मीकि का हृदय प्रकृति के प्रति अत्यन्त संवेदनशील है। उन्होंने प्रकृति को अपने रति आदि भावों का आलम्बन बनाया है, और इस भावना से उन्होंने प्रकृति के अत्यन्त सुन्दर और रमणीय चित्र सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप-व्यापारों के विशद् विवेचन के साथ अंकित किए हैं। प्रत्यक्ष निरीक्षण के कारण उनके वर्णनों में पूर्ण सजीवता है। भारतीय मनीषा ने रस को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया है और आदिकवि वाल्मीकि रस-सिद्ध कवि हैं। रामायण महाकाव्य में प्रारम्भ से अन्त तक रस-सरिता अपनी स्वाभाविक गति से मन्द-मन्द प्रवाहित हो रही है।

कवि ने अलंकार आदि अन्य काव्य तत्वों का प्रयोग भी रस-परिपोष के लिए किया है, और वह भी बलपूर्वक नहीं, अपितु सहज भाव से। इसी प्रकार प्रकृति-चित्रण में भी आदिकवि सिद्धहस्त हैं। कवि ने जहां प्रकृति के विविध रूपों को अपनी तूलिका से चित्रित किया है, वहां प्रकृति-चित्रण द्वारा रस-निष्पति में भी तीव्रता का संचार किया है। प्रकृति के आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों रूप रसास्वादन में सहकारी रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

शृंगार रस के आलम्बन रूप में प्रकृति

जिस प्रकार मानव-जगत् विविध भावों से युक्त होता हुआ, भिन्न-भिन्न समयों, स्थानों एवं परिस्थितियों में अनेक प्रकार के व्यवहार करता है, कभी वह हंसता है, तो कभी रोता है, कभी क्रोधित होता है तो कभी उत्साह की प्रतिमूर्ति बन जाता है। कभी नायक के रूप में नायिका के सौन्दर्य पर मुग्ध होता है तो कभी अपनी अप्रतिम सुन्दरता से रमणियों का हृदय हर लेता है, जिससे करुण, रौद्र, हास्य, वीर शृंगारादि रसों की उत्पत्ति होती है। ठीक इसी तरह प्रकृति भी मानवोचित चेष्टाओं द्वारा शृंगार, शान्त, भयानकादि रसों की सृष्टि करती है। प्रकृति का सुकुमार रूप लावण्यवती ललनाओं की भांति रस भावों को उद्बुद्ध कर रति की अनुभूति कराता है। आदिकवि ने रामायण में आलम्बन रूप का हृदयहारी चित्रण कर शृंगार रस की अभिव्यंजना की है।

प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से सर्वाधिक श्रेय उसके आलम्बन रूप के अन्तर्गत प्रकृति के रम्य, सौन्दर्यपरक एवं चित्ताकर्षक रूपों के दृश्यांकन को दिया जाता है। आदिकवि ने चित्रकूट, मन्दाकिनी, पम्पासरोवर एवं बसन्त, वर्षा आदि ऋतुओं की नयनाभिराम सुषमा का चित्रण कर शृंगार रस के आलम्बन रूप में प्रकृति को निरूपित किया है। अनेक दृश्य इस प्रकार के भी हैं जिसमें एक साथ आलम्बन एवं उद्दीपन रूप अभिव्यंजित होता है।

चित्रकूट

राम सीता को चित्रकूट की शोभा दिखा रहे हैं। पर्वत पर कहीं तो ऊपर से झरने गिर रहे हैं और कहीं जमीन के भीतर से स्रोत प्रवाहित हो रहे हैं। यह पर्वत मदधारा बहाने वाले गजराज के समान सुशोभित हो रहा है—

'जलप्रपातैद्भेदैर्निष्पन्दैश्च क्वचित् क्वचित्।
स्रवद्भिर्गात्ययं शैलः स्रवन्मद इव द्विपः॥' —अयो० का० ९४/१३

चित्रकूट अनेक प्रकार के फूलों और फलों से युक्त है तथा विविध प्रकार के विहंगमों से सेवित है। विचित्र शिखरों वाला रमणीय पर्वत राम के मन को बहुत प्रिय लगता है—

'बहुपुष्फले रम्ये नानाद्विजगणायुते।
विचित्रशिखरे ह्यस्मिन् रतवानस्मि भामिनि॥'

—अयो० का० ९४/१६

मन्दाकिनी

शृंगार-रस के परिपोष में सरोवर, सरिता आदि की महत्वपूर्ण भूमिका रहती

है। मन्दाकिनी भी अपनी सर्वांगीण सुन्दरता से शृंगार-रस की अभिव्यक्ति में पूर्ण सहयोग प्रदान करती है।

हंसों और सारसों से सेवित होने के कारण मन्दाकिनी नदी अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती है। विचित्र तटों से युक्त इसकी शोभा नाना प्रकार के पुष्प बढ़ा रहे हैं—

'विचित्रपुलिनारंम्या हंस सारससेविताम्।
कुसुमैरुपसम्पन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम्॥' —अयो० का० ९५/३

मधुर शब्द करने वाले चक्रवाक पक्षी मधुर कलरव करते हुए सरिता के तटों पर आरूढ़ हो रहे हैं—

'पश्यैतदव्लगुवचसो रथांगाह्वयना द्विजाः।
अधिरोहन्ति कल्याणि निष्कूजन्तः शुभा गिरः॥'
—अयो० का० ९५/११

पम्पा सरोवर

पम्पा सरोवर की शोभा अत्यन्त प्रशंसनीय है। इसका जल वैदूर्यमणि के समान निर्मल हैं। इसमें अनेक प्रकार के कमल खिले हुए हैं। तटवर्ती नाना प्रकार के वृक्ष इसकी सुन्दरता बढ़ा रहे हैं—

'सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमलोदका।
फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः॥' —कि० का० १/३

कमलों से आच्छादित पुष्करिणी अत्यन्त रमणीय दिखाई देती है। मृग आदि पशु और पक्षी इसके चारों ओर विद्यमान हैं—

'नलिनैरपि संच्छन्ना ह्यत्यर्थ शुभदर्शना।
सर्वव्यालानुचरिता मृगद्विजसमाकुला॥' —कि० का० १/७

बसन्त-ऋतु

बसन्त ऋतुराज है, कामदेव का प्रिय सखा है, प्राकृतिक सुषमा का अक्षय कोष है। वाल्मीकि के लिए बसन्तश्री जड़पदार्थ न रहकर सकेतन, क्रियाशील और मूर्त्त बन गयी है। कवि बसन्त-वर्णन में प्रकृति के लालित्य एवं अनुपम दृश्यों से बहुत प्रभावित हुआ है। कवितन्मय होकर बसन्त-वर्णन करता है। यही कारण है कि वह प्रथम वह आलम्बन रूप प्रर्दाशत करके उद्दीपन रूप की ओर उन्मुक्त होता है।

पम्पा तट पर राम, लक्ष्मण के साथ जा रहे हैं। चारों ओर पुष्पभार से

समृद्ध पर्वत-शिखर हैं जो चारों ओर पुष्पित लताओं में ढके हैं—

'पुष्पभारसमृद्धानि शिखराणि समन्ततः ।
लताभिः पुष्पिताग्राभिरूपगूढानि सर्वतः ॥' —कि० का० १/९

पुष्पों से सुशोभित वनों के रूप तो दर्शनीय हैं । जैसे मेघ जल की वर्षा करते हैं, उसी तरह वृक्ष-वर्षा कर रहे हैं—

'पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम् ।
सृजतां पुष्पवर्षाणि वर्षं तोयमुचामिव ॥' —कि० का० १/११

जो पुष्प वृक्षों से गिर चुके हैं, गिर रहे हैं और जो अभी शाखाओं पर लगे हुए हैं, पवन मानों उन सभी सुमनों के साके ओर से क्रीड़ा कर रहा है—

'पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः ।
कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समन्तः ॥' —कि० का० १/१३

पर्वत की कन्दरा से विशेष प्रकार की ध्वनि करता हुआ पवन निकल रहा है, मानों उच्च स्वर से गीत गा रहा हो । मतवाली कोयलों की मधुर ध्वनि रूपी वाद्य के साथ वायु झूमते हुए वृक्षों को मानों नृत्य की शिक्षा दे रही है—

'मत कोकिल संनादैर्नर्तयन्निव पादपान् ।
शैलकन्दरनिष्क्रान्तः प्रगति इव चानिलः ॥' —कि० का० १/१५

जिनकी शाखों के अग्रभाग पुष्पाच्छादित हैं, तथा जो वायु के झोंकों से हिल रहे हैं, तथा मधुकर ही जिनकी पगड़ी के रूप में दिखाई दे रहे हैं, ऐसे वृक्ष नाचते-गाते-से प्रतीत होते हैं—

'पुष्पसंचछन्नशिखरा मारुतोत्क्षेपचंचलाः ।
अभीमधुकरोत्तंसाः प्रगीता इव पादपाः ॥' —कि० का० १/२०

वर्षा-ऋतु

मेघमाला, सौदामिनी, कल-कल निनाद करती हुई सरितायें, मयूरों का मधुर नर्तन आदि वर्षा-ऋतु के रमणीय दृश्य श्रृंगार रस के आलम्बन रूप में आदिकवि ने पूर्ण तन्मयता से अंकित किए हैं । वर्षा जहां विरहीजनों की विरह-वेदना को उद्दीप्त करती है, संयोगावस्था में आनन्द प्रदान करती है, वहां स्वयं भी अपनी सुन्दरता से श्रृंगार रस की धारा प्रवाहित करती है ।

वाल्मीकि का वर्षा-वर्णन श्रृंगार-रस की निष्पत्ति में अत्यन्त सहकारी है ।

मन्द-मन्द पवन रूपी उच्छवास छोड़ने वाला सन्ध्याकालीन, लाली रूपी चन्दन से ललाट आदि अंगों को अनुरंजित करने वाला, तथा मेघ रूपी पाण्डु-कपोलों वाला व्योममण्डल काम सन्तप्त-सा प्रतीत हो रहा है—

'मन्दमारुतनिःश्वास संध्याचन्दनरञ्जितम् ।
आपाण्डुजलदं भाति कामातुरमिवाम्बरम् ।।' —कि० का० २८/६

चक्रवाकयुगल का मिलन संयोग शृंगार की पुष्टि करने वाला होता है। वर्षा में मान-सरोवर में निवास के इच्छुक हंस प्रस्थान कर रहे हैं और चकवे अपनी प्रियाओं से मिल रहे हैं—

'सम्प्रस्थिता मानस वास लुब्धाः ।
प्रियान्विता सम्प्रति चक्रवाकाः ।।' —कि० का० २८/१६

वर्षा में निद्रा धीरे-धीरे भगवान विष्णु के समीप आ रही है। तीव्रगति से नदी अपने समुद्र रूपी पति के समीप पहुंच रही है। बलाकाएं प्रसन्नता से (गर्भधारण के लिए) मेघ की ओर जा रही हैं, और कामासक्त कामिनी अपने प्रियतम के निकट जा रही हैं—

'निद्रा शनैः केशवमभ्युपैति ।
द्रुतं नदी सागरमभ्युपैति ।।
हृष्टा बलाका घनमभ्युपैति ।
कान्ता सकामा प्रियतभ्युपैति ।।' —कि० का० २८/२५

प्रावृट्काल में सर्वत्र प्रेम का साम्राज्य स्थापित हुआ-सा प्रतीत होता है। प्रकृति के सभी अंग प्रेम-रस में डूबकर शृंगार-रस की सरिता प्रवाहित कर रहे हैं।

कहीं भ्रमर गीत गा रहे हैं, कहीं मयूर नर्तन कर रहे हैं और कहीं गजराज मदमत्त होकर विचरण कर रहे हैं—

'क्वचित प्रगीता इव षट्पदौघैः, क्वचित् प्रनृत्ता इव नीलकण्ठैः ।
क्वचित् प्रमता इव वारणेन्द्रैः विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः ।।'
—कि० का० २८/३३

जल की धारायें सब ओर गिर रही हैं, ऐसा प्रतीत होता है, मानों रति-क्रीड़ा के समय अंगों के मर्दन से टूटे हुए देवांगनाओं के मोतियों के हार ही हों—

'सुरतामर्दविच्छिन्ना स्वर्गस्त्रीहारमौक्तिकाः ।
पतन्ति चातुला दिक्षु तोयधाराः समन्ततः ।।' —कि० का० २८/५१

शरद् ऋतु

आलम्बन रूप में प्रकृति के रम्य, चित्ताकर्षक, सौन्दर्यपरक रूपों के दृश्यांकन में वालमीकि सिद्धहस्त हैं। शरद् ऋतु की शोभा मनमोहिनी होती है। सर्वत्र सुन्दरता का साम्राज्य छाया रहता है। कवि ने प्रकृति के इस रूप का मनोहारी अंकन किया है—

शरद् यामिनी चांदनी की चादर ओढ़े हुए शुभ्र शाटिका से आच्छादित सुन्दर अंगों वाली नारी के समान सुशोभित हो रही है। उदित हुआ चन्द्रमा उसका सौम्य मुख है और तारागण ही उसके झुके हुए सुन्दर नेत्र हैं—

'रात्रिः शशांकोदित सौम्यवक्त्रा,
तारागणोन्मीलित चारुनेत्रा।
ज्योत्स्नांशुक प्रावरणा विभाति,
नारीव शुक्लांशुकसंवृतांगी ॥' —कि० का० ३०/४६

कमल और असन के पराग से गौरवर्ण को प्राप्त हुए, मतवाले भ्रमर जो कि पुष्पों का मकरन्दपान करने में चतुर हैं, अपनी प्रियाओं के साथ हर्षित होकर वायु का अनुगमन कर रहे हैं—

'वनप्रचण्डा मधुपान शौण्डाः,
प्रियान्विताः षट्चरणाः प्रहृष्टाः।
वनेषु मत्ताः पवनानुयात्रां,
कुर्वन्ति पद्मासनरेणुगौराः ॥' —कि० का० ३०/५२

जैसे प्रथम समागम के समय लज्जा-भाव से युक्त युवतियां धीरे-धीरे अपने जघन-स्थल दिखाती हैं, वैसे ही धीरे-धीरे जल के हटने से सरिताएं अपने नग्न-तटों को दिखा रही हैं—

'दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैः शनैः।
नवसंगमव्रीडा जघनानीव योषितः ॥' कि० का० ३०/५८

इस प्रकार शरद्-ऋतु आलम्बन रूप में अपनी रमणीयता के द्वारा शृंगार-रस की निष्पत्ति में पूर्ण सहचारिणी सिद्ध हो रही है।

प्रकृति का उद्दीपन रूप

रत्यादि स्थायी भावों को उद्दीप्त करने में प्रकृति की महत्वपूर्ण भूमिका असंदिग्ध है। वाल्मीकि ने शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों ही पक्षों का उद्दीपन प्रकृति वर्णन द्वारा किया है।

संयोग पक्ष में प्रकृति का उद्दीपन रूप

संयोग पक्ष में प्रकृति का व्यापक महत्व है। वह रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श द्वारा रति की वृद्धि करती है। वस्तुतः प्राकृतिक पदार्थों का सम्बन्ध मूल-भावना (रति आदि) से ही है।

संयोग के समय प्रथम तो प्रिय का सहवास ही अत्यन्त सुखद होता है, उसमें भी प्रकृति अपने रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि द्वारा और भी सुख तथा आनन्द की

वर्षा करती है। प्रिय के सहवास में प्रकृति का कण-कण सुखद प्रतीत होता है—

राम, सीता के साथ चित्रकूट पर्वत की शोभा देख रहे हैं। प्रकृति की सुरम्य गोद में राम को अपनी प्रिया का साहचर्य और भी अधिक कामोन्मादक प्रतीत होता है।

राम, सीता को चित्रकूट की रमणीयता दिखा रहे हैं। उस पर्वत के रमणीय शिखरों पर मनस्वी किन्नर युगल साथ-साथ रमण कर रहे हैं, जो कि मिलन की प्रेम-भावना को उद्दीप्त करके आन्तरिक प्रसन्नता को बढ़ाने वाले हैं—

'शैलप्रस्थेषु रम्येषु पश्येमान् कामहर्षणान्।
किंनरान् द्वन्द्वशो भद्रे रममाणान् मनस्विनः॥'

—अयो० का० ९४/११

वहीं पर विद्याधरों की स्त्रियों की मनोरम क्रीडा-स्थलियां तथा पादप-शाखाओं पर लटके हुए उनके सुन्दर वसन भी हैं—

'शाखावसक्तान् सङ्गाश्च प्रवराण्यम्बराणि च।
पश्य विद्याधरस्त्रीणां क्रीडोद्देशान् मनोरमान्॥'

—अयो० का० ९४/१२

चित्रकूट का आलम्बन रूप राम-सीता के प्रेम को बढ़ाकर उद्दीपन का कार्य कर रहा है। उस रमणीय परिवेश में सीता के साथ चौदह वर्ष का दीर्घकाल भी आनन्दपूर्वक व्यतीत हो जाएगा, ऐसा अनुभव करते हुए, राम कहते हैं—

'इमं तु कालं वनिते विजहिवां-
स्त्वया च सीते सह लक्ष्मणेन।
रतिं प्रपत्स्ये कुलधर्मवर्धिनीं,
सतां पथि स्वैर्नियमैः परैः स्थितः॥'

—अयो० का० ९४/२७

सीता के साथ राम का मन्दाकिनी नदी की शोभा को देखकर प्रमुदित होना तथा जल विहार संयोग श्रृंगार की दृष्टि से अत्यन्त मार्मिक वर्णन है।

अयोध्या के राजप्रसादों में राम-सीता के दाम्पत्य-जीवन के रसमय क्षणों का मधुरिम चित्रण संभवतः लोकमर्यादा के निर्वाह के लिए आदिकवि ने नहीं किया है। चित्रकूट एवं मन्दाकिनी ये ऐसे स्थान हैं, जहां प्रकृति ने राम-सीता के रति-भाव को उद्दीप्त कर संयोग-श्रृंगार का परिपोष किया है। मानव की यह सहज प्रवृत्ति है कि वह प्रेम-पात्र का सहवास सदैव और निरन्तर रूप से बने रहने की कामना करता है।

अनेक प्रकार के सुन्दर-सुन्दर पशु-पक्षी मन्दाकिनी में स्नान करने के लिए आते हैं। तटवर्ती वृक्ष हवा के झोंकों से झूम-झूमकर मानो नर्तन करते हुए-से पुष्प, फल, एवं पत्तों की वर्षा करते हैं। इस अत्यन्त हृदयावर्जक दृश्य को देखकर राम का हृदय भी अपनी प्राण-प्रिया के साथ जल में अवगाहन करने के लिए लालायित हो उठता है।

जल-क्रीडा प्रेमी-प्रेमिका को अत्यन्त सुख प्रदान करती है—

'सखीवच्च विगाहस्व सीते मन्दाकिनी नदीम्।
कमलान्यवमज्जन्ती पुष्कराणि च भामिनि॥'

—अयो० का० ९५/१४

वह नदी राम के प्रेम को इतना अधिक उद्दीप्त कर देती है कि राम की न तो अयोध्या जाने की इच्छा होती है, और ना ही राज्य पाने की।

इस प्रकार चित्रकूट एवं मन्दाकिनी नदी 'रति' स्थायीभाव को उद्दीप्त कर संयोग शृंगार के रसास्वादन में सहकारी होते हैं।

वियोग-शृंगार में प्रकृति का उद्दीपन रूप

संयोग में जहां प्रकृति हमारे उल्लास, और रति में वृद्धि करती है, वहां विरह में उसका सौन्दर्य और आकर्षण हमारी वेदना को और भी घनीभूत कर देता है। विरह में मानव की मनःस्थिति में परिवर्तन आ जाता है। संयोग की भांति वियोग-पक्ष में भी प्रकृति का उद्दीपन रूप नारी और पुरुष, दोनों के लिए प्रायः समान रूप से प्रभावक होता है। किन्तु रामायण में प्रकृति राम की विरह-वेदना को ही अधिक मुखरित करती है। क्योंकि सीता अपहरण के पश्चात् रावण की कारा में बन्द थीं और राम ने ही सीता की खोज करते हुए प्रकृति के आंचल में बसन्त, शरद् एवं वर्षा आदि ऋतुओं को तथा मृगादि पशु-पक्षियों को, सुन्दर-सुन्दर लताओं को देखा जो उनकी विरह-वेदना को उद्दीप्त करते हैं।

मूल-भावना की उद्दीपिका प्रकृति

प्रिय पात्र के अभाव में मानव-मन सूनापन अनुभव करने लगता है। उसको कुछ भी रुचता नहीं है। संयोग में जहां प्रकृति अपने रूप, रस, गन्ध स्पर्शादि द्वारा उल्लास और रति की वृद्धि करती है वहां विरह के कारण प्रकृति के वही रूप वेदना को और भी बढ़ाने वाले बन जाते हैं।

संयोग के समय जिन प्राकृतिक पदार्थों में जितना अधिक आनन्द प्राप्त होता है, विरह में वे उतना ही अधिक सन्तापकारी बन जाते हैं। संयोग की

सुखद वेला में पशु-पक्षियों का कलरव आनन्द देता है, वही विरह में दाहक बन जाता है।

राम सीता की खोज करते हुए लक्ष्मण के साथ पम्पा नामक सरोवर के पास पहुंचते हैं। वहां कमल, पुष्पादि में सीता के नेत्र मुखादि का साम्य पाकर राम की इन्द्रियां चंचल हो उठती हैं। मन सीता-मिलन के लिए व्याकुल हो जाता है। मन्द-मन्द प्रवहमान पवन काम-भावना को उद्दीप्त करता है—

'सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः।
गन्धवान् सुरभिर्मासों जातपुष्पफलद्रुमः।।' —कि० का० १/१०

संयोगावस्था में मधुर गुंजार करते हुए भ्रमर, सुन्दर-सुन्दर पुष्प, मतवाली कोयल आदि राम को आनन्द प्रदान करने वाले थे, किन्तु सीता से विप्रयुक्त होने पर नाना प्रकार के पक्षियों के कलरवों से गूंजता हुआ बसन्त का समय राम के शोक को बढ़ाता है-—

'अयं बसन्तः सौमित्रे नाना विहग नादितः।
सीतया विप्रहीणस्य शोक संदीपनो मम।।' —कि० का० १/२२

प्रकृति सीता के विरह में राम के सन्ताप की वृद्धि कर रही है। और मधुर नाद करती हुई कोयल मानों राम को ललकार रही है—

'मां हि शोकसमाक्रान्तं संतापयति मन्मथः।
हृष्टं प्रवदमानश्च समाह्वयति कोकिलः।।' —कि० का० १/३३

काम-दशाओं के संवर्द्धन रूप में प्रकृति

काम-दशाओं का अभिप्राय विरह-जन्य वेदना के उतार-चढ़ाव की विविध परिस्थितियों को दिखाना है। संयोग को प्रकृति से पोषण प्राप्त होता है, तब यह स्वाभाविक है कि विरह-जन्य विषाद भी प्रकृति के स्पर्श से और भी अधिक गहरा बने। स्मृति, गुणकथन, उन्माद आदि काम-दशाओं में प्रकृति का पर्याप्त योग रहता है।

आदिकवि ने बसन्त वर्णन में विरही की व्याधि, जड़ता और मरण इन तीन अवस्थाओं को छोड़कर प्रकृति के माध्यम से अन्य काम-दशाओं को राम पर पूर्ण रूपेण प्रकट होते हुए दिखाया है।

अभिलाषा

प्राकृतिक तत्त्व प्रेम भाजन का सादृश्य प्रदर्शित कर विरही मन में अपने प्रिय से मिलन की अभिलाषा को उत्पन्न करते हैं, और उनकी चेष्टायें अभिलाषा को उद्दीप्त करती हैं।

पम्पा-तट पर काम के सखा बसन्त की रूप-राशि बिखरी पड़ी हैं। पक्षिणियां अपने नर-पक्षियों से मिलकर आनन्दित हो रही हैं, भ्रमरों की मधुर ध्वनि सुनकर प्रसन्न हो रही हैं तथा स्वयं भी मधुर शब्द कर रही हैं—

'विमिश्रा विहगाश्च पुंभिरात्मव्यूहाभिनन्दिताः ।
भृंगराज प्रमुदिताः सौमित्रे मधुरस्वराः ।।' —कि०का० १/२७

समूह रूप में एकत्रित पक्षी आनन्दमग्न होकर चहक रहे हैं। जल-कुक्कुटों के 'रति' सम्बन्धी कूंजन तथा नर-कोकिलों के मधुर नाद के व्याज से मीठी बोली बोलकर राम की काम-पीड़ा को उद्दीप्त कर सीता मिलन की अभिलाषा को जागृत कर रहे हैं—

'अस्याः कूले प्रमुदिताः संघशः शकुनास्त्विह ।
दात्यूहरति विक्रन्दैः पुंस्कोकिलरुतैरपि ।
स्वनन्ति पादपाश्चेमे ममानंग प्रदीपकाः ।।' —कि०का० १/२८

पर्वत-शिखर पर नर्तन करते हुए अपने प्रिय मयूर के साथ मोरनी भी काम पीड़ित होकर नृत्य कर रही है, और मयूर भी अपने रमणीय पंखों को फैलाकर अपनी प्रिया का अनुसरण कर रहा है। जिससे राम के अन्तःकरण में सीता-विषयक अभिलाषा प्रबल हो उठती है—

'पश्य लक्ष्मण नृत्यन्तं मयूरमुपनृत्यति ।
शिखिनी मन्मथार्त्तैषा भर्त्तारं गिरिसानुणि ।।
तामेव मनसा रामां मयूरोऽप्यनुधावति ।
वितत्य रुचिरौ पक्षौ रुतैरुपहसन्निव ।।'
—कि० का० १/३८-३९

वहां का प्रत्येक दृश्य राम की अभिलाषा को प्रदीप्त करने वाला है।

स्मृति

कामदशाओं के अन्तर्गत प्राकृतिक दृश्य स्नेह-भाजन की स्मृति को उद्‌बुद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। बसन्त ऋतु की मादकता राम के हृदय को सीता की स्मृति में डुबो देती है। संयोग के समय उसी मनोहर प्रकृति-प्रांगण में किये गये प्रणय-व्यापार तथा केलि क्रीड़ा नेत्रों के समक्ष थिरक उठते हैं। पहले जब सीता राम के साथ पर्णशाला में निवास करती थीं, तब जल-कुक्कुट की मधुर ध्वनि सुनकर प्रेम-रस में डूब जाया करती थीं, अपने प्रिय राम को भी अपने निकट बुला लेती थीं, अब वह जलकुक्कुट-शब्द तो कर रहा है, किन्तु बुलाने वाली प्रिया सीता वहां नहीं हैं, जिससे राम की स्मृति प्रबल हो उठती है—

'श्रुत्वैतस्य पुरा शब्दमाश्रमस्था मम प्रिया ।
मामाहूय प्रमुदिता परमं प्रत्यनन्दत ।।' —कि० का० १/२५

मयूरी काम-भाव के युक्त होकर अपने वल्लभ के सामने आ रही है। इस दृश्य को देखकर यदि सीता का अपहरण न हुआ होता तो वह भी अपने प्रियतम के समक्ष अवश्य आती, यह सोचकर राम की स्मृति उद्दीप्त हो रही है—

'ममाप्येवं विशालाक्षी जानकी जातसम्प्रभा ।
मदनेनाभिवर्तेत यदि नापहृता भवेत् ।।' —कि० का० १/४३

पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, आदि की काम-भाव से युक्त होकर की गयी निखिल क्रीड़ाएं राम की स्मृति को प्रदीप्त करती हैं ।

गुणकथन

विरहीजन धैर्य धारण करने के लिए अनेक प्रकार के उपायों का आश्रय लेते हैं । येन-केन प्रकारेण वियोग के क्षणों को व्यतीत करने का प्रयास करते हैं । मनसा, वाचा, कर्मणा सदैव उसी के ध्यान में मग्न रहते हुए, जिस किसी के समक्ष उसके गुणों का वर्णन करने लगते हैं । रामायण में भी विरही की इस काम दशा का हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत करने में आदिकवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है । सीता के वियोग में उसकी मधुर स्मृतियों तथा उसके उत्तमोत्तम गुणादि का राम के नेत्रों के समक्ष साकार हो उठना, स्वाभाविक ही है । सीता के समस्त अंगों में सौन्दर्य का सागर लहराता था । उसके शारीरिक सौन्दर्य एवं आत्मिक सौन्दर्य का जितना वर्णन किया जाता, कम ही था । बसन्त ऋतु में सुकुमार लताओं और मृगशावकादि को देखकर अनायास ही राम के मुखारविन्द से सीता के सौन्दर्य विषयक गुण मुखरित हो उठते हैं । वे सीता के नेत्रों का सौन्दर्य निरूपित करते हुए मृग-छौनों के नयनों से तुलना करते हैं—

'मां हि सा मृगशावाक्षी चिन्ता शोक बलात्कृतम् ।।' —कि० का० १/३५

कमल-केसर का स्पर्श करके अन्य वृक्षों के मध्य से प्रवाहित होने वाले सुरभित पवन से सीता के निःश्वास की समता प्रदर्शित करते हुए वे कहते हैं—

'पद्मकेसर संसृष्टो वृक्षान्तरविनिःसृतः ।
निःश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः ।।' —कि० का० १/७२

उन्माद अथवा प्रलाप

इस दशा में विरही की वेदना चरम सीमा को प्राप्त हो जाती है । मानसिक संतुलन अव्यवस्थित हो जाता है । राम की इस अवस्था का हृदयग्राही वर्णन करने में कवि ने बसन्त का पूरा-पूरा लाभ उठाया है । राम को सीता के विरह में बसन्त

ऋतु का वैभव दुखदायी प्रतीत होता है, क्योंकि संयोगावस्था में यह वासन्ती सुषमा ही उल्लास विकीर्ण करती थी, अतः विरह में प्रकृति द्वारा सन्ताप की वृद्धि होना स्वाभाविक ही है। कोयल की मधुर ध्वनि शोकाग्नि को और भी अधिक प्रज्ज्वलित करती है। वे लक्ष्मण से कहते हैं—

'कोकिलाकुल सीमान्तो दयिताया ममानधः,
मन्मथायाससम्भूतो वसन्तगुण वर्धितः।
अयं मां धक्ष्यति क्षिप्रं शोकाग्निर्नचिरादिव,
अपश्यतस्तां वनितां पश्यतो रुचिरान् द्रुमान्॥'
—कि० का० १/३२-३३

हर्ष-युक्त पक्षियों के समूह एक दूसरे को बुलाते हुए इच्छानुसार कलरव कर रहे हैं, जो कि राम के अन्तःकरण में प्रेमोन्माद उत्पन्न कर रहे हैं—

'नदन्ति कामं शकुना मुदिताः संघशः क्लम्।
आह्वयन्त इवान्योन्यं कामोन्मादकरा मम॥' —कि० का० १/४६

फूलों से लदी डालियों वाले वृक्षों पर स्थित विहंगों का मधुर कलरव भी राम के प्रेमोन्माद को बढ़ा रहा है—

'पश्य लक्ष्मण संनादं वने मदविवर्धनम्।
पुष्पिताग्रेषु वृक्षेषु द्विजानामवकूजताम्॥' —कि० का० १/५७

इस प्रकार बसन्तश्री विरही राम की उन्मादावस्था को वर्धित करने में प्रमुख भूमिका का निर्वहण कर रही है।

उद्वेग

इस अवस्था में विरही का हृदय उद्वेलित हो उठता है। संयोग काल में सुख प्रदान करने वाले प्राकृतिक तत्व दुःखद हो जाते हैं। समान रूपाकृति वाले प्राकृतिक उपादान विरह-व्यथा को प्रवल रूप में उद्दीप्त करने लगते हैं। राम को ऐसा प्रतीत होता है, मानों लाल पल्लव ही जिसकी लपटे हैं, ऐसी वसन्ताग्नि उन्हें अवश्य जला डालेगी—

'अशोकस्तवकांगारः षट्पदस्वननिःस्वनः।
मां हि पल्लवताम्रार्चिवसन्ताग्निः प्रधक्ष्यति॥' —कि०का० १/२९

मधुर कूजन करने वाले पक्षियों से पम्पा की शोभा तो बढ़ रही है, और वहां आनन्दविभोर पक्षियों का समूह राम के सीता-विषयक उद्वेग को बहुत अधिक बढ़ा रहा है—

'अधिकं शोभते पम्पा विकूजद्भिर्विहंगमैः।
दीपयन्तीव मे कामं विविधा मुदिता द्विजाः॥' —कि०का० १/९९

चिन्ता

इस दशा में विरही अपने स्नेह भाजन के विषय में चिन्तित तथा व्यग्र रहता है। प्रकृति का जो रमणीय रूप उसको व्यथित कर रहा होता है, वह उसके प्रेम-पात्र को भी निश्चित रूप से व्यथित कर रहा होगा, यह चिन्ता उसके हृदय को और भी अधिक व्याकुल कर देती है। राम प्रतिक्षण सीता की चिन्ता में डूबे रहते हैं। वे सोचते हैं कि जहां सीता है, वहां अवश्य ही बसन्त का प्रवेश नहीं होगा, अन्यथा कजरारे नेत्रों वाली सीता जीवित कैसे रह सकती--

'नूनं न तु वसन्तस्तं देशं स्पृशति यत्र सा।
कथं ह्यसितपद्माक्षी वर्तयेत् सा मयाविना ॥' --कि० का० १/४९

वसन्त का वैभव उनकी चिन्ता को और प्रबल कर देता है। उनका चिन्ता-जन्य उद्बोधन अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है। जब वे कह उठते हैं कि मेरी प्रिया वसन्त को प्राप्त करके अपने प्राण अवश्य त्याग देगी—

'श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषा च मे प्रिया।
नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥' —कि० का० १/५०

इस प्रकार काम-दशाओं को गहरा, व्यापक और मार्मिक बनाने से प्रकृति और उसमें भी बसन्त ऋतु अत्यन्त सहायक रही है। वसन्त-वर्णन में राम के हृदय में नैसर्गिक रूप से विद्यमान 'रति' भावना को जाग्रत करने वाली स्थिति का आभास होता है। वसन्त ने राम के भावों को उद्दीपन हेतु परिपार्श्व दिया है, और यह परिपार्श्व अपने आप में भावपूर्ण है।

विरहोद्दीपिका-वर्षा

श्रृंगार रस के उद्दीपन में वर्षा-ऋतु का साहचर्य भी उल्लेखनीय रहता है। श्रृंगार-रस-प्रधान काव्यों में तो वसन्त के साथ-साथ वर्षा ऋतु का वर्णन प्रायः सभी रस-सिद्ध कवियों ने किया हैं। यह वर्षा जहां संयोगावस्था में 'रति' स्थायी भाव को परिपुष्ट करती है, वहां विरहीजनों के विरह-जन्य सन्ताप को अत्यन्त मार्मिक बना देती है। आदिकवि ने वर्षाऋतु का वर्णन पूर्ण मनोयोग से किया है। वह भी उस प्रसंग में जब राम अपनी सीता की खोज में संलग्न हैं। उसके वियोग में व्याकुल हैं, तभी माल्यवान् पर्वत पर वर्षा का आगमन हो जाता है। मेघाच्छन्न व्योम-मण्डल को तथा वर्षा के रमणीय, मांसल दृश्यों को देखकर उनका विरही हृदय अत्यधिक सन्तप्त हो उठता है, जिससे वियोग-श्रृंगार की सशक्त अभिव्यंजना है।

श्यामल मेघ के आश्रय में चमकने वाली बिजली राम को ऐसी प्रतीत होती है, मानों रावण की गोद में सीता छटपटा रही हो—

'नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरन्ती प्रतिभाति मे।
स्फुरन्ती रावणस्यांके वैदेहीव तपस्विनी ॥'

—कि० का० २८/१२

वर्षागमन से पर्वत-शिखरों पर प्रफुल्लित कुटज के पुष्प प्रिया-विरह के शोक से पीड़ित राम की प्रेमाग्नि को उद्दीप्त कर रहे हैं--

'क्वचिद् बाष्पाभिसंरुद्धान् वर्षागमसमुत्सुकान् ।
कुटजान् पश्य सौमित्रे पुष्पितान् गिरिसानुषु ।
मम शोकाभिभूतस्य कामसंदीप्रनाम् स्थितान् ।।'—कि० का० २८/१४

सरितायें बह रही हैं, मेघ जल बरसा रहे हैं, मतवाले हाथी गर्जना कर रहे हैं वनप्रान्त सुशोभित हो रहे हैं, मयूर नृत्य कर रहे हैं, बानर निश्चिन्त एवं सुखी हो रहे हैं, किन्तु अपनी प्रियाओं के संयोग से वंचित प्राणी चिन्तामग्न हो रहे हैं--

'वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति,
ध्यायन्ति नृपयन्ति समाश्वसन्ति ।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः
प्रिया विहीनाः शिखिनः प्लवंगताः ।।' —कि० का० २८/२७

समस्त दिशाओं में सब ओर गिरने वाली जल की धारायें सुरत-क्रीड़ा के समय के अंगों के आमर्दन से टूटी हुई देवांगनाओं की मोतियों की माला के समान प्रतीत होती है, जिससे राम की विरह-व्यथा उद्दीप्त होती है—

'तुरतामर्दविच्छिन्नाः स्वर्गस्त्रीहारमौक्तिकाः ।
पतन्ति चातुला दिक्षु तोयधारा समन्ततः ।।' —कि० का० २८/५१

वर्षा के ऐसे सुखद समय में अन्य प्राणी संयोगावस्था का आनन्द प्राप्त कर रहे हैं । केवल वे ही दुःखी हैं, जो अपनी प्रियाओं से वंचित हैं । सुग्रीव भी अपनी वल्लभा के साथ रहता हुआ वर्षा का सुख भोग रहा है, किन्तु राम एक तो राज्य से रहित हो गये हैं, दूसरे उनकी पत्नी का अपहरण कर लिया गया है, इसलिए वर्षा को देखकर उनको अपनी दशा पानी से गले हुए नदी-तट की भांति कष्टमय प्रतीत होती है ।

विरहोद्दीपक-शरद्

आदिकवि ने वसन्त एवं वर्षा के समान शरद् ऋतु का वर्णन भी अत्यन्त तन्मयता से किया है ।

वर्षा ऋतु समाप्त हो चुकी है, शुभ्र वर्ण का गगन मण्डल, विमल हिमांशु और विभावरी के अंगों पर शरद् ज्योत्स्ना का लगा हुआ अंगराग, यह सब देखकर राम का विरही हृदय प्रिया-मिलन के लिए व्याकुल हो उठता है । न कहीं बिजली का गर्जन है और ना ही बादलों की घटा । सारसों की मधुर ध्वनि सब ओर सुनायी दे रही है । और राम आर्त्त होकर विलाप करने लगते हैं—

'दृष्ट्वा च विमलंव्योम गतविद्युद्बलाहकम् ।
सारसारावसंघुष्टं विललापर्त्तिया गिरा ।।' —कि० का० ३०/५

शरद्-ऋतु के रमणीय अंचल में सारसों की मधुर-ध्वनि को सुनकर पुरानी स्मृतियां जाग उठती हैं। विरहीजनों की अभिलाषा, स्मृति एवं चिन्ता तीनों दशायें एक साथ राम को अभिभूत कर देती हैं। सीता की बोली सारसों की ध्वनि के समान मधुर थी, और पर्णशाला में निवास करते हुए सारसों द्वारा एक-दूसरे को अपने समीप बुलाने की मधुर ध्वनि को सुनकर सीता अपना मन बहलाया करती थी, किन्तु आज वह अपना मन कैसे बहला रही होगी, यह चिन्ता राम को व्याकुल कर रही है—

'सारसारावसंनादैः सारसारावनादिनी ।
याऽश्रमे रमते बाला साद्य मे रमते कथम् ।।'—कि० का० ३०/७

शरद्-ऋतु में सुवर्णमय वृक्षों के समान पवित्र एवं प्रफुल्लित वृक्षों को पुनः पुनः देखती हुई भोली-भाली सीता अपने राम को समीप न पाकर मन कैसे बहलाती होगी, यह विचार भी राम के विरह-शोक को बढ़ा रहा है—

'पुष्पितांश्चासनान् दृष्ट्वा कांचनानिव निर्मलान् ।
कथं सा रमते बाला पश्यन्ती मामपश्यती ।।'
—कि० का० ३०/८

सर्वांग सुन्दरी, मधुभाषिणी, जानकी पहले कलहंसों के मधुर शब्दों से जागा करती थी, वहां पर मधुर शब्द करने वाले कलहंस तो हैं, किन्तु सीता नहीं है, वह कैसे प्रसन्न रहती होगी—

'या पुरा कलहंसानां कलेन कलभाषिणी ।
बुद्ध्यते चारु सर्वांगी साद्य मे रमते कथम् ।।' —कि० का० ३०/९

शरद् ऋतु के वर्णन में यह बात विशेष रूप से दिखाई देती है कि राम को अपनी अपेक्षा सीता की अधिक चिन्ता है। प्रकृति का कण-कण राम और सीता को संयोग के समय सुख देने वाला था, तेरह वर्ष की दीर्घावधि उन्होंने प्रकृति की स्नेह-मयीरमणीय गोद में ही व्यतीत की थी। इसलिए दोनों के आन्तरिक प्रेम के साथ प्रकृति का अटूट सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। राम अकेले उस पर्वत पर शरद्ऋतु की रम्य छटा देख रहे हैं और उनका धैर्य टूटता जा रहा है, जबकि वे वीर पुरुष हैं, अबलाओं का हृदय तो कमल-नाल के समान सुकुमार होता है। वे विरह के कष्ट को सहन नहीं कर पाती, इसलिए सीता के विषय में चिन्तित होना स्वाभाविक ही है।

सीता के विशाल नयन विकसित कमल-दल के समान हैं, साथ-साथ विचरन

करने वाले चक्रवाकों की मीठी बोली सुनकर उसकी कैसी दशा हो जाती होगी—

'निस्वनं चक्रवाकानां निशम्य सहचारिणाम् ।
पुण्डरीकविशालाक्षी कथमेषा भविष्यति ।।' —कि० का० ३०/१०

नदी, सरोवर, बावली, कानन, और वन सब जगह राम घूम रहे हैं, किन्तु कहीं भी मृगनयनी सीता के बिना उनको सुख की प्राप्ति नहीं होती—

'सरांसि सरितो वापीः काननानि वनानि च ।
तां विना मृगशावाक्षीं चरन्नाद्य सुखं लभे ।।' —कि० का० ३०/११

राम को यह चिन्ता हो रही है कि शरद् ऋतु के गुणों से जो काम निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रहा है, कहीं वह सीता को अत्यन्त पीड़ित न कर दे—

'अपि तां मद्वियोगाच्च सौकुमार्याच्च भामिनीम् ।
सुदूरं पीडयेत् कामः शरद् गुण निरन्तरः ।।'
—कि० का० ३०/१२

वाल्मीकि ने प्रकृति के समग्र रमणीय रूप का कथन राम के मुख से करवाया है । जिससे प्राकृतिक दृश्यों को देखकर सीता के विरह में राम की अवस्था का स्वाभाविक एवं हृदयग्राही स्वरूप अभिव्यंजित हो सके ।

रागयुक्त सन्ध्या का अनुराग भरी नायिका के रूप में प्रस्तुत बिम्ब अत्यन्त हृदयहारी एवं श्रृंगार रस की मार्मिक सृष्टि करने वाला है—

सुधांशु की किरणों के स्पर्शजन्य, हर्ष के कारण जिसके तारे जगमगा रहे हों, (मानो प्रिय के कर-स्पर्शजनित हर्ष से नायिका के नेत्रों की पुतली खिल उठी हों) । ऐसी रागयुक्त अर्थात् लालिमायुक्त सन्ध्या (अनुराग युक्त नायिका के समान) स्वयं अम्बर अर्थात् आकाश (नायिका-वस्त्र) का परित्याग कर रही हैं—

'चंचच्चन्द्रकर स्पर्श हर्षोन्मीलिततारका ।
अहो रागवती सन्ध्या जहाति स्वयम्बरम् ।।' —कि० का० ३०/४५

यहां सन्ध्या में काम की नायिका के व्यवहार का आरोप करके समासोक्ति अलंकार के माध्यम से राम के हृदय में स्थित रति को सुन्दर रूप में उद्घाटित किया गया है ।

मन्द-मन्द प्रवहमान सरिताओं पर नव-वधुओं का आरोप कर कवि ने श्रृंगार-रस की रमणीयता में वृद्धि की है ।

शरद्-ऋतु में नदियां मन्द गति से बह रही हैं, ऐसा प्रतीत होता है, मानो कामिनियां रात्रि में प्रियतम द्वारा उपभोग किए जाने पर प्रातःकाल अलसायी गति से चल रही हों और मछलियां ही उनकी मेखला हों—

'मीनोपसंदर्शित मेखलानां, नदीवधूनां गतयोऽद्य मन्दाः।
कान्तोपभुक्तालस गामिनीनां प्रभातकालेष्विव कामिनीनाम् ॥'

—कि० का० ३०/५४

एक अन्य रूपक जिसमें नदियों में नवोढ़ा के सुन्दर अंगों का आरोप किया गया है, अत्यन्त हृदयावर्जक है।

नदियों के मुख नव-वधुओं के मुख हैं। चक्रवाक्, गोरोचन द्वारा निर्मित तिलक हैं। सेवार वधु के मुख पर बनी हुई पत्रभंगी है। कास, शुभ्र दुकूल बनकर सरिता रूपी वधू के मुख को अवगुण्ठित किये हुए है—

'सचक्रवाकानि सशैवलानि, काशैर्दुक्लैरिव संवृतानि।
सपत्ररेखाणि सरोचनानि, वधू मुखानीव नदीमुखानि ॥'

—कि० का० ३०/५५

इस प्रकार वियोग शृंगार को उद्‌बुद्ध करने में प्रकृति की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है:

शृंगारेतर रसों की उद्दीपिका-प्रकृति

शृंगार के साथ-साथ प्रकृति शृंगारेतर रसों भयानक, करुण, वीर, अद्‌भुत, बीभत्स, शान्त आदि में भी उद्दीपन का कार्य करती है।

करुण रसोद्दीपिका-प्रकृति

शोक को भी प्रकृति से पोषण मिलता है। राम अयोध्या को छोड़कर वन जा रहे हैं। रामवियोग का प्रभाव न केवल मनुष्य जगत् पर अपितु प्राकृतिक जगत् पर भी पूर्णतया परिलक्षित हो रहा है। कवि ने प्रकृति में दिखायी देने वाले प्रभाव को अंकित कर करुण रस की मार्मिक अभिव्यक्ति की है।

राम के वन गमन का समाचार सुनकर भगवान् भास्कर अस्ताचल को चले गये, हाथियों ने मुख में लिया हुआ चारा त्याग दिया, धेनुओं ने अपने बछड़ों को दूध पिलाना बन्द कर दिया—

'अकुर्वन् न प्रजाः कार्यं सूर्यश्चान्तर धीयत।
व्यसृजन् क्वलान् नागा गावो वत्सान् न पाययन् ॥'

—अयो० का० ४१/९

आकाश में व्याप्त घनपटली वायु के वेग से उमड़ते हुए सागर के समान प्रतीत होने लगी तथा नगर जोर-जोर से हिलने लगा। दिशाएं व्याकुल हो उठीं, सर्वत्र अंधकार व्याप्त हो गया, न कोई ग्रह प्रकाशित होता था और न नक्षत्र—

'दिशः पर्याकुलाः सर्वास्तिमिरेणेव संवृताः ।
न ग्रहो नापि नक्षत्रं प्रचकाशे न किंचन ।।' —अयो० का० ४१/४४

शीतल वायु का चलना भी बन्द हो गया । चन्द्रमा भी सौम्य नहीं दिखाई देता था और न सूर्य तप रहा था । सारा संसार ही व्याकुल हो उठा था—

'न वाति पवनः शीतो न शशी सौम्यदर्शनः ।
न सूर्यस्तपते लोकं सर्वं पर्याकुलं जगत् ।।' —अयो०का० ४१/१८

इस प्रकार यहां प्रकृति के समस्त अंगों में राम के वियोगजन्य सन्ताप का पूर्ण प्रभाव निरूपित करके शोक स्थायी-भाव को व्यंजित करने में तथा करुण रस की अतिशयिता ध्वनित करने में कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है ।

राम, लक्ष्मणादि को वन में छोड़कर अयोध्या लौट आने पर सुमन्त्र ने राजा दशरथ के समक्ष चराचर जगत् में परिलक्षित होने वाले राम के वियोग का जो सन्तापकारी प्रभाव वर्णित किया है, उसमें प्राकृतिक तत्वों के माध्यम से करुण-रस की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है ।

सरिताओं, छोटे तथा बड़े सरोवरों का जल गरम हो गया है, तथा वनों और उपवनों के पत्ते सूख गये हैं—

'उपतप्तोदका नद्यः पल्वलानि संरासि च ।
परिशुष्क पलाशानि वनान्युपवनानि च ।।' —अयो० का० ५९/५

वन्य जीव-जन्तु अजगर आदि सर्प कहीं नहीं जा रहे हैं, वे वहीं पर पड़े हुए हैं । राम के शोक से पीड़ित सारा वन कूजन रहित हो गया है—

'न च सर्पन्ति सत्वानि व्याला न प्रचरन्ति च ।
रामशोकाभिभूतं तन्निष्कूजमभवद् वनम् ।।'
—अयो० का० ५९/६

नदियों का जल मलिन हो गया है, कमलों के पत्ते गल गये हैं, सरोवरों के कमल सूख गये हैं और उनमें रहने वाली मछलियां तथा पक्षी भी नष्ट हो गए हैं—

'लीनपुष्कर पत्राश्च नद्यश्च कलुषोदकाः ।
संतप्तपद्माः पद्मिन्यो लीनमीनविहंगमाः ।।' —अयो० का० ५९/७

अयोध्या के उपवन भी सूने से हो गए हैं । उनमें रहने वाले पक्षी भी छिप गए हैं और उद्यानों की वह रमणीयता भी अब दृष्टिगोचर नहीं हो रही है—

'अत्रोद्यानानि शून्यानि प्रलीनविहगानि च ।
न चाभिरामानारामान् पश्यामि मनुजर्षभ ।।' —अयो० का० ५९/९

इस प्रकार प्रकृति में शोक के प्रभाव को दिखाकर करुण रस की धारा प्रवाहित करने में जो सफलता कवि को प्राप्त हुई है, वह प्रशंसनीय है। पेड़-पौधों, सरोवर, पशु, पक्षी आदि के निष्क्रिय भाव ने अयोध्यावासियों के शोक को घनीभूत कर दिया है। भरत ननिहाल से अयोध्यापुरी को आ रहे हैं, अभी वे पिता के निधन की शोक-सन्तप्तकारी घटना से अवगत भी नहीं हो पाये थे कि प्रकृति ने उनके अंतस् में विषाद के बीज पहले ही बो दिये।

वाल्मीकि राज दरबारी कवि नहीं है। नगर के विलास एवं ऐश्वर्य का वर्णन करने में उनका मन उतना नहीं रमता है, जितना कि प्रकृति चित्रण में कवि ने अधिकांश रसों का परिपोष प्रकृति के साहचर्य से ही किया है। तथा चराचर जगत् के एकात्मकता स्थापित की है। सीता अपहरण के प्रसंग में भी कवि ने सीता और राम के हृदय की मार्मिक पीड़ा को प्रकृति के साहचर्य से अभिव्यक्त किया है। सीता और राम का शोक अधिकांशतः प्रकृति की गोद में ही अभिव्यक्त हुआ है। समस्त प्रकृति राम और सीता के दुःख में दुःखित दिखायी देती है। रावण सीता का अपहरण करके ले जा रहा है, और वह कनेर के पुष्पित वृक्षों से हंसों और सारसों के कलरव से शब्दापमान गोदावरी नदी से अपनी मुक्ति के लिए अनुनय विनय करती हुई कहती है—

'आमन्त्रये जनस्थाने कर्णिकारांश्च पुष्पितान्।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः॥
हंस सारससंघुष्टां वन्दे गोदावरीं नदीम्।
क्षिप्रं रामाय शंस त्वं सीतां हरति रावणः॥'

—अर० का० ४६/३०-३१

सीता के दुःख से प्रकृति अत्यन्त व्याकुल है। ऐसा लगता है मानों सम्पूर्ण प्रकृति शोकाभिभूत होकर उनके शोकावेग को अभिव्यक्त कर रही है।

जब सीता का अपहरण हो रहा है, तब ऐसा प्रतीत होता है, मानों पर्वत झरनों के रूप में आंसू बहा रहे हैं और ऊंचे शिखरों के रूप में अपनी भुजाएं ऊपर उठाकर उच्च स्वर से चीत्कार कर रहे हैं—

जल प्रपातास्रमुखाः शृंगैरुच्छ्रित बाहुभिः।
सीतायां ह्रियमाणायां विक्रोशन्तीव पर्वताः॥'

—अर० का० ५२/३७

सीता का अपहरण देखकर सूर्य भी मानों दुःखी हो गया उसकी प्रभा नष्ट सी हो गई, सूर्यमण्डल पीला पड़ गया—

'ह्रियमाणां तु वैदेहीं दृष्ट्वा दीनो दिवाकरः ।
प्रविध्वस्तप्रभः श्रीमानासीत् पाण्डुरमण्डलः ।।' —अर०का० ५२/३८

इस प्रकार सीता की दैन्यावस्था को प्रकृति के माध्यम से अत्यन्त प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त किया है । इसी प्रकार स्वर्ण-मृग का वध करके लौटकर आने पर जब राम को अपनी पर्णशाला सीता से रहित दिखाई देती तब उनका अन्तःकरण अनिष्ट की आशंका से व्यथित हो उठता है, वह पर्णशाला इतनी उजाड़ दिखायी देती है, मानों वृक्ष रो रहे हों, पुष्प मुर्झा गये हों, मृग और पक्षी उदास हों और उसकी शोभा नष्ट हो गयी हो तथा वन के देवता उस स्थान को छोड़कर चले गए हों—

'रुदंतमिव वृक्षैश्च ग्लानपुष्पमृगद्विजम् ।
श्रिया विहीनं विध्वस्तं संत्यक्तं वनदेवतैः ।।' —अर० का० ६०/६

कवि ने मानव और प्रकृति के बीच किसी प्रकार कोई दुराव नहीं रखा है । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, सुख दुःख के सहभागी हैं । सीता और राम के दुःख को देखकर प्रकृति भी उतनी ही व्यथित होती है, जितना वे स्वयं दुःखी होते हैं । जो प्रकृति का रमणीय रूप आनन्द प्रदान करने वाला है, वही यहां पर राम की करुण दशा को उद्दीप्त कर रहा है । जब चारों ओर खोज करने पर कहीं भी सीता नहीं दिखाई देती तो राम उन्मत्त से होकर करुण विलाप करते हुए विभिन्न वन वृक्षों से सीता के विषय में पूछते हैं । यहां पर कवि की भारती उन्मुक्त रूप में प्रवाहित होती है । वह प्रकृति का ऐसा भावपूर्ण अंकन करता है कि पाठक राम की अत्यन्त व्याकुल दशा को सहज ही अनुभूत कर लेता है । राम, कदम्ब, बिल्व, अर्जुन आदि वृक्षों से दीनताभरी वाणी में सीता का पता पूछते हैं । वे अन्य वृक्षों तथा पशु, पक्षियों से भी सीता के विषय में पूछते हैं । जो लता, वनस्पति मृगादि सीता के अंगों की समता करने वाले थे, उनको देखकर तो राम का हृदय शोक से क्षुब्ध हो उठता है, वे उन्मादावस्था को प्राप्त होकर लता को ही सीता समझते हुए कहने लगते हैं—

'किं धावसि प्रिये नूनं दृष्टासि कमलेक्षणे ।
वृक्षैराच्छाद्य चात्मानं किं मां न प्रतिभाषसे ।।'
—अर० का० ६१/२६

यह करुण विप्रलम्भ की पराकाष्ठा है । राम की दुःखावस्था को करुण रस की अतिशयता तक पहुंचाने का श्रेय प्रकृति को ही है । अन्य किसी प्रकार से रसास्वादन में इतनी सघनता उत्पन्न नहीं की जा सकती थी । यहां राम के साथ प्रकृति एकाकार हुई सी प्रतीत होती है । राम का सम्पूर्ण शोक प्रकृति के आंचल

में ही मुखरित हुआ है। उनके शोक को प्रकट करने के लिए अन्य कोई अवकाश ही नहीं था।

इस प्रकार रामायण में आदिकवि ने अपने प्रधान रस करुण को प्रकृति के साहचर्य से उद्दीप्त करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

भयानक-रस के परिपोष में प्रकृति की सहकारिता

जिस प्रकार प्रकृति का रमणीय रूप मानव-मन को आनन्दविभोर कर देता है, उसी प्रकार उसका भयावह रूप भयानक रस को परिपुष्ट करता है।

रामायण में राम के वनगमन के अवसर पर क्रूर ग्रहों का चन्द्रमा के निकट जाकर थर-थर कांपना, धूमकेतुओं का प्रकट होना, भयंकर भीमकाय कृष्ण मेघों का आंधी के साथ उठना, दसों दिशाओं में अन्धकार छा जाना, भूकम्प आ जाना[1] आदि अनुभावों द्वारा एक ओर विषाद की व्यंजना हो रही है, वहां दूसरी ओर भयानक रस भी अभिव्यंजित होता है, क्योंकि यह अनुभाव भय को भी पुष्ट करने वाले हैं।

राम ने समुद्र से लंका में प्रवेश के लिए मार्ग देने की जो प्रार्थना की, उसमें भी समुद्र के भयानक रूप का वर्णन करके कवि ने भयानक-रस को पुष्ट किया है। विनम्र प्रार्थना करने पर भी जब सागर ने मार्ग नहीं दिया तो राम क्रोधाविष्ट होकर भयंकर बाणों की वर्षा करते हैं, उस समय का समुद्र का भयावह रूप निश्चय ही भयानक रस को उद्दीप्त करने वाला है। विन्ध्याचल और मन्दराचल के समान समुद्र में नाकों और मकरों को साथ लिए हुए हजारों तरंगें ऊपर उठने लगीं—

> 'ऊर्मयः सिन्धुराजस्य सनक्रमकरास्तथा।
> विन्ध्यमन्दरसंकाश समुत्पेतुः सहस्रशः॥' —यु० का० २१/३१

समुद्र की उत्ताल तरंगें झूमने और चक्कर काटने लगीं वहां रहने वाले नाग और राक्षस भयभीत हो गये। बड़े-बड़े ग्राह ऊपर उछलने लगे और पयोधि में कोलाहल-सा मच गया—

> 'आघूर्णिततरंगौघः सम्भ्रान्तोरगराक्षसः।
> उद्वर्तितमहाग्राहः सघोषो वरुणालयः॥' —यु० का० २१/३२

यहां पर भी सागर का भयोत्पादक रूप भयानक-रस के परिपोष में पूर्ण सहकारी है।

प्रकृति में होने वाले अशुभ परिवर्तन के माध्यम से अपशकुनों द्वारा भयानक-रस के विधान का चित्र भी दर्शनीय है—

---

१. अयो० का० ४१/११-१४

'ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः पतिताः सूर्यरश्मयः ।
दृश्यन्ते रावणस्यांगे पर्वतस्येव धातवः ॥
गृद्ध्रै रनुगताश्चास्य वमन्त्यो ज्वलनं मुखैः ।
प्रणे दुर्मुखीक्षन्त्यः संरब्धमशिवं शिवाः ॥'

—यु० का० १०६/२६-२७

यहां पर प्राकृतिक व्यापार समर को भयावह रूप प्रदान करने में अत्यन्त सहायक हो रहे हैं ।

बीभत्स-रस के परिपोष में प्रकृति की सहकारिता

प्राकृतिक पदार्थ, बीभत्स-रस को परिपुष्ट करने में अत्यन्त सहायक होते हैं । रामायण में करुण-रस के समान वीर-रस की भी प्रचुरता है, क्योंकि इसमें युद्ध के दृश्यों की प्रचुरता है । समर में अधिकाधिक राक्षसों का संहार दिखलाने और युद्ध की विकरालता को उपस्थित करने के लिए बीभत्स रस की सृष्टि की गई है ।

युद्ध भूमि में राक्षसों के शव पड़े हैं । भेड़िया, गीदड़, गृद्ध आदि शवों को नोंच-नोंचकर खा रहे हैं ।

वाल्मीकि ने रक्त-सरिता का चित्र उपस्थित करते हुए मृत योद्धाओं के छिन्न-भिन्न अंगों, आंतड़ियों, कपालों आदि को उसमें बहता हुआ दिखलाया है ।

'यकृत्प्लीहामहापंकां विनिकीर्णान्त्रशैवलाम् ।
भिन्नकायशिरोमीनामंगावयवशाद्वलाम् ॥
गृध्रहंसवराकीर्णा कंकसारससेविताम् ।
मेदःफेन समाकीर्णामार्त्तस्तनितनिःस्वनाम् ॥
तां कापुरुषदुस्तारां युद्धभूमिमयीं नदीम् ।
नदीमिव धनापाये हंससारससेविताम् ॥'

—यु० का० ५८/३०-३२

इसी प्रकार अन्यत्र भी बीभत्स-रस के परिपोष में प्रकृति की सहकारिता दर्शनीय है ।

अद्भुत-रस के परिपोष में प्रकृति की सहकारिता

प्रकृति के आंचल में घटित होने वाली आश्चर्यजनक घटनाएं तथा विभिन्न प्रकार के विस्मयोत्पादक प्राकृतिक पदार्थ अद्भुत-रस की व्यंजना करने में बहुत सहायक होते हैं और चूंकि रामायण का अधिकांश कथानक प्रकृति के क्रोड में ही आगे बढ़ा है, अतः अनेक ऐसे प्रसंग हैं, जहां प्रकृति चित्रण अद्भुत-रस को उद्दीप्त एवं पुष्ट करता है ।

राम की खोज करते हुए भरत भरद्वाज ऋषि के आश्रम में पहुंचे। वहां न केवल ऋषि ने भरत का अद्भुत आतिथ्य सत्कार किया, अपितु प्रकृति ने भी अपनी चेष्टाओं, रमणीय रूपों द्वारा भरत एवं उनकी सेना को प्रसन्न कर दिया। यह अद्भुत-रस का उत्तम प्रसंग है, और यहां रस निष्पत्ति में प्रकृति की सहकारिता महत्वपूर्ण है।

मेघों द्वारा पुष्प वर्षा करना, समस्त दिशाओं में देवताओं की दुन्दुभियों का मधुर स्वर व्याप्त हो जाना, उत्तम वायु का प्रवाहित होना, अप्सराओं द्वारा सामूहिक नृत्य करना, देवों और गन्धर्वों का गान तथा वीणा की स्वर लहरी का सब ओर फैल जाना आदि प्रकृति के रमणीय दृश्य कितने विस्मयोद्दीपक हैं—

'ततोऽभ्यवर्षन्त घना दिव्याः कुसुमवृष्टयः।
देवदुन्दुभिघोषश्च दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे॥
प्रववुश्चोत्तमा वाता ननृतुश्चापसरोगणाः।
प्रजगुर्देवगन्धर्वा वीणाः प्रमुमुचुः स्वरान्॥

—अयो० का० ९१/२५-२६

सब ओर की भूमि समतल हो जाती है। उस पर नीलम तथा वैदूर्य मणि के समान नाना प्रकार की घनी घास छा जाती है। विभिन्न प्रकार के फूलों और फलों से लदे हुए वृक्ष वहां सुशोभित होते हैं। दिव्य भोगसामग्रियों से सम्पन्न चैत्र रथ नाम का वन, उत्तम कुरुवर्ष से वहां आ जाता है, और अनेक वृक्षों से घिरी हुई रमणीय नदियां भी वहां आ जाती हैं—

'उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्च वनं दिव्योपभोगवत्।
आजगाम नदी सौम्या तीरजैर्बहुभिर्वृता॥' —अयो० का० ९१/३१

इस प्रकार प्रकृति का वैभवशाली रूप विस्मयोद्दीपक होने से अद्भुत-रस का परिपोष करने वाला है।

कंचन-मृग का प्रसंग भी राम-कथा में अद्भुत रस का सुन्दर उदाहरण है। यद्यपि वह स्वर्ण-मृग का रूप धारण करने वाला मायावी राक्षस था, किन्तु प्रकृति के मध्य वह इस तरह क्रीड़ा कर रहा था कि उसे पूर्णरूपेण मृग समझकर आनन्दानुभूति हो रही थी।[1]

हनुमान का सागर लंगन तथा राम द्वारा लंका में प्रवेश करने के लिए समुद्र से मार्ग की यांचना करते समय उसके भयावह रूप के साथ-साथ विस्मयजनक रूप का जो चित्रण किया है, उसमें ऐसा प्रतीत होता है, मानों कवि प्रकृति की यवनिका हटाकर मंच पर एक अद्भुत दृश्य उपस्थित कर देते हैं, जिसे देखने के लिये गन्धर्व और विद्याधर तथा उनकी स्त्रियां भी आकाश मार्ग में उपस्थित हो जाती हैं।

१. अर० का० ४७/२७-३०

इस प्रकार रामायण में अद्भुत-रस के परिपोष में प्रकृति की सहकारिता अभिनन्दनीय है।

रौद्र रस के परिपोष में प्रकृति की सहकारिता

क्रोध के उद्दीपन में भी प्रकृति का ग्रहण कवि ने किया है। यद्यपि क्रोध को उद्दीप्त करने में प्रकृति स्वतंत्ररूप से सहायक होती हुई दिखायी नहीं देती है, पुनरपि राम, लक्ष्मण के क्रोध को प्रकट करने के लिए प्रकृति का सहयोग लिया गया है।

शरद् ऋतु के आ जाने पर भी जब राम सुग्रीव की ओर से सीतान्वेषण का कोई प्रयत्न नहीं देखते तब वे क्रोध भरा संदेश लक्ष्मण द्वारा भेजते हैं। क्रोधित होकर सुग्रीव के पास जाते समय का लक्ष्मण का जो चित्र कवि ने चित्रित किया है, उसमें रौद्र रस को मार्मिक रूप से अभिव्यक्त करने में प्राकृतिक पदार्थों की सहकारिता दर्शनीय है—

'सालतालाश्वकर्णाश्च तरसा पातयन् बहून्।
पर्यस्यन् गिरिकूटानि द्रुमानन्यांश्च वेगितः॥
शिलाश्च शक्लीकुर्वन् पदभ्यां गज इवाशुगः।
दूरमेकपदं त्यक्त्वा ययौ कार्यवशाद् द्रुतम्॥'

—कि० का० ३१/१४-१५

इसी प्रकार सागर द्वारा मार्ग दर्शन प्रदान न करने पर भी राम का क्रोध प्रदीप्त हो उठता है, और रौद्र रस की धारा प्रवाहित होती है।

शान्त-रस के परिपोष में प्रकृति की सहकारिता

शान्त-रस का स्थायी भाव निर्वेद अथवा शम माना गया है। निर्वेद भी दो प्रकार का माना जाता है, तत्व ज्ञान से उत्पन्न और इष्ट वियोग से उत्पन्न। वस्तुतः तत्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद ही इसका स्थाई भाव होता है।[1]

तत्वज्ञान की प्राप्ति और शम के अभ्यास में प्रकृति, तपोवन आदि का विशेष सहयोग होता है। अतः शान्त-रस के उद्भावन में ज्ञान-चर्चा तथा वैराग्य के अतिरिक्त प्रकृति के शान्त एवं शीतल दृश्यों का वर्णन भी उद्दीपन विभाव का कार्य करता है।[2]

रमणीय और शीतल प्राकृतिक दृश्यों को देखकर इच्छाओं और भावनाओं के संघर्षों से सतायी हुई इन्द्रियों को विश्राम और शांति का अनुभव होता है।

वाल्मीकि ने प्रकृति के रमणीय रूपों को प्रस्तुत करते हुए शान्त-रस को

---

१. काव्यदर्पण, पृ० २७८
२. सा० द० ३/२४५

परिपुष्ट किया है। प्राकृतिक दृश्यों को देखकर मन संसार को छोड़कर उन्हीं में रम जाना चाहता है, उन पावन दृश्यों से मन में सात्विक भावों का संचार होता है। चित्रकूट पर्वत के वर्णन में इसी प्रकार का शान्त रस छलकता है—

'यावता चित्रकूटस्य नरः शृंगाण्यवेक्षते।
कल्याणानि समाधते न पापे कुरुते मनः॥' —अयो० का ५४/३०

रामकथा में चित्रकूट, गंगा, मंदाकिनी यथा गिरिकान्तार और सर-सरिता परम्परागत रूप में शान्त रस के प्रेरक रहे हैं।

वाल्मीकि का हेमन्त वर्णन किष्किन्धा के वर्षा, वसन्त एवं शरद् के वर्णनों से भिन्न हैं। वसन्तादि के वर्णन जहां मुख्यतः शृंगार रस का परिपोष करने वाले हैं वहां हेमन्त का वर्णन शान्त रस की धारा प्रवाहित करता है। हेमन्त वर्णन में राम, लक्ष्मण और सीता के वास्तविक वनवासी-जीवन की झलक दिखाई देती है। प्रकृति के शान्त रूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

'मृदुसूर्याः सुनीहाराः पटुशीताः समारुताः।
शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति साम्प्रतम्॥'
—अर० का० १६/११

विलाप करते हुए भरत को राम ने संसार की निःसारता एवं क्षणभंगुरता का जो उपदेश दिया है, उसमें प्राकृतिक तत्वों को उपमानों के रूप में ग्रहण कर शान्त-रस को उसकी उत्कृष्टावस्था तक पहुंचाया गया है।[1]

प्रकृति के रमणीय आंचल में स्थित अगस्त्य ऋषि के आश्रम के मनोहारी वर्णन में शान्त रस छलक रहा है।

राम और लक्ष्मण अगस्त्य ऋषि के आश्रम की शोभा देखकर प्रमुदित हो उठते हैं। विभिन्न प्रकार के सुन्दर-सुन्दर वृक्ष, लताएं, पुष्प, फल एवं शाखाओं पर बैठे हुए पक्षी उनकी अन्तरात्मा में पवित्र भावनाओं का संचार करते हैं। वृक्षों के कोमल किसलयों तथा परस्पर प्रेमपूर्वक व्यवहार करने वाले पशु पक्षियों को देखकर ही यह अनुभव हो जाता है कि यहीं पर शुद्धात्मा अगस्त्य मुनि का पावन तपोवन है—

'स्निग्धपत्रा यथा वृक्षा यथा क्षान्ता मृगद्विजाः।
आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावितात्मनः॥'
--अर० का० ११/७८

---

१. अयो० का० सर्ग १०५

आश्रम का वन यज्ञ के धुंए से व्याप्त हैं। चीर-वस्त्र उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। मृगों के समूह शान्त भाव से विचरण कर रहे हैं, तथा विहंग मधुर कलरव कर रहे हैं—

'प्राज्य धूमाकुलवनश्चीर नाला परिष्कृतः।
प्रशान्तमृगयूथश्च नानाशकुनिनादितः॥' —अर० का० ११/८०

इस प्रकार शान्त रस के परिपोष में प्रकृति की सहकारिता प्रशंसनीय है।

मानव और प्रकृति के जीवन को इस प्रकार एकसूत्रता में गूंथने में आदि कवि पूर्णतः सफल हैं। प्रकृति मानव के हास और अश्रु, आशा और निराशा, उल्लास और विषाद सभी भावों को प्रकट करती है। प्रकृति का मानवीकरण जैसा रामायण में मिलता है, वैसा कदाचित् ही कहीं अन्यत्र प्राप्त होगा।

वाल्मीकि एक ओर रससिद्ध कवि हैं, तो दूसरी ओर प्रकृति के कुशल चितेरे हैं। अतएव रामायण में प्रकृति के विविध दृश्य, विभिन्न अवसरों पर शृंगार, करुण आदि रसों के परिपोष में विशेष रूप से सहकारी सिद्ध होते हैं।

—०—
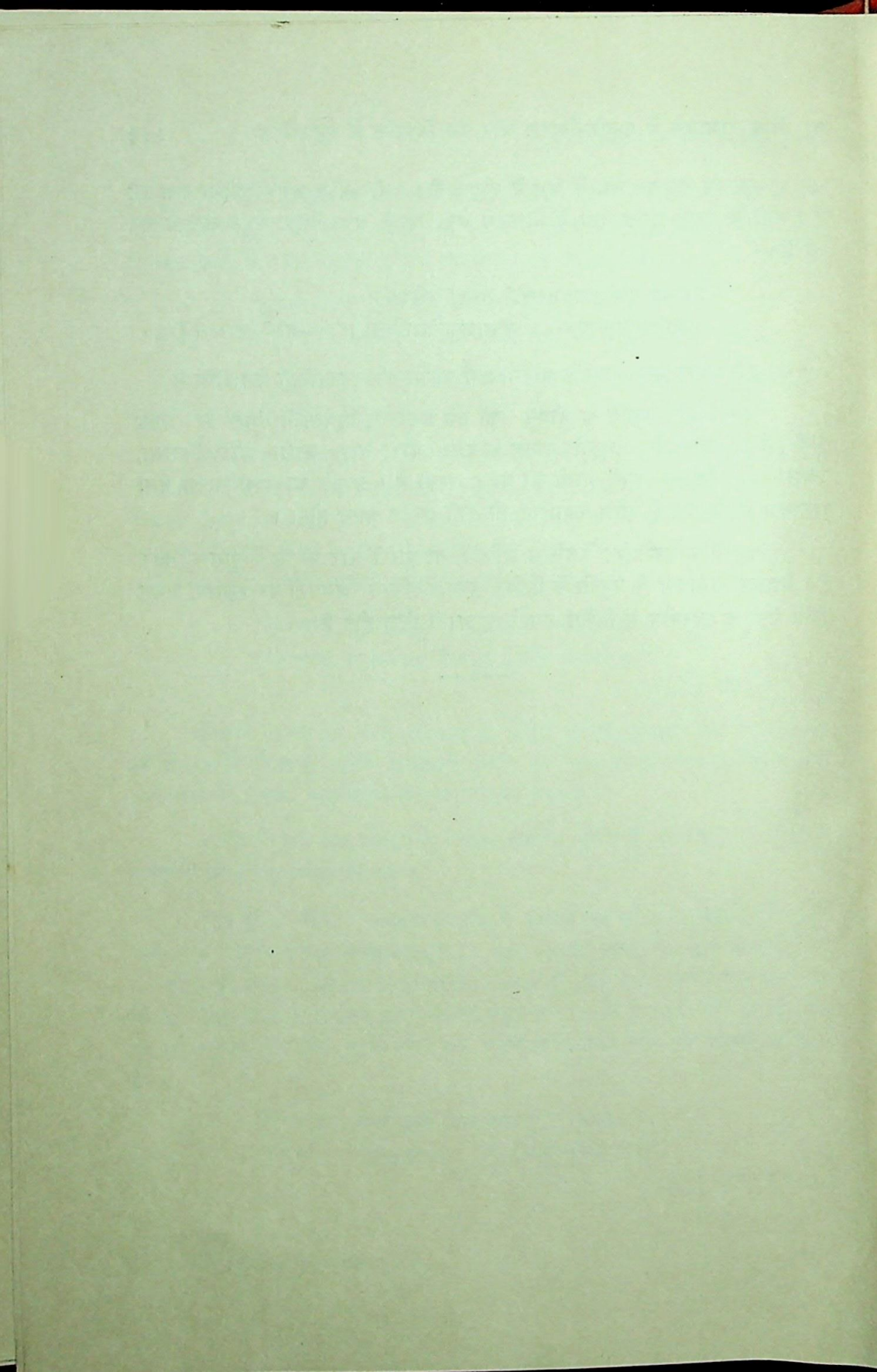
उपसंहार

रामायण को समस्त भारतीय साहित्य में निर्विवाद रूप से आदि-काव्य होने का गौरव प्राप्त है। आनन्दवर्धनादि प्रसिद्ध काव्य-शास्त्रियों, कालिदासादि महाकवियों ने इसे आदि-काव्य के रूप में श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है। भारतीय जन-जीवन पर रामायण का अत्यन्त व्यापक प्रभाव पड़ा है। आज भी राम-राज्य की मधुर कल्पना रामायण के महत्त्व को प्रमाणित करती है। साधारण शिक्षित जन भी रामायण के छन्दों का पाठकर आनन्द-विभोर हो जाते हैं।

यह भारतीय-संस्कृति और सभ्यता का अक्षय प्रेरणा-स्रोत है। रामायण ने भारतवर्ष के धार्मिक और ललित दोनों ही प्रकार के साहित्यकों व्यापक रूप में प्रभावित किया है। संस्कृत, हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य इस महाकाव्य से बहुत प्रभावित है। भास, कालिदास, अश्वघोष, भवभूति आदि अनेक कवियों ने रामायण से केवल कथानक ही नहीं लिया है अपितु अनेक प्रकार के अन्य काव्योचित प्रभावों की प्रेरणा भी ली है। ऐतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं दार्शनिक दृष्टि से भी रामायण का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

'रस' भारतीय काव्य-शास्त्र का बहुचर्चित एवं विशद् विषय है। काव्य-शास्त्र में रसात्मक अभिनिवेश को कवि का मुख्य कर्तव्य माना गया है—

'वाच्यानां वाचकानां च यदौचित्येन योजनम्।
रसादिविषयेणैतत्कर्म मुख्यं महाकवेः[1]॥'

भरत से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक की काव्य-शास्त्र की सुदीर्घ परम्परा संस्कृत आचार्यों की सूक्ष्म विवेचन शक्ति तथा काव्य-मर्मज्ञता की परिचायक है।

भारतीय काव्य-शास्त्र में रसास्वाद को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। अधिकांश आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

रस-विवेचना के अन्तर्गत एक विवादास्पद विषय यह रहा है कि सभी रस सुखात्मक होते हैं, अथवा नहीं ? यद्यपि कतिपय आचार्य करुणादि कुछ रसों को दुःखात्मक मानने के पक्ष में हैं, तथापि अधिकांश मनीषी सभी रसों को सुखात्मक

---

१. ध्वन्यालोक ३/८८

मानते हैं। सहृदयों के हृदय भी इस विषय में प्रमाण हैं। करुणादि रसों के दुःखात्मक मान लेने पर रामायण जैसे करुण-रस प्रधान अमर महाकाव्य तथा उत्तर-रामचरितम् जैसे करुण-रस प्रधान नाटक की महनीयता संदिग्ध हो सकती है, क्योंकि कोई भी काव्यानुरागी इन काव्यों का अध्ययन दुःख प्राप्ति के लिए नहीं करता है, अपितु अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्ति के लिये करता है। अतः हमने सभी रसों को सुखात्मक माना है।

सर्वप्रथम आचार्य भरत ने रस-स्वरूप एवं रसास्वादन का प्रकार निरूपित किया था। भरत का रस-सूत्र ही परवर्ती चिन्तकों की रस-निष्पत्ति एवं रस-सिद्धान्त की विवेचना का मुख्य आधार बना। अतः रस विवेचना में आनन्दवर्धन, मम्मट, धनंजय, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि आचार्यों की रस-विषयक मान्यताओं को पूर्ण आदर प्रदान करते हुए भरत एवं उनके व्याख्याकार अभिनव को मुख्य आधार माना है।

रसों की संख्या के विषय में काव्य-जगत् में पर्याप्त मतभेद रहा है। आचार्य गण रसों की संख्या ८ से ११ तक मानते हैं। विस्तृत विवेचना के पश्चात् शान्त-रस को रस-श्रेणी में स्थान प्राप्त हुआ है। इसका विरोध करने वाले काव्य-शास्त्री केवल नाटकों की दृष्टि से शान्त को रस का स्थान प्रदान करने में संकोच करते हैं। वात्सल्य एवं भक्ति रस को मान्यता बहुत बाद में मिली है।

हमने रामायण में रस-योजना की समीक्षा से पूर्व, महाकाव्य के प्रधान रस पर विचार किया है। कतिपय विद्वान् शान्त-रस अथवा भक्ति-रस को इसका प्रधान रस निरूपित करते हैं, किन्तु हमें यह उचित नहीं लगता। कारण, रामायण काल तक इन रसों को मान्यता ही नहीं प्राप्त हुई थी। हां, करुण अथवा वीर को प्रधान रस मानने वाले मनीषियों का स्वर अन्यों की अपेक्षा ऊंचा है। व्यापक दृष्टि से विचार करने पर करुण-रस ही इस महाकाव्य का प्रधान रस सिद्ध होता है। स्वयं कवि को भी यही अभिप्रेत था। विस्तार की दृष्टि से भी करुण रस का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है।

वाल्मीकि की प्रेरणा का मूल आधार करुणा है। उनके हृदय की यह करुणा सम्पूर्ण महाकाव्य में व्याप्त है। यही कारण है कि अन्य रसों की योजना में भी करुण भाव किसी न किसी रूप में आ ही जाता है। अतः वीरवृत्त में भी करुण-रस की प्रधानता है।

वाल्मीकि ने शोक की सभी संभव स्थितियों का विस्तार से वर्णन किया है। अनेक प्रसंगों में ऐसा प्रतीत होता है कि काव्य-शास्त्रीय दृष्टिकोण से किसी अन्य रस की स्थिति होनी चाहिये, किन्तु वहां पर कवि शोक के विभाव, अनुभावों एवं संचारी भावों की ऐसी योजना करते हैं कि विप्रलम्भ-शृंगार के स्थान पर भी करुण रस प्रतीत होने लगता है।

कवि ने चराचर जगत् में शोक के व्यापक प्रभाव को अंकित किया है । कवि को कविता की प्रेरणा-क्रौंच-वनिता के विलाप से मिली थी, अतः करुण-रस की योजना करते समय इस उपमान को अनेक स्थानों पर प्रयुक्त किया गया है ।

कवि ने नायक पक्ष के पात्रों की शोकानुभूति के समान ही विपक्ष की शोकानुभूति का सहृदयतापूर्वक वर्णन किया है ।

भरतादि ने शृंगार-रस के जिस उज्ज्वल रूप की कल्पना की थी, वह हमें इस महाकाव्य में उपलब्ध होता है । राम और सीता का आदर्श प्रेम इस कथा का मुख्य आधार है । वासना की गन्ध का लेशमात्र भी इन महनीय चरित्रों में नहीं हो सकता था । अतः शृंगार का मांसल रूप रामायण में नहीं है । शृंगार की निर्मल छटा इसमें दिखलायी पड़ती है । यद्यपि वाल्मीकि ने शृंगार-रस को प्रधान रस का महत्त्व प्रदान नहीं किया है तथापि कवि की दृष्टि से यह सत्य कैसे तिरोहित रह सकता था, कि शृंगार-रस का स्थायी-भाव 'रति' अर्थात् प्रेम न केवल मानव-मात्र की अपितु पशु-पक्षियों की भी मूल-भावना है । अतः शृंगार-रस के हृदयावर्जक चित्र इस काव्य में विद्यमान हैं । कवि ने संयोग शृंगार की अपेक्षा वियोग-शृंगार की योजना विस्तार से की है । सीता-हरण के पश्चात् राम के विलाप में (अरण्यकाण्ड) और अशोक वाटिका में निवास करती हुई, सीता के विलाप में (सुन्दरकाण्ड) विप्रलम्भ-शृंगार का विशेष प्रसार हुआ है । विरह-वर्णन में उन्माद की दशा का चित्रण करने की परम्परा वाल्मीकि-रामायण से ही प्रारम्भ हुई है । राम की विरह-भावना को उद्दीप्त करने में प्रकृति की विशेष भूमिका रही है । कवि ने वसन्त, वर्षा और शरद् की पृष्ठ-भूमि पर राम के विरह का प्रसार किया है ।

चित्रकूट तथा मन्दाकिनी के माध्यम से कवि ने संयोग शृंगार की व्यंजना की है । यद्यपि राम और सीता का प्रेम-व्यवहार वनों की सुरम्य शीतल छाया में प्रकट हुआ है, तथापि कवि ने कहीं भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं होने दिया है ।

रामायण, राम जैसे सर्वशक्ति सम्पन्न, उत्साह के सागर, धर्म के धाम, परम दयालु, अनिन्द्य-चरित्र, अकुतोभय महान् वीर नायक की अमर गाथा है । राम-रावण का युद्ध इस महाकाव्य की प्रमुख घटना है अतः वीर-रस की प्रभावशाली योजना करने में आदिकवि पूर्णतः सफल हुए हैं । संपूर्ण रामायण में जहां एक ओर करुण-रस की धारा प्रवोहमान है, वहां दूसरी ओर उत्साह की लहरें भी निरन्तर उठती हुई दिखाई पड़ती है । यह उत्साह केवल शत्रु-वध के लिए नहीं है, अपितु कुल प्रतिष्ठा की स्थापना के लिए है । राम का उत्साह सीता के उद्धार, राक्षसों के अत्याचार से संत्रस्त वसुधा के त्राण तथा रामराज्य के रूप में धर्म की स्थापना में दिखाई देता है । नायक राम के अतिरिक्त लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, अंगद आदि पक्ष के पात्रों तथा रावण, कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् आदि विपक्ष के पात्रों के माध्यम से वीर-रस की हृदयग्राही योजना की गयी है ।

धर्मवीर के रूप में भरत एवं सीता का चरित्र भी अभिनन्दनीय है। राम के चरित्र-चित्रण में वीर-रस के चारों भेद—युद्धवीर, धर्मवीर, दान-वीर, दया-वीर सम्पूर्ण गरिमा के साथ विद्यमान हैं।

त्रिजट प्रसंग में शुद्ध हास्य-रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। मन्थरा-कैकेयी सम्वाद तथा शूपर्णखा प्रसंग मिश्रित हास्य व्यंग्य के सुन्दर उदाहरण हैं। वाल्मीकि मानवीय दुर्बलताओं को सहज और स्वाभाविक मानते हुए सम्पूर्ण मानव-प्रकृति का रसास्वादन करते हैं। अतः उनके इस काव्य में हास्य-रस की निर्मल छटा दर्शनीय है।

रामायण में रौद्र-रस का उज्ज्वल स्वरूप विद्यमान है। यह रौद्र-रस कहीं वीर एवं भयानक का सहयोगी बनकर आया है, और कहीं विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत। लक्ष्मण रौद्र-रस के उत्कृष्ट आश्रय हैं। वे राम के क्रोध के अभाव की पूर्ति करते हुए से प्रतीत होते हैं। राम के राज्याभिषेक में विघ्न पड़ने पर, भरत को चित्रकूट पर आता हुआ देखकर तथा सुग्रीव की कृतघ्नता समझकर लक्ष्मण विशेष रूप से क्रोध से उबल पड़ते हैं। कुछ प्रसंगों में राम का क्रोध भी पराकाष्ठा पर दिखाया गया है। नायक का ही नहीं अपितु प्रतिनायक रावण का क्रोध भी कालाग्नि समान है।

भयानक रस की योजना अद्‌भुत अथवा करुण-रस के अधीन हुई है। कहीं-कहीं रौद्र रस के आश्रय में भी भयानक रस प्रकट हुआ है। विशेषतः राक्षसों की भयानक आकृतियों एवं उनके भयोत्पादक कर्मों से भयानक-रस की व्यंजना हुई है। कवि ने अपशकुनों द्वारा भी भयानक-रस को प्रकट किया है।

बीभत्स-रस के अन्तर्गत शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की घृणा के चित्र उपलब्ध होते हैं। युद्धों की प्रचुरता तथा कुत्सित कर्मों के प्रति कवि के मन में जो घृणा का भाव विद्यमान है, उससे बीभत्स-रस का प्रसार होना स्वाभाविक ही था। युद्धभूमि के वर्णन में बीभत्स-रस की व्यंजना दर्शनीय है। राक्षस, राक्षसियां बीभत्स-रस के सशक्त आलम्बन और उनके कुत्सित कर्म मार्मिक उद्दीपन विभावसिद्ध हुए हैं।

रामायण में इतिहास एवं जनश्रुति दोनों तत्त्वों का संयोग है। सत्य और कल्पना का विचित्र समन्वय है। इसमें दिव्य एवं दिव्यादिव्य सभी प्रकार के पात्र हैं। अतः अद्‌भुत-रस के अनेक एवं विविध प्रसंग हैं। घटनाओं के अतिरिक्त अनेक पदार्थ भी विस्मय के प्रेरक हैं।

वीरतापूर्ण कार्यों, अद्‌भुत आकृतियों, विचित्र पदार्थों तथा अलौकिक एवं अतिप्राकृत घटनाओं के रूप में कहीं अद्‌भुत रस का पूर्ण परिपाक हुआ है, और कहीं विस्मय का भाव स्फुरित होकर रह गया है। यह कहीं वीर, भयानक एवं करुण-रस का अंग बनकर आया है, और कहीं भक्ति का प्रेरक बन गया है।

यद्यपि शान्त-रस को शास्त्रीय मान्यता बहुत समय पश्चात् प्राप्त हुई है; तथापि रामायण में शान्त-रस के रमणीय प्रसंग हैं। चित्रकूट, गंगा, मन्दाकिनी, तथा अन्यान्य गिरि-कान्तार, सर-सरिता तथा उनके तटों पर स्थित ऋषियों के पावन-तपोवन शान्त-रस के प्रेरक हैं। कवि ने जहां एक ओर प्रकृति वर्णन द्वारा शान्त-रस को उद्दीप्त किया है, वहां दूसरी ओर धर्म एवं वैराग्य विषयक उपदेशों द्वारा शान्त-रस की सरिता प्रवाहित की है।

काव्यशास्त्र में वात्सल्य रस को मान्यता बहुत बाद में मिली, किन्तु वत्सलता का भाव नूतन नहीं है, वह उतना ही चिरन्तन है, जितनी यह मानव-सृष्टि। अतः रामायण में कुछ प्रसंगों में वात्सल्य-रस का सहज उच्छलन दर्शनीय है। यह ठीक है कि, कवि ने वात्सल्य-रस की व्यापक योजना नहीं की है, किन्तु कुछ ऐसे स्थल इस महाकाव्य में हैं, जो वात्सल्य-रस की दृष्टि से अविस्मरणीय हैं। अपने प्राण प्रिय पुत्र राम के वियोग में प्राणों का परित्याग करके दशरथ ने मानव-संस्कृति के इतिहास में वात्सल्य का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है[1]।

आगे चलकर रामचरितमानस आदि में वात्सल्य रस का जो व्यापक प्रसार हुआ है, उसका उद्गम वाल्मीकि-रामायण को माना जा सकता है।

काव्यशास्त्र में भक्ति को रस रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय रूप-गोस्वामी एवं मधुसूदन सरस्वती को है। यदि दैन्य भाव को भक्ति-रस का स्थायी भाव मान लिया जाये तो इसका उज्ज्वल एवं व्यावहारिक रूप हमें विभीषण के चरित्र में दिखलाई पड़ता है। विभीषण अपना सब कुछ त्यागकर पूर्ण दीनता के साथ राम के चरणों में आ गिरता है, और तब दैन्य को अपने विशाल हृदय में समेटने वाली शक्ति उद्घोष करती है—

> 'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
> अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥' —यु० का० १८/३३

इस प्रकार भक्ति-भाव के सुन्दर प्रसंग रामायण में विद्यमान हैं, किन्तु सत्यता यह है कि यह भाव प्रायः रस-कोटि तक न पहुंचकर भाव रूप में ही स्फुरित होकर रह गया है।

आदि-कवि ने प्रकृति के अपार-अगाध कोष से नाना प्रकार के रत्नों को बटोर कर, मानव-जीवन को उल्लसित कर देने वाले रमणीय चित्र अंकित किये हैं। प्रकृति के माध्यम से कवि ने कहीं करुण-रस की योजना की है, तो कहीं श्रृंगार, भयानक

---

1. The instance of Dashrath's death due to separation from Rama is an ample proof for the existance of Vastalya as a major mood.
—The number of Rasas, p. 112

एवं शान्त रस की धारा प्रवाहित की है। रसों की निष्पत्ति में प्रकृति की सहकारिता अभिनन्दनीय है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रामायण में कुछ रसों की व्यापक योजना है, और कुछ की कम। वात्सल्य एवं शान्त-रस के उदाहरण अपेक्षाकृत कम हैं, किन्तु जीवन के अगाध सागर की किसी भी भाव-लहर से आदि कवि का मानस अछूता रहा होगा, यह कहना इस महाकाव्य की महान् चेतना और कला से अनभिज्ञता प्रकट करना होगा।

वाल्मीकि-रामायणगत रस योजना पर विचार करते समय यह विशेष रूप से ध्यान में रखा गया है कि कवि ने किसी सुनिश्चित शास्त्रीय मर्यादा में बन्धकर काव्य-रचना नहीं की है, अपितु निर्द्वन्द्व भाव से की है। कवि के समक्ष जो भी प्रसंग अथवा वर्ण्य विषय रहा है, उसका चित्रण कवि ने पूर्ण निष्ठा एवं तन्मयता से किया है।

यहां एक बात विशेष रूप से कहने योग्य है—काव्य अथवा रस की श्रेष्ठता का मानदण्ड 'उदात्त' तत्त्व को माना जाना चाहिए, क्योंकि श्रेष्ठ काव्य केवल मनोरंजन का साधन अथवा काव्यशास्त्र में निरूपित नायक-नायिका भेद, अलंकारों की क्रीडा अथवा रीति-वृत्ति का प्रदर्शन मात्र नहीं है। उत्तम काव्य का लक्ष्य इससे श्रेष्ठ होता है, और वह है, मानव के हृदय में सुप्तावस्था में पड़े हुए उदात्त भावों को जगाना। इस दृष्टि से विचार करने पर साहित्य में रामायण का स्थान और भी ऊंचा हो जाता है। कवि ने 'उदात्त' तत्त्व का सर्वत्र निर्वाह किया है। अतएव करुण एवं शृंगारादि के समान बीभत्स एवं रौद्रादि उद्वेगजनक रस भी मानवीय सद्भावों को जागृत करते हैं।

रामायण वह रसार्णव है, जिसमें अवगाहन कर काव्य-रसिक कृतकृत्य हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. ऋग्वेद —वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

२. अथर्ववेद —वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

३. वृहदारण्यकोपनिषद् —आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना, १९१५

४. तैत्तिरीय उपनिषद् —आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना

५. छान्दोग्य उपनिषद् —आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना

६. मनुस्मृति —ठाकुरदास एण्ड सन्स, वाराणसी, १९६८

७. अग्निपुराण —संस्कृत संस्थान, बरेली, १९६६

८. वाल्मीकि-रामायण —तिलक टीका, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।
—टीकात्रय (तिलक, भूषण, शिरोमणि), गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई।
—(हिन्दी अनुवाद) द्वारका प्रसाद मिश्र, इलाहाबाद १९५०
—एम० एन० दत्त कृत-अंग्रेजी अनुवाद, तीन जिल्दें १८८९-९१
—सातवलेकर, हिन्दी अनुवाद, पारडी (सूरत)
—गीता प्रेस गोरखपुर।

९. व्यास —महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर।

१०. कालिदास —अभिज्ञानशाकुन्तलम्, साहित्य संस्थान, इलाहाबाद, १९८०

११. कालिदास —रघुवंश महाकाव्यम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९७९

१२. कालिदास —मेघदूतम्, साहित्य भण्डार, मेरठ, १९७९

१३. चाणक्य —कौटिल्य अर्थशास्त्रम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६२

१४. भवभूति —उत्तररामचरितम्, साहित्य संस्थान, इलाहाबाद

१५. माघ —शिशुपालवधम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी

१६. तुलसीदास —रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर

१७. पाणिनी —अष्टाध्यायी, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत

१८. भरत —नाट्यशास्त्रम्, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९५६
१९. आनन्दवर्धन —ध्वन्यालोक, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९७९
२०. मम्मट —काव्यप्रकाश, साहित्य भण्डार, मेरठ, १९७४
२१. कुन्तक —वक्रोक्ति जीवितम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९३७
२२. धनंजय —दशरूपक, साहित्य भण्डार, मेरठ १९६९
२३. विश्वनाथ —साहित्य दर्पण, साहित्य भण्डार, मेरठ १९७६
२४. जगन्नाथ —रसगंगाधर, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९७८
२५. दण्डी —काव्यादर्श, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, १९३८
२६. राजशेखर —काव्यमीमांसा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९५४
२७. वात्स्यायन —कामसूत्र, जयमंगला व्याख्या, चौखम्बा प्रकाशन. वाराणसी
२८. भानुदत्त मिश्र —रसतरंगिणी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
२९. भोजराज —शृंगार-प्रकाश, कलकत्ता, १८९४
३०. भोजराज —सरस्वतीकण्ठाभरण, पब्लिकेशन बोर्ड, गोहाटी (आसाम) १९६९
३१. रामचन्द्र गुणचन्द्र — नाट्यदर्पण, हिन्दी विभाग, दिल्ली वि०वि० १९६१
३२. हेमचन्द्र —काव्यानुशासन—निर्णयसागर प्रेस बम्बई, १९३४
३३. रूपगोस्वामी —भक्तिरसामृतसिन्धु, अच्युत ग्रन्थमाला, काशी १९८८ विक्रमाब्द
३४. हापकिन्स —द ग्रेट एपिक आफ इण्डिया, यल (वि० वि०) १९०१
३५. सी० वी वैद्य —रिडल आफ रामायण, लन्दन, १९०६
३६. के० एस० रामास्वामी शास्त्री —स्टडीज इन रामायण—बड़ौदा, १९४४
३७. फादर कामिल बुल्के —रामकथा उत्पत्ति और विकास, प्रयाग १९५०
३८. वी०एस० श्रीनिवास शास्त्री—लैक्चर्स आन द रामायण, मद्रास १९५२
४९. एस० एन० व्यास —रामायणकालीन संस्कृति, दिल्ली, १९५८
४०. डा० राम प्रकाश अग्रवाल —वाल्मीकि और तुलसी; साहित्यिक मूल्यांकन, प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ, १९६६

४१. डा० मंजुला सहदेव —वाल्मीकि रामायण एवं संस्कृतो नाटकों में राम, विमल प्रकाशन, गाजियाबाद, १९७९
४२. सुशील कुमार डे —संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन
४३. पी० वी० काणे —संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास
४४. विन्टरनिट्ज —ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर, कलकत्ता भाग १, १९२७
४५. पार्जिटर एम० ई० —एंसियेन्ट हिस्टारिकल ट्रेडीशन, लन्दन, १९२२
४६. मैक्डानल एम० ए० —ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, लन्दन, १९१३
४७. वाचस्पति गैरोला —संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा विद्या भवन, १९७५
४८. डा० प्रेमस्वरूप गुप्त —रसगंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, १९६२
४९. वी० राघवन् —द नम्बर आफ रसाज, मद्रास, १९४९
५०. ए० त्र्यं० देशपाण्डे —भारतीय साहित्य शास्त्र, पोपुलर बुक डिपो,
५१. रामचन्द्र शुक्ल —रसमीमांसा, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
५२. डा० नगेन्द्र —रस-सिद्धान्त, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली १९४९
५३. डा० नगेन्द्र —विचार और विवेचन, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
५४. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र —वाङ्मय विमर्श, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी १९४५
५५. रामदहिन मिश्र —काव्यदर्पण, पटना
५६. डा० इन्द्रपाल सिंह —श्रृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन, चौखम्बा प्रकाशन, १९६७
५७. डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी—हिन्दी साहित्य में हास्य रस, हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली
५८. डा० कृष्णदेवझारी —बीभत्स-रस और हिन्दी साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन दिल्ली
५९. प्रो० राजवंश सहाय हीरा —भारतीय काव्य-शास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धान्त, चौखम्बा विद्याभवन, १९६७
६०. जयन्त मिश्र —काव्यात्म-मीमांसा, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी

६१. डा० कपिलदेव द्विवेदी —संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, साहित्य संस्थान इलाहाबाद
६२. डा० किरनकुमारी गुप्त —हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, प्रयाग
६३. डा० सुखदेव —भक्ति काव्य में प्रकृति चित्रण, देहली
६४. डा० कान्ति किशोर भरतिया —रामायण और महाभारत में प्रकृति, सुशील निवास कानपुर १९६९
६५. सुन्दरलाल कथूरिया —रस सिद्धान्त आक्षेप और समाधान, आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली १९७२
६६. सं० कृष्ण बल —भारतीय काव्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली १९६९
६७. डा० कृष्ण कुमार —अलंकार शास्त्र का इतिहास, साहित्य भण्डार, मेरठ १९६६

शब्द-कोष

१. अमर कोष —चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
२. वाचस्पत्यम् —चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
३. शब्दकल्पद्रुम —
४. हलायुध —
५. संस्कृत हिन्दी कोश —वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
६. वाल्मीकि रामायण कोष —डा० रामकुमार राय, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

पत्र-पत्रिकायें

१. कल्याण —रासायण विशेषांक, गीता प्रेस, गोरखपुर, जुलाई १९३०
२. जनरल आफ दि ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा।
३. हिन्दी अनुशीलन —धीरेन्द्र वर्मा, विशेषांक, १९६०
४. विश्व-संस्कृतम् —होशियारपुर
५. सागरिका —सागर विश्वविद्यालय सागर
६. गुरुकुल पत्रिका —गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

—०—
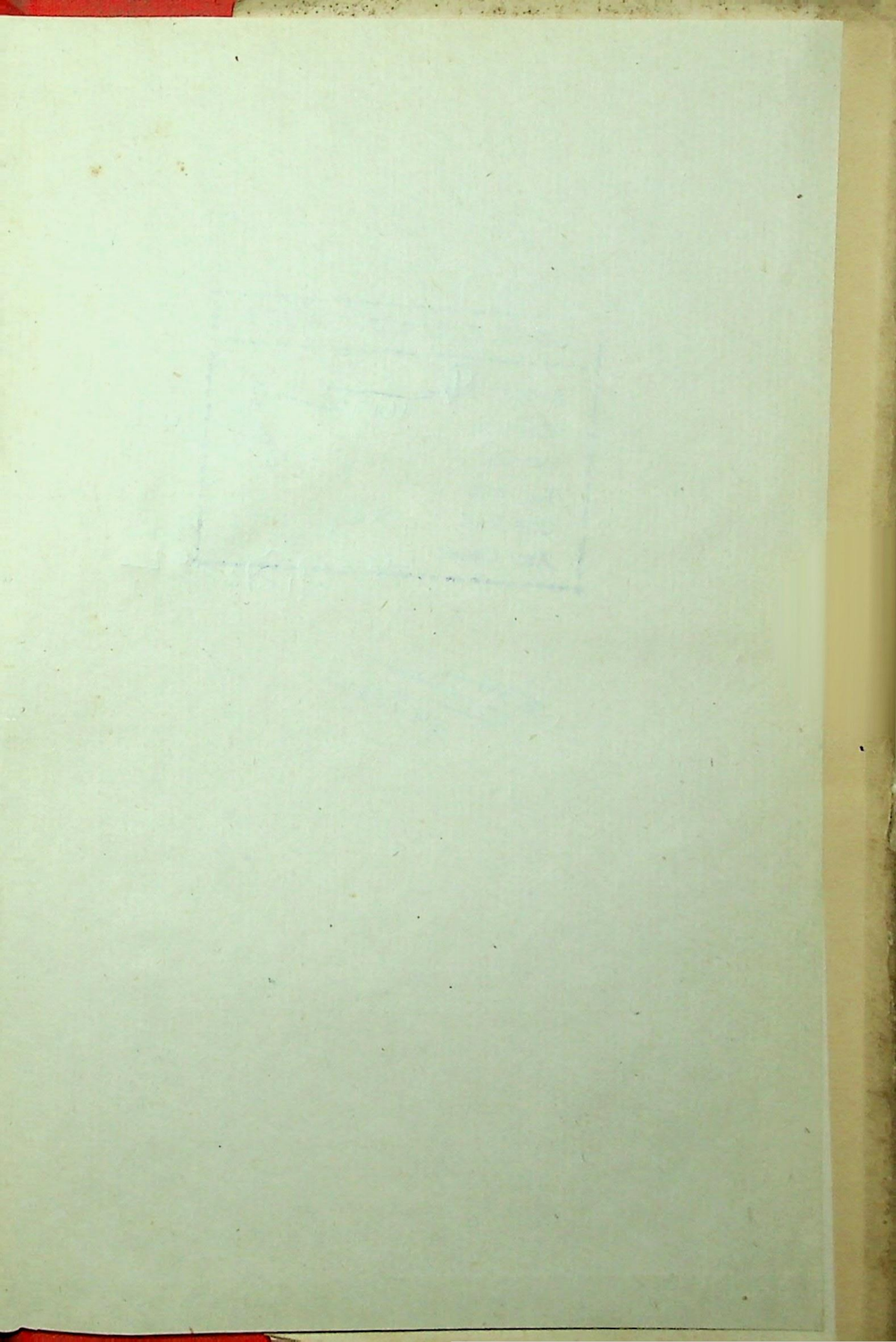
लेखक–परिचय

डॉ. महावीर अग्रवाल का जन्म महाराष्ट्र राज्य के भण्डारा जनपदान्तर्गत पलसगांव (सोनका) ग्राम में ६ अक्तूबर १९५१ को हुआ। पिता श्री ताराचन्दजी एवं माता श्रीमती त्रिवेणीदेवी धर्मपरायण ईश्वर भक्त दम्पति हैं।

प्रारम्भिक शिक्षा गांव में ग्रहण करने के पश्चात् गुरूकुल झज्जर (हरयाणा) से शास्त्री एवं आचार्य परीक्षाएं सर्वाधिक अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण की। गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. परीक्षा उत्तीर्ण कर आगरा विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. किया। पुनः गुरूकुल कांगड़ी वि.वि. से एम.ए. वेद में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने पर दो स्वर्ण पदकों से दीक्षान्त समारोह में सम्मानित किये गये। मेरठ विश्वविद्यालय से संस्कृत में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

उपाधि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पीलीभीत में १३ वर्ष तक संस्कृत विभागाध्यक्ष के रूप में सफलतापूर्वक अध्ययन कार्य किया। फरवरी ८६ से गुरूकुल कांगड़ी वि.वि. में संस्कृत विभाग में रीडर पद पर कार्य करते हुए संप्रति विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यरत हैं। अनेक शोध–लेख विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये हैं।

सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यों में विशिष्ट अभिरूचि। उत्तरप्रदेश, देहली, पंजाब, महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बंगाल आदि विभिन्न प्रान्तों में वेद, दर्शन एवं साहित्यिक विषयों पर विशिष्ट व्याख्यान। आकाशवाणी से संस्कृत एवं हिन्दी में अनेक वार्त्ताएं प्रसारित।

ग्रन्थ–परिचय

आदि–कवि वाल्मीकि प्रणीत रामायण जहां भारतीय संस्कृति, धर्म एवं दर्शन का अक्षय कोष है, वहां न केवल संस्कृत साहित्य अपितु समस्त भारतीय साहित्य का प्रेरणा स्रोत है, समस्त काव्य गुणों का आकार है। अनेक मनीषियों ने वाल्मीकि रामायण पर उत्तमोत्तम समीक्षात्मक ग्रन्थों का प्रणयन किया, किन्तु इसका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष विशद रूप में विवेचित नहीं हो पाया था, वह पक्ष है रामायण का रसपरक अध्ययन, जबकि रस भारतीय काव्यशास्त्र का आत्मतत्त्व और रामायण का प्राण है। महाकवि कालिदासादि को रसात्मक काव्यरचना की प्रेरणा और मार्ग दर्शन आदि–कवि से ही प्राप्त हुआ था। रामायण में आदि से अन्त तक रस–सरिता प्रवाहित हो रही है ऐसे महत्त्वपूर्ण एवं काव्यरसिक जनों के लिये रूचिकर रस योजना परक शोध–ग्रन्थ का प्रणयन कर विद्वान लेखक ने साहित्य की महती सेवा की है। इस ग्रन्थ में रस और रामायण के अनेक अनालोचित तत्त्वों का सुन्दर विवेचन है। भाषा प्रवाहमयी, सरस तथा हृदयस्पर्शी है। यह पुस्तक जहां रामायण के प्रति आस्था और श्रद्धा रखने वाले सुधी जनों को प्रसन्नता प्रदान करेगी, वहां शोधार्थियों को विभिन्न कवियों और उनकी कृतियों के रस योजना परक अध्ययन की दिशा में प्रकाश–स्तम्भ बनेगी।

भारतीय विद्या प्रकाशन

१ यू.बी. जवाहर नगर
बैंग्लोरोड
दिल्ली - ११०००७

पो.बा. ११०८
कचौड़ी गली
वाराणसी (उ.प्र.)

(भारत)